अहिंसगाहारो

(अहिंसक आहार)

कृतिकार :

आचार्य वसुनंदी मुनि

प्रकाशन :

निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति

जिनशासन नायक भगवान् महावीर स्वामी के 2550वें निर्वाण महोत्सव पर परम पूज्य राष्ट्र हितैषी संत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा वी. नि. सं. 2550-2551 (सन् नव. 2023-नव. 2024) को **''अहिंसकाहार वर्ष''** के रूप में उद्घोषित किया गया। इसी **''अहिंसकाहार वर्ष''** के उपलक्ष्य में प्रकाशित

ग्रंथ : अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)

मंगल आशीर्वाद : प.पू. सिद्धान्त चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

व्याख्यान एवं सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2024)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-86-6**

मूल्य : **₹250/-** (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : C/117, बेसमेंट, सेक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

संपादकीय

अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्दपद्धतिः।
अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती।।503।।
अहिंसैव शिवं सूते दत्ते च त्रिदिवश्रियम्।
अहिंसैव हितं कुर्याद् व्यसनानि निरस्स्यति।।504।।

—(आ. शुभचंद्र स्वामी, ज्ञानार्णव)

अहिंसा ही जगत् की माता है, अहिंसा ही आनंद की पद्धति है, अहिंसा ही उत्तम गति है, अहिंसा ही स्थिर रहने वाली लक्ष्मी है, अहिंसा ही मोक्ष प्राप्त कराती है, अहिंसा ही स्वर्ग की लक्ष्मी देती है, अहिंसा ही हित करती है और अहिंसा ही व्यसनों व कष्टों को नष्ट करती है।

हेमाद्रिः पर्वतानां हरिरमृतभुजां चक्रवर्ती नराणां,
शीतांशुर्ज्योतिषां स्वर्तरुरवनिरुहां चण्डरोचिर्ग्रहाणाम्।
सिन्धुस्तोयाशयानां जिनपतिरसुरामर्त्यमर्त्याधियानां,
यद्वत् तद्वद् व्रतानामधिपतिपदवीं यात्यहिंसा किमन्यत्।।

जिस प्रकार पर्वतों में सुमेरु, देवों में इंद्र, मनुष्यों में चक्रवर्ती, ज्योतिषी देवों में चंद्रमा, वृक्षों में कल्पवृक्ष, ग्रहों में सूर्य, जलाशयों में समुद्र और सुर एवं मनुष्य राजाओं में जिनेन्द्र भगवान् अधिपति की पदवी को प्राप्त हैं, उसी प्रकार अहिंसा सब व्रतों के अधिपति पद को प्राप्त है, अधिक क्या कहें।

परमाणोः परं नाल्पं न महद् गगनात्परम्।
यथा किंचित् तथा धर्मो नाहिंसालक्षणात्परः।।512।।

—(ज्ञानार्णव)

जिस प्रकार परमाणु से छोटा और आकाश से बड़ा कोई पदार्थ नहीं है, उसी प्रकार अहिंसा से बड़ा कोई दूसरा धर्म नहीं है।

अहिंसा वह आकाश है जिसमें सभी व्रत, तप आदि अवगाहन पाते हैं। मन, वचन व काय से हिंसा न करना अहिंसा है। मन से किसी के विषय में अशुभ न सोचना, मानसिक अहिंसा है। वचन से किसी के प्रति बुरा नहीं बोलना, ऐसा नहीं बोलना कि किसी को कष्ट हो, अपशब्द आदि का प्रयोग नहीं करना, यह वाचनिक अहिंसा है। किसी को मारना, ताड़ना, वधादि नहीं करना, शरीर से किसी को कष्ट नहीं देना, यह कायिक अहिंसा है।

अहिंसा विश्व की जननी है। जिस प्रकार माँ अपने बालक का संरक्षण करती है उसी प्रकार यह अहिंसा समस्त विश्व का संरक्षण करती है। अहिंसा के माध्यम से ही विश्व-शांति की स्थापना संभव है। अहिंसा से ही समस्त जीवों का संरक्षण संभव है। अहिंसा ही वह अस्त्र है जो देशों के मध्य युद्ध वा विश्व युद्ध की भूमिका को निरस्त कर सकता है। अहिंसा से संगठन और संगठन से अहिंसा का जन्म होता है।

एक संध्या में एक महात्मा उद्यान में ध्यान मग्न विराजमान थे। संध्याकाल में नील गगन में चिड़ियाँ अपने घोसलों की ओर लौट रहीं थीं। तभी किसी की भयानक चीख ने महात्मा का ध्यान भंग कर दिया। महात्मा ने ऊपर देखा, एक बाज चिड़िया पर झपटा और वह उसे पंजे में पकड़े ले जा रहा था। शेष सभी चिड़ियाँ दूर-दूर थीं। महात्मा ने कहा–''हिंसा जगत् का नियम है। सबल निर्बल पर वार करता ही है, इसलिए संगठित होकर रहो।''

महात्मा पुनः ध्यान मग्न हो गए। कुछ समय बाद एक दिन पुनः महात्मा की आँखें आकाश की ओर उठीं। सूर्य अस्ताचल की ओर था। चिड़ियाँ अपने बसेरे की ओर लौट रही थीं किन्तु सब एक साथ। दूसरी ओर दो-तीन बाज उदास होकर ताक रहे थे। चिड़ियाँ सकुशल अपने स्थान तक पहुँच गयीं, बाज केवल ताकते रह गये। महात्मा मुस्कुराकर बोले-''हिंसक आततायी बाजों! अब तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ। यहाँ की चिड़ियाँ तो संगठित हो गई हैं।'' कहकर महात्मा पुनः ध्यानमग्न हो गए। यही तो है संगठित शक्ति में अहिंसा।

अहिंसा के बिना सुखद जीवन की कल्पना भी संभव नहीं है। आचार, विचार, व्यवहार सबमें अहिंसा हो। इन आचार, विचार, व्यवहार का व्यक्ति के भोजन से बहुत गहरा संबंध है। व्यक्ति की अहिंसक जीवन शैली में भोजन का महत्वपूर्ण स्थान है।

भोजन के असंतुलित होते ही मानव जीवन भी असंतुलित सा हो जाता है। आज वर्तमान में व्यक्ति का भोजन बहुत असंतुलित हो गया है। भोजन के क्षेत्र में जैसे मनुष्य का विवेक मृत हो गया है। यही कारण है कि अनेक रोगों के कारण एवं विष के समान फास्ट फूड, प्रोसेस्ड फूड, पैक्ड फूड को युवापीढ़ी आनंद के साथ खाती है। यह जहर शरीर में घुलकर उसे रोगी और मस्तिष्क में घुलकर एग्रेसिव, डिप्रेस्ड, इरिटेटिड बनाता है। आज का व्यक्ति शारीरिक व मानसिक तौर पर रुग्ण होता जा रहा है, घर बड़ी-बड़ी बीमारियों से ग्रसित है, आदर-सम्मान-विनम्रता-सहनशीलता आदि घटते जा रहे हैं, इन सबका कारण आज का गंदा भोजन है।

भारत के निवासी दुग्ध, घृत, छाछ आदि लेकर निरोगी व दीर्घजीवी हुआ करते थे किंतु निकृष्ट भोज्य सामग्री को भी इस Advertisement की दुनिया में श्रेष्ठ प्रदर्शित कर षड्यंत्रकारियों ने भारत को रुग्ण बना दिया। अहिंसा के गीत गाने वाला भारत आज पशुओं के माँस का निर्यात जैसे जघन्यतम कार्य पर उतर आया है। भारत का भविष्य (बच्चे व युवा) भी नशे में डूबे नजर आते हैं। ऐसे भारत की तस्वीर तो किन्हीं संत, महात्मा, ऋषि, आदर्श व्यक्ति, महापुरुष या स्वतंत्रता सैनानियों ने भी नहीं देखी होगी।

आज की इस गंभीर परिस्थिति से अवगत होकर एवं डॉ. डी.सी. जैन जी के विशेष अनुरोध पर परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव ने 'अहिंसगाहारो' अहिंसक आहार जैसे जनोपयोगी ग्रंथ की रचना की। पूज्य गुरुदेव का सन् 2017 का चातुर्मास ग्रीन पार्क, दिल्ली में हुआ था। उस समय पूज्य गुरुदेव ने इस ग्रंथ की रचना की थी।

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह ग्रंथ सभी के द्वारा पठनीय है। कुछ लोगों का प्रश्न भी होगा कि इस ग्रंथ को नाम 'शाकाहार' आदि न देकर "अहिंसकाहार" क्यों दिया? क्या शाकाहार व अहिंसकाहार अलग-अलग हैं? तब स्थूल रूप से दोनों को एक कहा जा सकता है किन्तु सूक्ष्म रूप से वृहद् अंतर है। शाकाहार अर्थात् शाक-सब्जी, फल, अनाज, दुग्ध आदि का आहार। जबकि अहिंसकाहार में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि भी सम्मिलित है। जैसे रात्रि में फल का ग्रहण शाकाहार तो हो सकता है, किन्तु जीवों की हिंसा होने से अहिंसकाहार कदापि नहीं।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृत भाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित प्रस्तुत 'अहिंसगाहारो' ग्रंथ 66 गाथाओं में निबद्ध है। पूज्य गुरुदेव ने

कई प्राकृत ग्रंथों का लेखन कर संपूर्ण मानव जाति पर बहुत उपकार किया है। आचार्य गुरुवर ने ग्रंथ लेखन कर जिन सूक्ष्म रहस्यों का उद्‌घाटन किया है वह मानव जाति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये ग्रंथ मानव कल्याण व देश हित के लिए मार्गदर्शन करने हेतु अमूल्य हैं।

चारित चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज से लेकर सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज तक की गौरवशाली परंपरा का निर्वहन परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कर रहे हैं और मोक्षमार्ग में श्रम के साथ जिनशासन के संरक्षण व संवर्द्धन में श्रमरत हैं और इसी को चिर जीवंतता प्रदान करने हेतु जिनशासन के बहुत से प्रभावक कार्यों के साथ प्राकृत भाषा में ग्रंथों का लेखन कर रहे हैं। अभी तक 55 से अधिक प्राकृत ग्रंथों का लेखन कर आचार्यश्री ने एक इतिहास ही रच दिया है। जिनमें साधिक 2000 गाथाओं में निबद्ध 'अशोक-रोहिणी चरित्र' (महाकाव्य) व 'समणायारो' जैसे वृहद् ग्रंथ और 'अहिंसकाहार' (66), 'णंदिणंद सुत्तं' (84) जैसे लघुकाय ग्रंथ और 'समवसरण सोहा', 'सीयलणाहचरियं' (714) जैसे मध्यकाय ग्रंथ भी सम्मिलित हैं।

पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से ही हम ग्रंथ का भावार्थ लिखने में समर्थ हो सके हैं। पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद व कृपा के बिना हमारी लघुबुद्धि इस कार्य को करने में समर्थ नहीं थी। आर्यिका श्री वर्चस्व नंदनी माताजी का सहयोग अत्यंत श्लाघनीय है।

यदि इस ग्रंथ के व्याख्यान वा संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ही इसका अध्ययन करें। परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव की साधना, संयम, तप, ज्ञान का सौरभ सहस्र वर्षों तक संपूर्ण विश्व को सुरभित करता रहे। उन्हें आरोग्य की प्राप्ति हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परम पूज्य आचार्य गुरुवर के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित, भावों की विशुद्धि पूर्वक कोटिशः नमन।

नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु......

–आर्यिका वर्धस्वनंदनी

आमुख

अहिंसक आहार (अहिंसगाहारो) ग्रंथ परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा लिखित मुझे प्राप्त हुआ। हृदय प्रसन्न हुआ। सन् 1985 में दिल्ली प्रदेश में आयोजित विश्व सम्मेलन में श्रेष्ठी श्री विष्णु हरि डालमिया जी ने अपने उद्‌बोधन में अहिंसक आहार शब्द का प्रयोग किया था। मुझे यह शब्द अत्यंत प्रिय एवं कल्याणकारी लगा। उस समय यह भाव आया था कि अहिंसक आहार के प्रचार का प्रयास होना चाहिए। परंतु इस विषय पर साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाया था। मुनिराज आचार्य श्री वसुनंदी जी ग्रीनपार्क में चातुर्मास के लिए पधारे थे, उस समय मैंने मुनिश्री से निवेदन किया था कि वे इस विषय पर ग्रंथ लिखकर दिशानिर्देश प्रदान करें। मुनिश्री ने हमारे निवेदन को स्वीकार किया और इस ग्रंथ को लिखा। अहिंसक आहार क्यों, किस प्रकार, कैसे एवं क्या सावधानियाँ रखना चाहिए इत्यादि अनेक आयामों पर अपने विचार प्राकृत भाषा में लिखे। इनका अंग्रेजी, हिंदी अनुवाद एवं व्याख्या सहित यह ग्रंथ तैयार हुआ। इसे पढ़कर यह अनुभूति हुई कि यह ग्रंथ विद्वत् समाज के लिए अमूल्य निधि के रूप में ज्ञानार्जन का साधन बनेगा।

वर्तमान समय में भोजन में हिंसा व्यापक रूप धारण कर रही है। मांसाहार का प्रचार-प्रसार बहुत अधिक हो रहा है। इसके परिणाम स्वरूप हृदय रोग, कैंसर, लकवे की बीमारी, मोटापा, हाइ ब्लडप्रेशर एवं अन्य जीवन शैली से संबंधित रोगियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। पशुओं में जो बीमारियाँ पानी और सड़े-गले खाद्य पदार्थों से उनके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं वे बीमारियाँ उन पशुओं को आहार के रूप में खाने से मनुष्यों में प्रवेश कर जाती हैं। इन बीमारियों को जुनोशिश कहते हैं। मस्तिष्क में इन बीमारियों के लक्षण में मिर्गी के दौरे के रूप में प्रकट हो जाती हैं। इन बीमारियों की चिकित्सा बहुत कठिनाई से होती है।

भोजन की शुद्धि के बारे में इस ग्रंथ में विस्तार से उल्लेख किया गया है। शुद्धियों को प्रत्येक गृहस्थ को भली प्रकार संभाल कर पालन करना चाहिए। शुद्ध भोजन का सेवन करने से अनेक रोगों को फैलने से रोका जा सकता है। अभक्ष्य भोजन एवं पदार्थों

के सेवन से P.C.O.D. की बीमारी किशोरावस्था में छात्र-छात्राओं में भयानक रूप धारण कर रही है। इस समस्या का सरल उपाय अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन तत्काल बंद करना है। जलोदर रोग का प्रमुख कारण शराब का प्रयोग है। शराब का प्रभाव लीवर पर सबसे अधिक पड़ता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शराब का प्रयोग समाप्त करने के लिए अपने आदेश में बतलाया है कि शराब से लीवर में CIRRHOSIS नामक रोग हो जाता है। लीवर और पैनक्रियाज की बीमारी का प्रमुख कारण शराब का सेवन करना है। कुछ समय पूर्व चिकित्सकों ने कम मात्रा में शराब को पीने से हृदय रोग कम होने का उल्लेख किया था परंतु यह मान्यता सत्य नहीं है।

ग्रंथ को पढ़कर यह अनुभूति हुई कि इस ग्रंथ का व्यापक प्रचार-प्रसार होने से विश्व में फैलने वाली बीमारियों की रोकथाम होगी।

मुनिराज आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज का यह उपकार युगों-युगों तक जनमानस स्मरण में रखेगा। आर्यिका वर्द्धस्वनंदिनी माताजी ने इस ग्रंथ की व्याख्या विस्तार पूर्वक करके युवा वर्ग को आधुनिक रिसर्चों से परिचित कराकर नया आयाम प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ को रोचकता प्रदान की है। उनका यह योगदान युवाओं को इस ग्रंथ को पढ़ने के लिए प्रेरित करेगा। माताजी को भावपूर्वक वन्दामि।

पुनः मुनिराज आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज के पावन चरणों में त्रि बार नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु। समस्त मुनिसंघ स्वस्थ एवं निरामय हो। पूरे विश्व में रोगों की, महामारियों की रोकथाम हो।

-डॉ. डी.सी. जैन

पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

न्यूरोलॉजी विभाग

वर्धमान महावीर मेडिकल कॉलेज

एवं सफदरजंग हॉस्पिटल नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	1	1
2.	ग्रंथ प्रतिज्ञा	2	6
3.	सिद्धों के अष्टगुण	3	10
4.	आत्म-भोजन ज्ञान	4	16
5.	जैसा आहार वैसा प्रभाव	5	20
6.	धर्म का कारण-आहार	6	26
7.	आहारादि संज्ञा विश्लेषण	7-8	31
8.	आहार व उनके स्वामी	9-10	36
9.	कवलाहार का स्वरूप	11	40
10.	आर्यों के लिए शाकाहार	12	42
11.	माँस भक्षण निषेध	13	55
12.	भोजन ग्रहण के हेतु	14-16	63
13.	भोजन त्याग के हेतु	17	67
14.	कवलाहार के भेद व स्वरूप	18-19	74
15.	आहार के अन्य तीन भेद	20-21	77
16.	राजसिक आहार का स्वरूप	22	85
17.	तामसिक आहार का स्वरूप	23-24	88
18.	अभक्ष्य त्याग प्रेरणा	25	94
19.	पाँच प्रकार का अभक्ष्य भोजन	26	104
20.	प्रकृति विरुद्ध भोजन	27	105
21.	लोकनिंद्य पदार्थ	28	107
22.	त्रस घातक भोजन	29	109
23.	बहुजीवघातक भोजन	30	114

24.	मादक भोजन	31	117
25.	प्रकृति विरुद्धादि भोजन हेय	32	124
26.	जीवों की रक्षा-धर्म	33	126
27.	आत्मशुद्धि का हेतु	34	132
28.	द्रव्य शुद्धि	35	136
29.	क्षेत्र शुद्धि	36	140
30.	काल शुद्धि	37-39	143
31.	भाव शुद्धि	40	152
32.	कषायोदय में भोजन निषिद्ध	41-44	157
33.	वेदोदय में भोजन निषिद्ध	45-46	160
34.	सर्व अशुभ परिणामों में भोजन निषिद्ध	47-50	163
35.	अशुद्ध कल्पना से भोजन अशुद्ध	51-52	169
36.	अशुभ भाव युक्त वस्तु त्याज्य	53	173
37.	भावशुद्धि आवश्यक	54	175
38.	जैसा भाव वैसा द्रव्य	55	177
39.	दुर्भावयुक्त भोजन रोगादि दायक	56	179
40.	अशुद्ध स्त्री संगति त्याज्य	57	180
41.	आहार में शुद्धि	58	184
42.	शुद्ध मन	59	188
43.	शुद्ध वचन	60	192
44.	शुद्ध देह	61	196
45.	ग्रहणीय मर्यादित भोजन	62	210
46.	सर्वशुद्धि आवश्यक	63	204
47.	शुद्ध भोजन धर्म का हेतु	64	207
48.	ग्रंथ का फल	65	210
49.	ग्रंथ की प्रशस्ति	66	212

मंगलाचरण

आहारहीण-देवा, अक्खयणाणाइ-सहावजुत्ता य।
मोहाइकम्महीणा, सव्व-सिद्धवरा णमामि हं॥1॥

अर्थ—आहार संज्ञा से हीन, अक्षय ज्ञानादि स्वभाव से युक्त, मोह आदि कर्मों से रहित सभी सिद्धों को मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) नमस्कार करता हूँ।

I (Acharya Vasunandi Muni) bow to all Siddhas who are devoid of food sensation, and infatuation and other karmas and endowed with infinite knowledge and other nature.

व्याख्यान—ग्रंथ प्रारंभ से पूर्व मंगलाचरण करने की पूर्वाचार्यों की श्रद्धा-भक्ति से समन्वित इस परंपरा का परिपालन करते हुए ग्रंथकार अशरीरी सिद्धों को नमस्कार करते हैं जिससे उनके आस्तिक्यपने एवं सिद्धों को नमन करने से उनकी आध्यात्मिक वृत्ति का भी बोध प्राप्त होता है। सिद्धों को यहाँ नमन किया गया और उनका सर्वप्रथम विशेषण दिया **"आहारहीन"**। आहार का एक अर्थ तो सर्व सामान्य है—'भोजन' एतावता सिद्ध आहारहीन होते ही हैं। दूसरा अर्थ तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्‌गलों के ग्रहण करने को आहार कहते हैं।[1] अथवा उपभोग्य शरीर के योग्य पुद्‌गलों का ग्रहण आहार है।[2] पुद्‌गल में ही पुद्‌गल को आकर्षित करने की सामर्थ्य है अर्थात् जब तक जीव पुद्‌गलकर्मों से बद्ध है तब तक तो अन्य भी पौद्‌गलिक वर्गणाएँ वह ग्रहण करता है किन्तु कर्म रहित सिद्ध, शुद्ध जीव किसी भी प्रकार की पौद्‌गलिक वर्गणाओं को ग्रहण न करने के कारण आहार हीन है। सिद्ध प्रभु अनाहारक होते हैं।[3]

---

1. त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्‌गलग्रहणमाहारः। —स.सि.
2 उपभोगशरीरप्रायोग्यपुद्‌गलग्रहणमाहारः। —रा.वा.
3. विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहदो अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा॥177॥ —पं.सं.

''अक्षय'' जिसका कभी क्षय नहीं होता, वह अक्षय है। अथवा 'क्षय' शब्द अंत वा नष्ट वाची है इसलिए जिसका कभी अंत या क्षय न हो वह अनंत, अक्षय है। अथवा अक्षय-अनंत पदार्थों को जानने वाला भी अक्षय-अनंत है। अतः अक्षय ज्ञानादि से युक्त सिद्ध अर्थात् ऐसा ज्ञान, दर्शन, सुख आदि जिसका कभी क्षय न हो ऐसे अक्षय या अनंत क्षायिक ज्ञान, दर्शन आदि से युक्त सिद्ध हैं। ज्ञान, दर्शनादि आत्मा का स्वभाव है। ज्ञानादि को आत्मा का स्वभाव कहने से उस मत का खंडन हो जाता है जो ज्ञान से रहित आत्मा का अस्तित्व मानते हैं अथवा ज्ञान नष्ट होने पर मोक्ष का कथन करते हैं।

''मोहादिकर्महीन''-सिद्ध परमेष्ठी मोहनीय आदि अष्ट कर्मों से रहित होने से कर्महीन कहलाते हैं। मोहनीय कर्मों का राजा कहा जाता है। मोह कर्म का क्षय होते ही जीव के अन्य तीन घातिया कर्मों का क्षय भी अंतर्मुहूर्त में ही हो जाता है एवं पुनः चार अघातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। अतः यहाँ ग्रंथकार ने मोहनीय कर्म को प्रमुख कर सभी कर्मों से रहित सिद्ध कहे। इस प्रकार इन विशेषणों से युक्त सिद्धों को यहाँ नमस्कार कर मंगलाचरण किया गया है। आचार्य श्री यतिवृषभ स्वामी ने मंगल को परिभाषित करते हुए कहा है-

गालयदि विणासयदे घादेदि दहेदि हंति सोधयदे।
विद्धंसेदि मलाइं जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं।।

यह ज्ञानावरणादि द्रव्यमल और अज्ञान, अदर्शन आदि भावमल इन मलों को गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, हनता है, शुद्ध करता है और विध्वंस करता है, इसलिए इसे 'मंगल' कहा गया है।

यह मंगल निबद्ध व अनिबद्ध के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। जो ग्रंथ के आदि में ग्रंथकार के द्वारा इष्ट देवता को नमस्कार निबद्ध कर दिया जाता है अर्थात् श्लोकादि रूप में रचकर लिख दिया जाता है उसे निबद्ध मंगल कहते हैं। और जो ग्रन्थ के आदि में ग्रन्थकार द्वारा देवता को नमस्कार किया जाता है अर्थात् लिपिबद्ध नहीं किया जाता बल्कि शास्त्र लेखन या वाचना प्रारंभ करते

समय मन, वचन, काय से जो नमस्कार किया जाता है उसे अनिबद्ध मंगल कहते हैं।[1] अथवा मुख्य व अमुख्य के भेद से भी मंगल दो प्रकार का कहा गया है। ज्ञानियों के द्वारा शास्त्र के आदि, मध्य व अंत में विघ्न निवारण के लिए जो जिनेन्द्रदेव का गुण स्तवन किया जाता है वह मुख्य मंगल है और पीली सरसों, पूर्ण कलश, वन्दनमाला, छत्र, श्वेत वर्ण, दर्पण, उत्तम जाति का घोड़ा आदि ये अमुख्य मंगल हैं।[2]

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि शास्त्र के प्रारंभ में मंगलाचरण क्यों किया जाता है? तब उत्तर देते हुए कहते हैं–

नास्तिकत्वपरिहारः शिष्टाचारप्रपालनम्।
पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नः शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः।।

नास्तिकता का त्याग, सभ्य पुरुषों के आचरण का पालन, पुण्य की प्राप्ति और विघ्न विनाश इन चार लाभों के लिए शास्त्र के आरंभ में इष्ट देवता की स्तुति की जाती है। अथवा शास्त्र में आदि, मध्य व अंत में भी मंगलाचरण किया जाता है। तिलोयपण्णत्ति में प्ररूपित है–शास्त्र के आदि में मंगल के करने पर शिष्य लोग शास्त्र के पारगामी होते हैं, मध्य में मंगल करने पर निर्विघ्न विद्या की प्राप्ति होती है और अन्त में मंगल के करने पर विद्या का फल प्राप्त होता है।

पढमे मंगलवयणे, सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति।
मज्झिम्मे णीविग्घे, विज्जा विज्जाफलं चरिमे।।

---

1. तत्थ णिबद्धं णाम, जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सत्तारेण कयदेवदाणमोक्कारो तमणिबद्ध मंगलं।–ध.1
2. तत्र मुख्यमंगलं कथ्यते–
   आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः।
   तज्जिनेन्द्रगुण–स्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये।।
   अमुख्यमंगलं कथ्यते–सिद्धत्थ पुण्णकुंभो वंदणमाला य पुंडुरं छत्तं।
   सेदो वण्णो आदस्स णायकण्णा य जत्तस्सो।।–पं.का./ता.वृ.

पुनः कोई प्रश्न करता है कि क्या शास्त्र स्वयं मंगल रूप नहीं है, और यदि मंगल रूप है तो मंगल का मंगल करने से क्या प्रयोजन?

तब कहते हैं कि भक्ति के लिए मंगल का भी मंगल किया जाता है। कहा भी है—दीपक से सूर्य की, जल से सागर की तथा वचनों से वागीश्वरी की पूजा की जाती है, इसी प्रकार मंगल से मंगल का भी मंगल किया जाता है। इसके अतिरिक्त इष्टदेवता को नमस्कार करने से प्रत्युपकार किया जाता है अर्थात् देवताकृत उपकार को स्वीकार किया जाता है। कहा भी है—परमेष्ठी की कृपा से मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है इसलिए शास्त्र के आदि में मुनिजन उनके गुणों का स्तवन करते हैं। इच्छित फल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है और वह सच्चे शास्त्रों से होता है। शास्त्रों की उत्पत्ति आप्त से होती है इसलिए उनके प्रसाद से ही ज्ञान की प्राप्ति हुई होने से वे पूज्य हैं क्योंकि किये गए उपकार को साधुजन भूलते नहीं हैं।[1]

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि मंगल करके प्रारंभ किये गए कार्यों के कहीं पर विघ्न पाए जाने से और उसे न करके भी प्रारंभ किए गए कार्यों के कहीं पर विघ्नों का अभाव देखे जाने से जिनेंद्र नमस्कार विघ्न विनाशक नहीं है?

तब उत्तर देते हैं—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जिन व्याधियों की औषध की गयी है उनका अविनाश और जिनकी औषध नहीं की गयी है उनका विनाश देखे जाने से व्यभिचार ज्ञात होने पर भी काली मिर्च आदि औषधि द्रव्यों में औषधित्व गुण पाया जाता है।

प्रश्न—औषधियों का औषधित्व तो इसलिए नष्ट नहीं होता कि असाध्य व्याधियों को छोड़कर केवल साध्य व्याधियों के विषय में ही उनका व्यापार माना गया है?

उत्तर—तब जिनेन्द्र नमस्कार भी उसी प्रकार विघ्न विनाशक माना जा सकता है, क्योंकि उसका भी व्यापार असाध्य विघ्नों के कारणभूत कर्मों के विनाश में

---

1. पं.का./ता.वृ.

देखा जाता है। दूसरी बात यह है कि औषध के समान जिनेन्द्र नमस्कार नहीं है क्योंकि जिस प्रकार निर्विघ्न अग्नि के होते हुए न जल सकने योग्य ईंधनों का अभाव रहता है अर्थात् संपूर्ण प्रकार के ईंधन भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार उक्त नमस्कार के ज्ञान व ध्यान की सहायता युक्त होने पर असाध्य विघ्नोत्पादक कर्मों का भी अभाव होता है।[1]

पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति में भी इस प्रकार कहा है कि जहाँ देवता नमस्कार, दान-पूजादि रूप धर्म के करने पर भी विघ्न होता है वहाँ वह पूर्वकृत पाप का ही फल जानना चाहिए, यह धर्म का दोष नहीं। और जहाँ देवता नमस्कार, दानपूजादि रूप धर्म के अभाव में भी निर्विघ्नता दिखायी देती है, वह भी पूर्वकृत धर्म का ही फल जानना चाहिए।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवन् श्री वीरसेन स्वामी ने मंगल के छह अधिकारों का कथन किया है। वे इस प्रकार हैं–1. मंगल, 2. मंगलकर्ता, 3. मंगल करने योग्य, 4. मंगल का उपाय, 5. मंगल के भेद, 6. मंगल का फल। मंगल का लक्षण कह चुके हैं। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी परम पूज्य आचार्य भगवन् श्री वसुनंदी जी मुनिराज मंगलकर्ता हैं। भव्यजन मंगल करने योग्य हैं। रत्नत्रय की साधक सामग्री अर्थात् आत्माधीनता व मन-वचन-काय की एकाग्रता आदि मंगल का उपाय है। मंगल के दो, छह आदि भेद हैं। मंगलादि से प्राप्त होने वाले अभ्युदय और मोक्ष सुख के आधीन मंगल का फल है।[2]

1. धवलाजी पु.-9
2. धवलाजी पु.-1

ग्रंथ प्रतिज्ञा

सव्वसिद्धा णमित्ता, अणाहारगपदत्थं सडसट्ठी।
सवरकल्लाणत्थं च, वोच्छामि अहिंसगाहारं॥2॥

अर्थ–सभी सिद्धों को नमस्कार करके स्व–पर कल्याण और अनाहारक पद की प्राप्ति के लिए इस छ्यासठ गाथाओं के समूह रूप 'अहिंसक आहार' नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

After bowing to all Siddhas (liberated souls), I (Acharya Vasunandi Muni) recommend this scripture "Ahinsak Aahaar" (Non-violent diet), which contains sixty six verses, for the welfare of self and others and for the attainment of liberation.

व्याख्यान–यहाँ ग्रंथकार पुनः सिद्धों को नमस्कार करते हैं, विशेषता यह है कि सिद्धों के ध्यान में निमग्न आचार्यश्री भूत, भावी नैगमनय की अपेक्षा भी सिद्धों को नमस्कार करते हैं अर्थात् जो सिद्ध हो चुके, हो रहे हैं व होंगे परिणामों की विशुद्धिपूर्वक उन्हें नमस्कार करते हैं। 'सर्व' विशेषण से यह सिद्ध होता है। 'सिद्ध' शब्द का अर्थ कृतकृत्य होता है अर्थात् जिन्होंने अपने करने योग्य सब कार्यों को कर लिया है, जिन्होंने अनादिकाल से बंधे ज्ञानावरणादि कर्मों को शुक्लध्यान की अग्नि से नष्ट कर दिया ऐसे भावकर्म–द्रव्यकर्म–नोकर्म से रहित जीवों को सिद्ध कहते हैं। श्री सुधर्माचार्य ने सिद्धों की स्तुति करते हुए कहा है–

श्रीमन्तो नृसुरा–सुरेन्द्र महिताः लोकाग्रसंवासिनः।
नित्याः सर्वसुखाकराः भयहराः विश्वेषु कामप्रदाः॥
कर्मातीत–विशुद्धभाव सहिताः ज्योतिः स्वरूपात्मकाः।
श्री सिद्धाः जननार्तिमृत्युरहिताः कुर्वन्तु ते मंगलं॥2॥

जो श्रीमंत (आत्मवैभव से युक्त) नर, देव व असुर इन्द्रों के द्वारा महिमामंडित हैं, लोक के अग्रभाग पर निवास करते हैं, नित्य हैं, शाश्वत हैं, सर्व सुखों को करने वाले हैं, सभी भयों को नष्ट करने वाले हैं। जिनके स्मरण मात्र से मनोरथ सिद्ध होते हैं, जो जन्म-मरण-दु:ख से रहित हैं वे सिद्ध प्रभु सभी का मंगल करें।

आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी नियमसार में सिद्ध जिन का स्वरूप बताते हुए कहते हैं-

णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति॥72॥

आठ कर्मों के बन्धन को जिन्होंने नष्ट किया है ऐसे, आठ महागुणों से सहित, परम, लोकाग्र में स्थित और नित्य सिद्ध होते हैं।

पंचसंग्रह में भी कहा है-

अट्ठविह-कम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा कयकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥31॥

जो आठ प्रकार के कर्मों से रहित हैं, अत्यन्त शान्तिमय हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, आठ गुणों से युक्त हैं, कृतकृत्य हैं, लोक के अग्रभाग पर निवास करते हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं।

अरिहंत परमेष्ठी भी चार घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अंतराय) का नाश कर चुके हैं अत: वे भी घातिकर्म क्षय सिद्ध हैं। इस प्रकार ग्रंथकार अरिहंत परमेष्ठी को भी नमस्कार करते हैं।

अथवा 'षिधु' धातु गमनार्थक भी है जिससे 'सिद्ध' शब्द का अर्थ हुआ कि जो सिद्धालय पहुँच चुके हैं व वहाँ से लौटकर कभी नहीं आते। इस अर्थ से मुक्त जीवों के पुनरागमन की मान्यता का निराकरण हो जाता है।

अथवा 'विधु' धातु 'संराधन' के अर्थ में भी आती है, जिससे अर्थ निकलता है कि जिन्होंने आत्मीय गुणों को प्राप्त कर लिया है अर्थात् जिनकी आत्मा में अपने स्वाभाविक अनंत गुणों का विकास हो गया है। इस प्रकार उस बौद्धमत का निरासन हो जाता है जो घटचटकवत् वा दीपक बुझने के समान मुक्ति को स्वीकार करते हैं।

यह गाथ्रा ग्रंथकार की रचना के हेतु, ग्रन्थ परिमाण आदि का निर्देश करती है। आचार्य श्री यतिवृषभ स्वामी ने कहा भी है–

मंगल–कारण–हेदू सत्थं सपमाण–नाम–कत्तारा।
पढमं चि य कहिदव्वा एसा आइरिय–परिभासा।।

मंगल, कारण, हेतु, शास्त्र का प्रमाण, नाम व कर्ता, सर्वप्रथम इनको कहना चाहिए।

मंगल का कथन किया जा चुका है। भव्य जीवों के निमित्त ग्रंथ रचना की गई। ग्रीनपार्क, दिल्ली निवासी डॉ. डी.सी. जैन के विशेष निवेदन पर भव्य जीवों के कल्याणार्थ ग्रंथ लेखन आचार्यश्री द्वारा किया गया। ग्रंथकार ने गाथा में स्वयं हेतु का उल्लेख करते हुए कहा है स्व–पर कल्याण के लिए व अनाहारक पद अर्थात् सिद्ध पद की प्राप्ति के लिए ग्रंथ का लेखन किया है।

जो जीव लब्ध शरीर के योग्य शरीर वर्गणा को, भाषा व मनोवर्गणा को ग्रहण करता है वह आहारक कहलाता है तथा तीन शरीरों और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों रूप आहार जिनके नहीं होता वे अनाहारक कहलाते हैं।

यद्यपि संसारी प्राणी अधिकतम तीन समय ही अनाहारक रह सकता है। प्रथम अवस्था–तीन मोड़ वाली चार समय की विग्रहगति में एवं द्वितीय अवस्था केवली समुद्घात के समय। किन्तु यहाँ शाश्वत अनाहारक पद की प्राप्ति का कथन है। वही शाश्वत अनाहारक पद अनंतानंत सिद्धात्माओं ने प्राप्त किया है। उसी

अनाहारक पद की प्राप्ति के लिए एवं श्रुत में उपयोग होने से स्वकल्याण व इसको पढ़कर भव्यजनों के द्वारा सम्यक् मार्ग को स्वीकार करने से परकल्याण के लिए इस ग्रंथ की रचना कर रहे हैं।

आहार व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग है जो व्यक्ति की चित्तवृत्तियों आदि को प्रभावित करता है। आहार के सम्यक् होते ही जीवन भी सम्यक् हो जाता है। अत: आचार्यश्री ने मानव जीवन के नींव रूप आहार की समीचीनता पर महत्वपूर्ण व उपयोगी ग्रंथ लिखा।

ग्रंथ का प्रमाण व ग्रंथ का नाम भी गाथा में निहित है। यह ग्रंथ 66 गाथा प्रमाण रूप है व ग्रन्थ का नाम 'अहिंसगाहारो'–अहिंसक आहार है। व इस ग्रन्थ के कर्त्ता परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज हैं जो चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की परंपरा में क्रमश: आचार्य श्री पायसागर जी, आचार्य श्री जयकीर्ति जी, आचार्य श्री देशभूषण जी, राष्ट्रसंत, सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के आज्ञानुवर्ती, अनुशासित, संघ संचालन में दक्ष, ज्ञान–ध्यान–तप में लीन सुयोग्य शिष्य हैं।

इस प्रकार मंगलादिक का कथन करते हुए ग्रंथकार ग्रंथ रचना की प्रतिज्ञा इस गाथा के माध्यम से करते हैं।

सिद्धों के अष्टगुण

सम्मत्त-णाणमट्ठा, दंसण-वीरियं तहा सुहुमत्तं।
अवगहणमगुरुलहुं च, अव्वावाहं हु सिद्ध-गुणा॥3॥

अर्थ–सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध निश्चय ही ये आठ सिद्धों के गुण हैं।

The eight qualities of liberated souls are– permanent right belief, infinite knowledge, infinite vision, infinite power, extreme fineness, interpenetrability, Agurulaghutva (neither high nor low), Avyabadhatva (serenity in infinite pleasure).

व्याख्यान–सिद्धों को नमस्कार करने के पश्चात् आचार्य महाराज यहाँ सिद्धों के अष्ट गुणों का कथन करते हैं। गुणों के कारण ही जीव पूज्यता को प्राप्त होता है। सद्गुणों का आधिक्य व्यक्ति को लोक में प्रशंसनीय व आदरणीय बनाता है। गुण व गुणी कथंचित् अभिन्न हैं क्योंकि गुण से रहित गुणी का अस्तित्व प्राप्त नहीं होता। जैसे शक्कर से भिन्न मिठास नामक कोई वस्तु नहीं है। इन आठ गुणों से युक्त आत्मा की अवस्था ही सिद्धावस्था है। ग्रंथकार ने जिन अष्ट गुणों का कथन यहाँ किया है, लघु सिद्धभक्ति में भी उनका कथन इस प्रकार है–

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलघुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य,सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व ये सिद्धों के आठ गुण होते हैं। इन्हीं में द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की अपेक्षा चार गुण मिलाने पर 12 गुण माने गए हैं।[1] इनके

1. धवलाजी पु.–13

अतिरिक्त भी सिद्धों के अन्य गुण होते हैं। भगवती आराधना में उनका निर्देश इस प्रकार है–

अकसायत्तमवेदत्तम कारकयावि - देहदा चेव।
अचलत्तमलेवत्तं च हुंति अच्चंतियाइं से।।2164।।

अकषायत्व, अवेदत्व, अकारकत्व, देहरहितता, अचलत्व, अलेपत्व ये सिद्धों के आत्यंतिक गुण होते हैं।

अथवा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अकषायत्व रूप चारित्र, जन्ममरण रहितता, अशरीरत्व, नीच-ऊँच रहितता, पंचक्षायिक लब्धि अर्थात्–क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिक वीर्य–ये गुण सिद्धों में आठ कर्मों के क्षय से उत्पन्न हो जाते हैं।[1]

सम्यक्त्वादि आठ गुण मध्यम रुचि वाले शिष्यों के लिए हैं। मध्यम रुचि वाले शिष्य के प्रति विशेष भेद नय के अवलंबन से गति रहितता, इन्द्रिय रहितता, शरीर रहितता, योग रहितता, वेद रहितता, कषाय रहितता, नाम रहितता, गोत्र रहितता तथा आयु रहितता आदि विशेष गुण और इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि सामान्य गुण, इस तरह जैनागम के अनुसार सिद्धों के अनंत गुण जानने चाहिए।[2]

ग्रंथकार ने यहाँ क्षायिक सम्यक्त्व आदि आठ विशेष वा प्रसिद्ध गुणों का कथन किया है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अंतराय इन घातिया कर्मों के क्षय से क्रमशः अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व व अनंतवीर्य गुण प्रकट होते हैं। अंत का अर्थ है सीमा में। अनंत का अर्थ है जिसकी कोई सीमा न हो, जो कभी अंत को प्राप्त न हो।

केवलज्ञानादि गुण युक्त शुद्धात्मा ही उपादेय है। इस प्रकार की रुचि रूप जो निश्चय सम्यक्त्व है, उसके फलस्वरूप समस्त जीवादि तत्त्वों के विषय में विपरीत अभिप्रायरहित परिणामरूप परमक्षायिक नामक 'सम्यक्त्व' गुण सिद्धों में होता है।

---

1. धवलाजी पु.–7
2. द्र.सं./टी.

जो सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायों को युगपत् जानता है वह केवलज्ञान या अनंतज्ञान कहलाता है। एक ज्ञायक भाव का समस्त ज्ञेयों को जानने का स्वभाव होने से समस्त द्रव्य मात्र को, मानों वे द्रव्य प्रतिबिंबित हुए हों, इस प्रकार एक क्षण में ही जो प्रत्यक्ष करता है वह केवलज्ञान है।[1] भगवती आराधना में केवलज्ञान से युक्त सिद्धों के विषय में कहा भी है–

पस्सदि जाणदि य तहा तिण्णि वि काले सपज्जए सव्वे।
तह वा लोगमसेसं पस्सदि भयवं विगदमोहो।।2141।।

वे सिद्ध परमेष्ठी सम्पूर्ण द्रव्यों व उनकी पर्यायों से भरे हुए सम्पूर्ण जगत् को तीनों कालों में जानते हैं तो भी वे मोहरहित ही रहते हैं।

ज्ञान सदैव दर्शन पूर्वक होता है। छद्मस्थों के दर्शन व ज्ञान क्रम से होते हैं अर्थात् पहले दर्शन होता है पुनः ज्ञान। केवली वा सिद्धों के यह युगपत् होता है। नियमसार में निहित भी है–

जुगवं वट्टइ णाणं केवलिणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयरपयासतावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।।

केवलज्ञानी का ज्ञान तथा दर्शन युगपत् वर्तते हैं। सूर्य के प्रकाश व ताप जिस प्रकार वर्तते हैं, उसी प्रकार जानना।

अथवा छद्मस्थों के ज्ञान दर्शनपूर्वक होते हैं परन्तु केवलज्ञान केवलदर्शन के समान काल में होता है क्योंकि उनके ज्ञान और दर्शन ये दोनों निरावरण हैं।[2]

पाँच प्रकार का अंतराय कर्म क्षय होने से अनंतवीर्य गुण प्रकट हुआ जिससे सिद्धात्मा अनंत सामर्थ्यवान् हुए।

नामकर्म के क्षय से सिद्धों के सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होता है। इंद्रियज्ञान का विषय न होने से सिद्धों के सूक्ष्मत्व गुण कहा है। सिद्ध इंद्रियों के द्वारा नहीं जाने जा

1. प्र.सा./त.प्र.
2. धवलाजी पु.–13

सकते, इसका कारण वे अतीन्द्रिय हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय होने से सिद्धों के सूक्ष्मत्व गुण है।[1] अथवा सूक्ष्म अतीन्द्रिय केवलज्ञान का विषय होने के कारण सिद्धों के स्वरूप को अतीन्द्रिय कहा है।[2]

आयुकर्म के क्षय से आत्मा में जो गुण प्रकट होता है वह उसका अवगाहनत्व गुण जानना चाहिए। अवगाहन अर्थात् अवकाश, स्थान देना। इसी विशेष गुण के कारण एक सिद्ध में अनंत सिद्ध समा जाते हैं, अनंत जीवों को स्थान देने में समर्थ होते हैं। एक जीव के अवगाह क्षेत्र में अनन्त जीव समा जाएँ ऐसी अवकाश देने की सामर्थ्य अवगाहन गुण में है।[3] अथवा एक दीप के प्रकाश मे जैसे अनेक दीपों का प्रकाश समा जाता है उसी तरह एक सिद्ध के क्षेत्र में संकर तथा व्यतिकर दोष से रहित जो अनन्त सिद्धों को अवकाश देने की सामर्थ्य से युक्त है वह अवगाहन गुण है।[4]

गोत्रकर्म के क्षय से आत्मा में अगुरुलघुत्व गुण का सद्भाव माना जाता है। अगुरुलघु–अगुरु व अलघु। जिस प्रकार 'अनादिनिधन' शब्द के विच्छेद करने पर अनादि–अनिधन प्राप्त होता है उसी प्रकार अगुरुलघु का प्राप्त होता है। अगुरु अर्थात् गुरुतर या उच्च भी नहीं और अलघु–नीच भी नहीं। सिद्धों के कोई गोत्र नहीं होता। सिद्धावस्था के योग्य विशेष अगुरुलघुगुण नामकर्म के उदय से अथवा गोत्रकर्म के उदय से ढक गया है क्योंकि गोत्र कर्म के उदय से जब नीच गोत्र पाया तब तुच्छ या लघु कहलाया और उच्च गोत्र में बड़ा अथवा गुरु कहलाया।[5] अथवा यदि उनका स्वरूप सर्वथा गुरु हो तो लोहे के गोले के समान वह नीचे पड़ा रहेगा और यदि वह सर्वथा लघु हो तो वायु से प्रेरित अर्क की रुई के

1. अतीन्द्रियज्ञानविषयं सूक्ष्मत्वम्। –प.प्र./टी.
2. सूक्ष्मातीन्द्रिय-केवलज्ञानविषयत्वात्सिद्धस्वरूपस्य सूक्ष्मत्वं भण्यते। –द्र.सं./टी.
3. एकजीवावगाहप्रदेशे अनंतजीवावगाहदानसामर्थ्यमवगाहनत्वं भण्यते।–प.प्र./टी.
4. एक दीपप्रकाशे नाना दीप–प्रकाशवदेकसिद्धक्षेत्रे संकरव्यतिकर–दोष–परिहारेणानंतसिद्धावकाशदानसामर्थ्यमवगाहनगुणो भण्यते।–द्र.सं./टी.
5. प.प्र.टी.

समान यह सदा इधर-उधर घूमता रहेगा, किन्तु सिद्धों का स्वरूप ऐसा नहीं है। इस कारण उनके 'अगुरुलघु गुण' कहा जाता है।[1]

वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधत्व गुण प्रकट होता है। यहाँ सिद्धों को ऐसा सुख प्राप्त होता है जिसमें कोई बाधा अनंतकाल तक नहीं आती। सिद्धों के सुख के लिए कहा भी है-

अदिसयमादसमुत्थं विसयादीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवजोगो य सिद्धाणं।।46।।

-धवला जी पु.-1

अतिशय रूप आत्मा से उत्पन्न हुआ, विषयों से रहित, अनुपम, अनंत और विच्छेद रहित सुख व शुद्धोपयोग सिद्धों के होता है।

सिद्धों, मुक्त जीवों के जन्म-मरण आदि द्वन्दों की बाधा नहीं है। सिद्ध अवस्था में होने से वे परमसुखी हैं।[2]

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि सुख व दु:ख दोनों कर्म के उदय से होते हैं तब कर्मों के विनष्ट हो जाने पर तो सुख व दु:ख दोनों नष्ट हो जाने चाहिए? उत्तर देते हुए कहते हैं-दु:ख नाम की जो कोई भी वस्तु है वह असाता वेदनीय कर्म के उदय से होती है क्योंकि वह जीव का स्वरूप नहीं है किन्तु सुख कर्म से उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह जीव का स्वभाव है। सुख को जीव का स्वभाव मानने पर साता वेदनीय कर्म का अभाव भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि दु:ख उपशमन के कारणभूत सुद्रव्यों के संपादन में साता वेदनीय कर्म का व्यापार होता है।[3] इस प्रकार सिद्धों के आठ गुणों का कथन यहाँ किया गया।

ग्रंथकार ने सर्वप्रथम सिद्धों को नमस्कार किया पुन: उनके गुणों का वर्णन किया। आत्मा की शुद्ध शाश्वत अवस्था व उनके गुणों को बतलाकर आचार्य

1. द्र.सं.टी.
2. मुक्तानां जन्ममरणद्वन्दोपनिपातव्याबाधास्ति, अतो निर्व्याबाधत्वात् परमसुखिनस्ते।-रा.वा.
3. धवलाजी पु.-6

महाराज संसारी जीवों को उनकी वास्तविकता का ज्ञान करा रहे हैं। शुद्ध विशेष वस्तु को दिखाकर ही अशुद्ध निकृष्ट वस्तु को छुड़ाया जा सकता है। अहिंसक आहार जैसे ग्रंथ में सिद्धों को नमस्कार कर ग्रंथ प्रारंभ करके आचार्य श्री पाठकों, स्वात्महितैच्छुक महानुभावों का ध्यान उनके स्वभाव की ओर आकृष्ट कर रहे हैं कि इतने विराट, विशाल, अनंत, विशुद्ध स्वरूप वाला यह जीव किस प्रकार कर्मों की पराधीनता को स्वीकार किए हुए इन्द्रियों का गुलाम बना हुआ है और स्वयं के भीतर बैठे परमात्मा को भूलकर, निज स्वरूप को भूलकर अपने जीवन की आधारभूत आवश्यकता–भोजन या आहार को भी समीचीन नहीं रख पाया। संभव है जब इस जीव को स्वयं की उत्कृष्टता का भान है तो निकृष्ट पदार्थों को वह स्वयं छोड़ दे। उत्कृष्टता का ज्ञान कराने हेतु ग्रंथकार ने सिद्धों का स्मरण प्रारंभिक तीन गाथाओं में किया।

उस उत्कृष्टावस्था, मोक्ष में तो भोजन की आवश्यकता ही नहीं किन्तु जब तक जीव संसार में है तब तक आहार समीचीन व संयमित होना चाहिए। परमात्मा के अंशज और वंशज उन पदार्थों को स्वीकार नहीं करते जो उनके आराध्यों ने स्वीकार न किया हो।

प्रत्येक जीव स्वयं परमात्मा बनने की शक्ति से युक्त है ऐसे भावी परमात्मा या सिद्धों का आहार किस प्रकार का हो, क्यों हो व उसका जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है उसका ग्रंथकार आगे ग्रंथ मे स्वयं वर्णन करेंगे।

आत्म-भोजन ज्ञान

खमाइ-भाव-जुत्ताइ, चेयणाए महागुणा णियमेण।
णाणं अप्पभोयणं, अहिंसाइ-महव्वदजुत्तं॥4॥

अर्थ–क्षमादि भाव से युक्त चेतना के महागुण और अहिंसादि महाव्रत युक्त ज्ञान नियम से आत्मा का भोजन है।

Forgiveness and other great virtues of consciousness and knowledge along with great non-violence etc, is the food of the soul.

व्याख्यान–शुद्ध चैतन्य लक्षण का धारक आत्मा है। 'अत' धातु निरंतर गमन करने रूप अर्थ में है। और कुछ 'गमनार्थक' धातु ज्ञानात्मक अर्थ में भी होती हैं। इस वचन से यहाँ पर 'गमन' शब्द से ज्ञान कहा जाता है। इस कारण जो यथासंभव ज्ञान सुखादि गुणों में वर्तता है वह आत्मा है। अथवा शुभ-अशुभ मन-वचन-काय की क्रिया के द्वारा यथासंभव तीव्र-मंद आदि रूप से जो पूर्णरूपेण वर्तता है वह आत्मा है। अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों धर्मों के द्वारा जो पूर्ण रूप से वर्तता है वह आत्मा है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो सदा प्राप्त हो वह आत्मा है।

आत्मा और शरीर ये दोनों अलग-अलग हैं। जब तक आत्मा कर्मों से बद्ध है तब तक वह शरीर सहित संसार में भ्रमण करता है। कर्मों से मुक्त होने पर ही वह अशरीरी होता है। प्रत्येक भव में जीव नव-नव शरीर धारण करता है और आयुकर्म क्षीण आदि निमित्तों से वह शरीर नष्ट हो जाता है पुनः दूसरा धारण करता है, यह परिपाटी तब तक चलती है जब तक वह जीव समस्त कर्मों से विमुक्त नहीं हो जाता। इस नाशवान् शरीर (पुद्गल) का प्राय:कर सभी प्राणी नाना प्रकार के मेवा-मिष्ठान्न, पकवान आदि के द्वारा संपोषण करते हैं, उसे तृप्त करते हैं किन्तु आत्मा जो वह स्वयं है उसका पोषण कोई विरले ही करते हैं। वह आत्मा तृप्त होती है सम्यक् ज्ञान से। कहा

भी है–**''ज्ञानामृतं भोजनं''।** आत्मा का भोजन ज्ञान रूपी अमृत है। जैसे खाद्य पदार्थों से शरीर को बल प्राप्त होता है वैसे ही शास्त्र स्वाध्याय, गुण संवर्द्धन से आत्मा बलिष्ठ, संतुष्ट या तृप्त होती है और तब सुसंस्कारित हो अनादिकालीन बंधनों को तोड़ने में समर्थ हो पाती है

व्यक्ति आत्मा से अधिक शरीर को मूल्यवान् मानता है क्योंकि शरीर इंद्रिय का विषय है और आत्मा अतीन्द्रिय है। शरीर को मूल्यवान् मानना जीव की अल्पज्ञता है, वह उसी प्रकार मूर्ख है जिस प्रकार कोई व्यक्ति हीरे की उपेक्षा कर उसके डिब्बे को सम्हालकर रखता हो। जब तक आत्मा रूपी रत्न की कीमत नहीं करोगे तब इन बाहरी पौद्‌गलिक पदार्थों की रक्षा करने से आपका हित संभव नहीं है। **''आत्मानं सततं रक्षेत्''** आत्मा की सदैव, निरंतर रक्षा करनी चाहिए और इसकी रक्षा होती है धर्मध्यान से, अहिंसादि महाव्रतों को धारण करने से, शास्त्र स्वाध्याय से, क्षमादि गुणों के संवर्द्धन से। विवेकी व्यक्ति धर्मध्यान के द्वारा निजात्मा को सुसंस्कारित करता है।

ब्रिटिश शासक भारत से कोहिनूर हीरा उठाकर अपने देश ले गए। क्योंकि वह विशेष प्रकार का हीरा वहाँ पहले किसी ने भी नहीं देखा था अतः उसे देखने के लिए म्यूजियम में रख दिया। एक बार एक भारतीय विद्वान् उसी देश में गया। वह उस म्यूजियम में भी गया। उसने वहाँ के व्यक्ति से पूछा कि यहाँ सबसे कीमती देखने योग्य वस्तु क्या है? उस व्यक्ति ने कहा–'यहाँ कि सर्वश्रेष्ठ वस्तु है कोहिनूर हीरा, जिसे भारत से ही लाया गया है, इससे कीमती और कुछ भी नहीं।' यह सुनकर भारतीय हँसने लगा। सामने खड़ा व्यक्ति उसे हँसता देख आश्चर्य करने लगा कि मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा जो ये इस प्रकार हँस रहा है। उसने पूछ ही लिया–क्या आपको अन्य कुछ बहुमूल्य नजर आ रहा है जो इस प्रकार हँस रहे हैं? भारतीय विद्वान् बोला–आप ही बताएँ, ये कोहिनूर हीरा कीमती है या आँख, विदेशी व्यक्ति बोला, ''आँख क्यों?'' विद्वान् ने कहा, ''भैया! अगर आँख ही नहीं होती तो हीरा देखते कैसे?'' विदेशी बोला हाँ! ठीक कहते हो, आँख अधिक कीमती है। फिर

विद्वान् ने कहा अभी भी अधूरा ही समझे। आँख से अधिक आत्मा कीमती है क्योंकि आत्मा के चले जाने के बाद आँख होते हुए भी बेकार है क्योंकि उसमें देखने की शक्ति ही नहीं रहेगी। तब उस विदेशी को समझ में आया कि संसार के वैभव या स्वयं के शरीर से भी अधिक कीमती है–आत्मा।

क्षमा, मार्दव, सरलता, सहजता आदि गुण और महाव्रत सहित ज्ञान आत्मा को तृप्ति प्रदान करते हैं। यहाँ ग्रंथकार ने मात्र शाब्दिक ज्ञान नहीं कहा; बल्कि चारित्र सहित ज्ञान को आत्मा को पुष्ट करने वाला माना है। आचार्य भगवन् श्री अमोघवर्ष स्वामी ने भी प्रश्नोत्तर रत्नमालिका में **'सम्यग्ज्ञानं क्रियासहितं'** आचरण सहित सम्यग्ज्ञान को मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज स्वीकार किया है। जिस प्रकार disconnected light प्रकाश देने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार आचरण रहित मात्र शब्दज्ञान कार्यकारी नहीं होता। शब्दों को इकट्ठा करना मात्र तो परिग्रह है किन्तु यदि वे ही आचरण में आ जाएँ तो ज्ञान है।

एक बार गर्मी के समय एक व्यक्ति पहाड़ पर चढ़ रहा था। चढ़ते चढ़ते घंटों व्यतीत हो गए, भूख और उससे भी अधिक प्यास के कारण वह अत्यंत व्याकुल था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यदि पानी नहीं मिला तो उसके प्राणों का ही वियोग हो जाएगा। तभी एक और व्यक्ति उसके समीप आकर बोला भाई! क्या बात है? उसने अपनी प्यास की व्याकुलता बताई। यह सुन वह व्यक्ति हैरान था क्योंकि उस व्यक्ति के कंधों पर भोजन की सामग्री व जल वह स्पष्टतया देख पा रहा था। उस व्यक्ति ने कहा तुम्हारे पास भोजन-पानी सब कुछ है तुम उसका उपयोग क्यों नहीं कर लेते? किंतु प्रथम व्यक्ति ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और जो भोजन-पानी उसके लिए ऊर्जाकारक था, वही उसकी अज्ञानता से उस पर बोझ बना हुआ है। ऐसे व्यक्ति को तो आप मूर्ख ही कहेंगे ना। कहीं ऐसी ही भूल मात्र शब्दज्ञानियों वा संसारी प्राणियों की तो नहीं, जो शब्दों को इकट्ठा तो कर रहे हैं किन्तु उन्हें आचरण में ना लाकर उनका सदुपयोग नहीं कर पा रहे। अतः आचार्य महाराज ने यहाँ क्षमादि गुण व अहिंसादि महाव्रत से युक्त ज्ञान को आत्मा का भोजन बताया।

जैसे शरीर के लिए हानिकारक पदार्थों का त्याग करने से आरोग्य लाभ होता है उसी प्रकार आत्मा के लिए हानिकारक कषायादि का त्याग करने से वह आत्मा शुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाती है। जो कोयला लंबे समय तक गहराई में तपकर हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर जैसी अनेक अशुद्धियों को समाप्त कर देता है वह ही हीरे में परिवर्तित हो पाता है। अवगुणों व अशुद्धियों के त्याग के बिना कोयला कभी भी हीरा नहीं बन सकता और क्रोधादि अवगुणों के त्याग के बिना आत्मा भी परमात्मा नहीं बन सकती। परमात्मा, आत्मा की उत्कृष्ट अवस्था है। आचरण युक्त ज्ञान से आत्मा संस्कारित होती है। जैसे कपड़े पर प्रेस करने से उसकी सलवटें दूर हो जाती हैं और सभी को दिखने में सुंदर लगता है, इसी प्रकार ज्ञान, आचरण रूपी प्रेस जब आत्मा पर की जाती है तो आत्मा से अवगुणों की सलवटें खुल जाती हैं, आत्मा संस्कारित होती है। दीर्घकालीन यह सम्यक् संस्कार ही आत्मा को परिशुद्ध कर देता है। स्नानकर, सजकर, सँवरकर तो अनंत बार शरीर को संस्कारित किया है, अब आत्मा को ज्ञान व सम्यक् गुणों से संस्कारित करना आवश्यक है जिससे संसार परिभ्रमण का अंत कर आत्मा सिद्धालय में अनंतसुख के साथ विश्रान्ति प्राप्त कर सके।

स्वयं आचार्य महाराज ने **'विस्सपुज्जो दियंबरो'** नामक ग्रंथ में कहा भी है।

पिवासियो जह जलेण, थिंपदि खलु भुक्खिओ भोयणेणं।
अग्गी इंधणेणं च, तहा अप्पा सण्णाणेणं।।155।।

जैसे प्यासा जल से, भूखा भोजन से व अग्नि ईंधन से संतुष्ट होती है वैसे ही आत्मा सम्यग्ज्ञान से संतुष्ट होती है।

ग्रंथकार ग्रंथ में इसी बात को कह रहे हैं कि क्षमादि स्वाभाविक गुण और संयम युक्त ज्ञान से आत्मा संतृप्त होता है।

जैसा आहार वैसा प्रभाव

विज्जमाण-पदत्थाण, पहावो दिस्सदि णिच्चं लोयम्मि।
आहारो तह भावो, सुद्धाहारं करेज्ज जणा।।5।।

अर्थ–लोक में विद्यमान पदार्थों का नित्य ही प्रभाव दिखता है, जैसा आहार होता है वैसा ही उसका प्रभाव या भाव होता है, अतः लोगों को शुद्ध आहार करना चाहिए।

The effect of the substances, present in the world, is always visible. As there is diet, so is its effect. Hence people should have pure food.

व्याख्यान–संसार की प्रत्येक वस्तु अपना-अपना प्रभाव छोड़ती है, कुछ का सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तो कुछ का नकारात्मक। भवन में रखी प्रत्येक वस्तु अपना प्रभाव दिखाती है। जब बाहर रखी वस्तुएँ अपना प्रभाव दिखाती हैं तब भोजन जो शरीर के अंदर जाता है उसका तो विशेष प्रभाव स्वाभाविक ही है। आहार शब्द का अर्थ है-जो शरीर के द्वारा ग्रहण किया जाए। आहार का वास्तविक प्रयोजन शरीर यात्रा का निर्वाह करना है; क्योंकि प्राणियों का शरीर नैसर्गिक रूप में ही इस प्रकार का बना है कि आहार के बिना वह अधिक काल तक नहीं चल सकता।

एक धनिक सेठ किसी कारण अपने कोषागार में बंद हो गया। घर में कोई नहीं था। वहाँ हीरे-माणिक-मूंगे-मोती- सोना-चांदी का ढेर लगा हुआ था किन्तु वहाँ खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं था। भूखा-प्यासा वह सेठ कुछ दिनों तक भूख-प्यास से तड़पकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। मरते- मरते उसने एक कागज पर लिखा–''जवाहर से ज्वार का दाना बेहतर है।'' जवाहर से पेट नहीं भरता, ज्वार भूख मिटाती है। इसलिए कहा **''अन्नं वै प्राणाः''** अन्न ही प्राण है।
–(ऐतरेय ब्राह्मण)

भोजन से केवल शरीर का ही निर्माण नहीं होता अपितु वह हमारे मन, बुद्धि, विचार, व्यवहार व कार्यशैली को भी प्रभावित करता है। हमारे आचार-विचार-व्यवहार आदि का सीधा सम्बन्ध भोजन से है। कहा भी है–

"Man is what he eats"

मनुष्य की पहचान उसके भोजन की रुचि से हो जाती है। यदि भोजन उच्चस्तरीय (शाकाहारी व सात्विक) होगा तो शरीर में अच्छे कोशाणु (good cells) और रक्त में RBCs बनते रहेंगे। शरीरशास्त्री कहते हैं कि हमारे शरीर में प्रति सेकेंड लाखों रक्त के लाल परमाणु उत्पन्न व नष्ट होते रहते हैं। छह वर्ष में शरीर के सभी कोशाणु व ऊतक पूरी तरह बदल जाते हैं। जैसा भोजन वैसा निर्माण और वैसा ही बदलाव। भोजन से मन, इन्द्रियाँ एवं बुद्धि का घनिष्ठ संबंध है। कहा भी है–

''अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातुस् तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माँसंयोऽणिष्ठस्तन्मनः।

–(छान्दोग्योपनिषत्)

खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है। उसका जो अत्यंत स्थूल भाग होता है वह मल बन जाता है, जो मध्य भाग है वह रस बन जाता है और जो सूक्ष्म भाग है वह मन बन जाता है।

''अन्नमयं हि सौम्यमनः'' मन अन्नमय है अर्थात् जो भोजन आप करेंगे उसका सीधा प्रभाव मन पर पड़ेगा। इसलिए अन्न की शुद्धता से मन की शुद्धता होती है। जिस व्यक्ति का जैसा भोजन होगा उसका व्यवहार, आचरण व विचार उसी अनुरूप होंगे।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिर्लब्धे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

–छान्दोग्योपनिषत्

आहार शुद्ध होने पर अंतःकरण अर्थात् मन भी शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर हमारी बुद्धि निर्मल हो जाती है। निर्मल बुद्धि अज्ञान व भ्रम को दूर करती है और अन्त में सभी बंधनों से मुक्ति मिल जाती है। एतावता भोजन का शुद्ध होना भौतिक एवं पारमार्थिक दोनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

तीन पीढ़ियों तक मौर्यवंश के शासकों को निर्देशित करने वाले, जीवन के अंत में मुनिदीक्षा को अंगीकार कर उपसर्ग सहनकर समाधिमरण करने वाले महान नीतिकार चाणक्य ने कहा है कि मनुष्य का आहार ही उसके विचारों का व चरित्र का निर्माता है।

दीपो भक्षयेत् ध्वान्तं, कज्जलं च प्रसूयते।
यादृशं भुज्यते चान्नं, जायते तादृशी प्रजाः॥

दीपक अंधेरे को खाता है इसलिए काजल पैदा करता है क्योंकि जो जैसा भोजन करता है वैसी ही प्रजा को उत्पन्न करता है, यह सृष्टि का नियम है। किसी ने कहा है–

You are what you eat.[1]

आप वही होते हैं, जो खाते हैं। भोजन के सूक्ष्म तत्त्वों से ही मस्तिष्क की संरचना होती है।

ग्रंथकार यहाँ कह रहे हैं कि जिसका जैसा आहार होता है उसका भाव या प्रभाव भी वैसा ही होता है। कबीरदास जी ने भी कहा है–

जैसा अन्न खाइये, तैसा ही मन होय।

1. The first mention of the phrase ‘you are what you eat came from the 1826 work Physiologie do Govt, on meditations de Gastronomic Transcendente, in which French author Anthelme- Brillat–Savarin wrote: Tell me what you eat & I'll tell you to what you are.”

जैसा पानी पीजिए, तैसी वानी होय॥

यह मात्र कहावत या दोहा नहीं अपितु अनादिकालीन अनुभूत सत्य है। अन्न का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जिस समय महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ था और शरशैय्या पर पड़े भीष्म पितामह उपदेश दे रहे थे, तब द्रौपदी को हँसी आ गई। भीष्म ने पूछा–''क्या बात है बेटी, तुम हँसी क्यों?'' द्रौपदी संकुचाकर बोली–''नहीं, पितामह! मुझे क्षमा करें, मुझसे भूल हो गई। भीष्म ने पुनः पूछते हुए कहा ''बेटी! तुम्हारी हँसी अकारण नहीं हो सकती, जो कहना चाहती हो, निःसंकोच कहो।''

द्रौपदी ने नम्रतापूर्वक कहा ''पितामह! जिस समय आप उपदेश दे रहे थे, उस समय मुझे विचार आया, आज तो आप धर्म की इतनी गूढ़ और उत्तम व्याख्या कर रहे हैं किन्तु भरी राजसभा में जब कौरव मेरा अपमान करने को प्रयासरत् थे, दुःशासन मुझे वस्त्रहीन करना चाहता था, उस समय आप भी वहीं उपस्थित थे, तब आपका यह धर्म, यह ज्ञान कहाँ चला गया था? बस यही सोचकर हँसी आ गयी।''

भीष्म पितामह मुस्कुराये और सहजता से बोले–''बेटी! आपका कोई अपराध नहीं है। धर्मज्ञान तो मुझे उस समय भी था किन्तु दुर्योधन का अन्यायपूर्ण अन्न खाने से मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी। पर अब अर्जुन के बाणों ने मेरे शरीर का दूषित अन्न से बना हुआ सारा रक्त निकाल दिया है अतः बुद्धि के शुद्ध होने पर धर्म का विवेचन कर रहा हूँ।''

सत्य है–अन्याय, अनीति और असत्यभाषण आदि से उपार्जित अन्न खाने वाले की मनोवृत्तियाँ मलिन ही होती हैं। 'जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन' यह कहावत वैज्ञानिक तथ्यों पर भी प्रमाणिक सिद्ध होती है। प्राचीनकाल से ऋषि, मुनि, मनीषियों ने तो परिणामों या विचारों की शुद्धता के लिए आहार पर ध्यान केन्द्रित किया ही है। आज के डॉक्टर्स और वैज्ञानिक भी इन तथ्यों को स्वीकार

करते हैं। विज्ञान कहता है कि हमारा शरीर एवं संपूर्ण जीवन न्यूरोट्रांसमीटर द्वारा संचालित होता है।

तंत्रिका तंत्र (nervous system) हमारे शरीर की गतिविधियों का समन्वय है। यह सब हमारे व्यवहार, सोच व कार्यों को नियंत्रित करता है। इसी तंत्रिका तंत्र से मानव शरीर की अन्य सभी प्रणालियाँ कार्य करती हैं। कोशिकाएँ जो कि तंत्रिका तंत्र बनाती हैं, न्यूरॉन्स कहलाती हैं। दो न्यूरॉन्स के बीच छोटे से अंतराल को सायनेप्स (synapse) (अन्तर्ग्रंथन) कहा जाता है। इस छोटे से अंतराल से रासायनिक पदार्थ के माध्यम से तंत्रिका आवेग जाते हैं जिन्हें न्यूरोट्रांसमीटर (neurotransmitter) कहते हैं। जब व्यक्ति का खान-पान बिगड़ता है, नशा करता है तो दिमाग में ये न्यूरोट्रांसमीटर कैमिकल इनबैलेंस हो जाते हैं जिससे व्यक्ति धीरे-धीरे डिप्रेशन की ओर चला जाता है। कई बार तो आत्महत्या (suicide) तक पहुँच जाता है।

न्यूरोट्रांसमीटर रसायन के बिना शरीर की कोई भी गतिविधि संभव नहीं है। ये शरीर की आधारशिला है और यह न्यूरोट्रांसमीटर भोजन से बनते हैं। इसलिए भोजन में क्या लेना है, क्या नहीं यह समझने की आवश्यकता है। भोजन का स्रोत यदि माँसादि गंदे पदार्थ हैं तो सारे शरीर की क्रियाविधि गड़बड़ा जाएगी, जो उसके लिए अत्यंत हानिकारक होगी; क्योंकि इससे उत्पन्न विचार असमीचीन होंगे। यदि विचार ही गलत हों तो मानव ठीक कैसे हो सकता है। व्यक्ति जो सोचता है, वही तो होता है। कहा भी है–

"A man is but a product of his thoughts."

–M.K. Gandhi

व्यक्ति के विचार बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित महान् वैज्ञानिक ऑर्थर स्टेन्ली एडिंगटन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने अस्तित्व की खोज शुरू की थी तो मैं सोचता था कि यह संसार वस्तुओं का एक संग्रह है। अब जबकि मैं विदा की बेला में आ गया हूँ तो मैं कहना चाहता हूँ

कि “The world is less like a thing, more like a thought.” यह संसार वस्तु के जैसा कम और विचार के जैसा ज्यादा है।

वास्तविकता यही है कि व्यक्ति अपने विचारों के अनुरूप होता है। उसके विचार मात्र उसको नहीं अपितु संसार भर को प्रभावित करते हैं। आगम की भाषा में इन्हें वर्गणाएँ कहा जाता है, जो एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। वाशिंगटन डी.सी में महेश योगी के टीएम (Transcendental Meditation) सिद्धि प्रयोगों ने भी यह सिद्ध किया है कि मस्तिष्क से निकलने वाली तरंगें पूरे समाज को प्रभावित करती हैं। महेश योगी ने 10,000 लोगों के एक साथ ध्यान करने के प्रयोग किये हैं और उनके प्रयोगों से सिद्ध हुआ कि इतने सारे लोगों के एक साथ ध्यान करने से वहाँ के अपराधिक ग्राफ में अप्रत्याशित रूप से कमी आई। यदि व्यक्ति की विचार तरंगों का प्रभाव नहीं पड़ता तो टोयोटा कंपनी Mind controlled wheel chair कभी नहीं बना पाती।

इस प्रकार सिद्ध है कि आहार व्यक्ति के विचार, समाज व संसार को प्रभावित करता है। अतः राष्ट्र में सम्यक् परिवर्तन के लिए आहार शुद्ध बनाना अत्यंतावश्यक है। कहा भी है–

One cannot think well, love well, sleep well, if one has not dined well.

समाज में प्रेम, सदाचार, सहिष्णुता, सहयोगी भावना, शान्ति, क्षमा, कार्यकुशलता, मैत्री आदि शुभ तत्त्वों की वृद्धि के लिए आहार को समीचीन करना होगा। आहार की शुद्धता बढ़ेगी तो हॉस्पिटल्स में भीड़ कम होगी, जेलों में अपराधियों की संख्या में भी कमी आ जाएगी और समाज में होने वाले जघन्य अपराधों की मात्रा भी कम होगी। अतः ग्रन्थकार विश्व हित के लिए शुद्ध आहार की प्रेरणा यहाँ देते हैं।

धर्म का कारण-आहार

सुहासुहभाव-हेदू, आहारो हु धम्मकारणं होदि।
तव-णाण-संजमाणं, सग्ग-णिव्वाण-कारणं जो॥6॥

अर्थ–आहार शुभ-अशुभ भाव का हेतु है। वह धर्म का कारण है। आहार तप, ज्ञान व संयम का हेतु है जो स्वर्ग और मोक्ष का कारण होता है।

Food is the cause of good or bad thoughts and feelings. That is the cause of religion, penance, knowledge and self-restraint which leads to heaven and salvation.

व्याख्यान–आहार व्यक्ति के शुभ व अशुभ परिणामों में कारण है। व्यक्ति जैसा आहार करता है उसमें वैसे ही विचार उत्पन्न होते हैं, पुनः वह अपने विचारों के अनुसार ही आचरण करने लगता है। कहा भी है–"You think what you eat & become what you think." आहार व व्यक्ति के परिणामों का घनिष्ठ संबंध है। एक बार एक महात्मा किसी सेठ के यहाँ पहुँचे। सेठ ने महात्माजी को बड़े भावों से भोजन कराया। महात्माजी का भोजन संपन्न हुआ। वहीं सेठजी का बहुमूल्य हार रखा हुआ था। महात्माजी चुपचाप उस हार को छिपाकर साथ में ले गए। कुछ घंटे बाद सेठजी का ध्यान अपने उस हार की ओर गया। सेठजी ने सब ओर ढूंढा किंतु हार उन्हें नहीं मिला।

उधर महात्माजी जब शौच क्रिया से लौटे तब उनका ध्यान उस हार पर गया जो वे सेठजी के यहाँ से ले आए थे। महात्माजी को अपने ऊपर बहुत ग्लानि हुई। पुनः कारण सोचा तब समझ में आया कि आज का अन्न परिशुद्ध नहीं था। संभवतः चोरी का था, जिससे चोरी के भाव हुए एवं मल विसर्जित हो जाने पर जब अंतरंग की शुद्धि हुई तब उन्हें अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। महात्माजी तुरंत सेठजी के यहाँ पहुँचे व हार लौटाकर पूछा ''सेठजी! सत्य बताएँ आपका धन

ईमानदारी का है या चोरी का?'' सेठजी ने क्षमा माँगते हुए कहा, ''महात्माजी! मेरा धन अन्याय व चोरी का है।'' महात्माजी मुस्कुराते हुए बोले—जब एक बार के चोरी के धन से आए द्रव्य को खाकर मेरे ऐसे निकृष्ट परिणाम हो सकते हैं तब रोज-रोज खाने वालों की क्या दशा होगी।

ग्रंथकार ने मानो सावधान करते हुए कहा है कि आहार शुभ व अशुभ उभय परिणामों का हेतु है।

"It has been observed in many research works that our food and drinks are closely and deeply related with our mental attitude."

अनेक अनुसंधान कार्यों में यह देखा गया है कि हमारे भोजन- पान का हमारी मानसिक अवस्थाओं से निकटता का एवं गहरा सम्बन्ध है।

आहार धर्म, तप व संयम का हेतु है। यदि जीव संयम, व्रतादि का पालन करना चाहता है, मुक्ति का वांछक है तो उसके लिए आत्मा एवं शरीर दोनों के गुणधर्मों को जानना आवश्यक है। शरीर के माध्यम से ही धर्म की आराधना संभव है। जैसे एक व्यक्ति गाड़ी से यात्रा कर रहा है तो व्यक्ति की सुरक्षा तो आवश्यक है ही, किन्तु मंजिल तक पहुँचने के लिए गाड़ी की सुरक्षा भी आवश्यक है। उसी प्रकार मुक्ति रूपी मंजिल तक पहुँचने के लिए शरीर रूपी गाड़ी को ठीक रखना भी आवश्यक है। **''शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्''** शरीर के माध्यम से ही धर्म की आराधना होती है अतः इसकी सुरक्षा करना नितान्त आवश्यक है।

वैसे तो यह शरीर रोगों का घर है। **''शरीरं व्याधि- मंदिरं''**। अनेक रोग इस शरीर में हैं जो कभी भी उत्पन्न हो सकते हैं। शरीर में रोगों की संख्या बताते हुए भगवती आराधना में आचार्य महाराज कहते हैं—

एक्केक्के गुलिवाहि, छण्णवदि होंति जाणमणुयाणं।
अस्सेसे य सरीरे, रोया पुण कित्तिया भणिदा॥

एक अंगुल में ही छियानवे रोग होते हैं तो समस्त शरीर में कितने रोग होंगे? यह व्यक्ति स्वयं ही विचार कर ले। अथवा रोगों की कुल संख्या बताते हुए भी कहा है—

पंचेव य कोडीओ, भवन्ति तह अट्ठसट्ठिलक्खाइं।
णवणवरिं च सहस्सा, पंचसया होंति चुलसीदी॥

एक मनुष्य के शरीर में अव्यक्त रूप से पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग होते हैं।

इस अवस्था में थोड़ा सा भी प्रमाद व्यक्ति को रोगों का शिकार बना सकता है, संयम से च्युत कर सकता है। इसलिए आचार्यों ने लिखा कि मुनिदीक्षा से पूर्व आरोग्य शास्त्र का ज्ञान कराना आवश्यक है। श्री उग्रदित्याचार्य ने 'कल्याण कारकम्' नामक एक चमत्कारिक आयुर्वेद शास्त्र की रचना की। उसमें उन्होंने लिखा–

आरोग्यशास्त्रमधिगम्य मुनिर्विपश्चित्।
स्वास्थ्यं स साधयति सिद्धसुखैकहेतुं।
अन्यः स्वदोषकृतरोग - निपीडितांगो।
बध्नाति कर्म निजदुष्परिणाम भेदात्॥20.89॥

जो विद्वान्-भिक्षु अत्यंत सूक्ष्म आयुर्वेद विद्या (प्राणवायु विद्या) को जानकर आहार, विहार और निहार पर ध्यान रखकर स्वास्थ्य रक्षा कर लेता है, वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। किन्तु जो भिक्षुराज स्वविधि-विधान को न जानकर अपने ही सदोष आहार के कारण रोग से पीड़ित रहता है वह स्वयं ही कर्मबंध कर लेता है, पाप कर्मों का बंध करता है। धर्मध्यान करने वाला, आध्यात्मिक वृत्ति करने वाला निरोगी रहना चाहिए। इसलिए आहार पद्धति, आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है।

I. Walton ने कहा है–"Look to your health and if you have it, praise God and value it next to a good conscience; for health is the second blessing that we mortals are capable of; a blessing money cannot buy."

अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दो और यदि तुम्हें यह प्राप्त है तो ईश्वर की सराहना करो और इसे एक श्रेष्ठ अन्तरात्मा के बाद महत्व दो, चूँकि स्वास्थ्य वह

दूसरा वरदान है जिसे प्राप्त करने में हम नश्वर प्राणी समर्थ हैं, एक वरदान जिसे धन से क्रय नहीं किया जा सकता। स्वास्थ्य से बड़ी संपत्ति कोई भी नहीं है।

"The first wealth is health."–Ralph Waldo Emerson.

शरीर के साथ खिलवाड़ न करें। संयम से रहें तभी धर्मध्यान संभव है। शरीर से शत्रु के समान नहीं अपितु मित्र के समान व्यवहार करें, वहीं आपको आपकी मंजिल तक लेकर जाएगा। आचार्य अमितगति स्वामी ने अमितगति श्रावकाचार में कहा भी है–**''रक्षन्ते व्रतिनां येन शरीरं धर्मसाधनम्।''11/3**

व्रतियों के लिए शरीर धर्मध्यान का प्रधान कारण है अतः धर्मसाधना के लिए शरीर की रक्षा करनी चाहिए। शरीर के स्वस्थ रहने पर ही स्वाध्याय, उपवासादि के कारणभूत बल, आयु व सुख की प्राप्ति होती है। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी ने रयणसार में कहा है–

सीदुण्ह-वाय-पिउलं, सिलेसिमं तह परिसमं वाहिं।
कायकिलेसुववासं, जाणिच्चा दिण्णदे दाणं॥23॥

शीतकाल, उष्णकाल और वर्षाऋतु, भिक्षु की वात, पित्त, कफ प्रकृति, परिश्रम एवं व्याधि, कायक्लेश तप और उपवास जानकर नित्य आहारदान देना चाहिए।

यह सब निर्देश आचार्यों ने आरोग्य लाभ हेतु दिया है। कषायों को कृश करने के लिए शरीर को स्वस्थ रखना जरूरी है। 'कल्याणकारकम्' में आचार्य महाराज के कहा है–

''सर्वात्मना माध्यमदेहयुक्तः''।

He who has health has hope; and he who has hope has everything.
–Thomas Carlyle

जिसके पास स्वास्थ्य है उसके पास आशा है और जिसके पास आशा है उसके पास सब कुछ है। गृहस्थ हो या मुनि शरीर की स्वस्थता सभी के लिए जरूरी है।

‘‘धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्। –चरक

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए आरोग्य ही मूल है।

आचार्य श्री सोमदेवसूरी ने ‘यशस्तिलक चंपू’ में कहा है–**‘‘अनेककक्षमेवेदं शरीरं योगिनां गृहम्।।695।।**

यह शरीर योगियों का सहायक मंदिर है इसलिए योगीजन शरीर को ध्यानरूपी अन्नजल से संतुष्ट रखते हैं।

समीचीन आहार से शरीर की स्थिति है, स्वस्थता है। उससे धर्मध्यान, संयम, व्रतादि का पालन संभव है व धर्मध्यानादि से जीव क्रमशः संसार सुख व मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

आहारादि संज्ञा विश्लेषण

छउमत्थ-सव्वजीवा, विज्जंते अह-मज्झुड्ढलोयम्मि।
होंति ताणं आहार-भय-मेहुण-परिग्गहसण्णा॥7॥

पढमा पमत्ततं च, दोण्णि अपुव्वणिवित्ति-गुणंतं पुण।
परिग्गहो सुहुमंतं, कमसो खीणसण्णा अग्गे॥8॥

अर्थ—छद्मस्थ सभी जीव अधो, मध्य और ऊर्ध्वलोक में विद्यमान हैं। उन छद्मस्थों की आहार, भय, मैथुन व परिग्रह संज्ञा होती है। प्रथम आहार संज्ञा प्रमत्त गुणस्थान तक, पुनः दोनों (भय, मैथुन) संज्ञा क्रमशः अपूर्व व अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक अर्थात् भय संज्ञा अपूर्वकरण व मैथुन संज्ञा अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होती है एवं परिग्रह संज्ञा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक होती है। इसके आगे सभी क्षीण संज्ञा वाले जानने चाहिए।

Worldly beings exist in three worlds-upper, lower and middle. Worldly beings have fewer sensations-food, fear, intercourse and possession. First food sensation is found upto Pramatta Gunsthana (sixth spiritual stage), fear sensation is found upto Apoorvakaran Gunsthana (eighth spiritual stage), intercourse sensation is found upto anivrittikaran gunsthana (ninth spiritual stage) and possession sensation is found up to sukshma Samparaya gunsthana (tenth spiritual stage). There is no sensation in further gunsthanas.

व्याख्यान—छद्म का अर्थ होता है—आवरण, 'स्थ' अर्थात् स्थित। अतः घातिया कर्म रूपी आवरण में जो स्थित हैं वे छद्मस्थ कहलाते हैं। जिस घातिकर्म समूह के कारण जीव चारों गतियों में संसरण करते हैं वह घातिकर्मसमूह संसार है और इसमें रहने वाले जीव संसारस्थ या छद्मस्थ हैं।[1] अथवा छद्म ज्ञानावरण और

1. संसरन्ति अनेन घातिकर्मकलापेन चतसृषु गतिष्विति घातिकर्मकलापः संसारः। तस्मिन् तिष्ठन्तीति संसारस्थाः छद्मस्थाः।—ध.13

दर्शनावरण को कहते हैं। उसमें जो रहते हैं उन्हें छद्मस्थ कहते हैं।[1] तीनों लोक में एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय तक छद्ममस्थ जीव स्थित हैं। मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि के भेद से छद्मस्थ जीव दो प्रकार के हैं। मिथ्यादृष्टि छद्मस्थ तो तीनों लोक में भरे पड़े हैं। सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ दो प्रकार के हैं। चौथे से दसवें गुणस्थान तक सराग छद्मस्थ हैं तथा 11वें व 12वें गुणस्थानवर्ती वीतराग छद्मस्थ हैं। यहाँ ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि कर्मों का क्षय हो जाने पर आगे गुणस्थान में जीव छद्मस्थ नहीं कहलाते, वे केवली कहे जाते हैं।

यहाँ छद्मस्थों में चार संज्ञाओं का विवेचन किया। सभी छद्मस्थ चार संज्ञा से युक्त नहीं होते। इसका स्पष्टीकरण ग्रंथकार स्वयं साथ में ही कर रहे हैं। किन्तु इसे जानने से पूर्व संज्ञा का जानना आवश्यक है। वांछा या अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। श्री गोम्मटसार जीवकांड में संज्ञा को परिभाषित करते हुए कहा है–

इह जाहि बाहिया वि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
सेवंता वि य उभये ताओ चत्तारि सण्णाओ॥134॥

जिनसे बाधित होकर जीव इस लोक में दारुण दु:ख प्राप्त करते हैं और जिनका सेवन करने पर भी जीव दोनों ही भवों में दारुण दु:ख को प्राप्त होते हैं वे चार संज्ञाएँ हैं।

आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी ने भी कहा है–

''आहारादिविषयाभिलाषः संज्ञेति''

आहार आदि विषयों की अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। ये संज्ञा आहार, भय, मैथुन व परिग्रह के भेद से चार प्रकार की होती है।[2]

आहार के विषय में जो तृष्णा या आकांक्षा होती है वह आहार संज्ञा है।[3] अंतरंग व बाह्य कारण मिलने पर यह आहार संज्ञा उत्पन्न होती है। भूख लगने पर, नाना प्रकार के पकवानादि देखने पर, सुन्दर सुस्वादु भोजन की स्मृति रूप

1. छद्मज्ञानदृगावरणे, तत्र तिष्ठन्तीति छद्मस्था:।–ध.1
2. सण्णा चउव्विहा आहार-भय-मेहुण-परिग्गहसण्णा चेदि। –(ध.पु.2)
3. आहारे या तृष्णा कांक्षा आहारसंज्ञा। –(ध.पु. 2)

उपयोग होने पर, असातावेदनीय के तीव्र उदय व उदीरणा से आहार की वांछा या संज्ञा उत्पन्न होती है।[1]

अत्यंत भय से उत्पन्न जो भागकर छिप जाने आदि की इच्छा होती है वह भय संज्ञा है।[2] तीव्र भयानक वेष-रूप-क्रियादि या क्रूर पशु आदि के अवलोकन से, भयंकर डाकू, चोर, पशु आदि की स्मृति से, शक्ति की हीनता से और भय नोकषाय कर्म की उदीरणा से यह भय संज्ञा उत्पन्न होती है।[3] भय के कारण भागने की, सुरक्षित स्थान खोज करने की इच्छा होती है।

मैथुन रूप क्रिया में जो वांछा है उसको मैथुन संज्ञा कहते हैं।[4] कामोत्पादक गरिष्ठ व स्वादिष्ट भोजन करने से, पूर्व में भोगे हुए विषयों को याद करने से, कुशील सेवन से, कुशील (विट) पुरुषों की संगति से, कुशील काव्य व कथादि सुनने से, कुशील नाटक-टेलीविजन-चित्र आदि के देखने से और वेदकर्म के तीव्र उदयरूप उदीरणा के कारण मैथुन संज्ञा होती है।[5]

बाह्य पदार्थों के निमित्त से जो लोभ होता है वह परिग्रह संज्ञा है।[6] अथवा धन-धान्यादि के अर्जन करने रूप जो वांछा है वह परिग्रह संज्ञा है।[7] उपकरणों को देखने से, उनका उपयोग करने से, उनमें मूर्च्छाभाव रखने से तथा लोभ कषाय कर्म की उदीरणा से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है।[8]

---

1. आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
   सादिदरुदीरणाए, हवदि हु आहारसण्णा हु।।135।। -गो.जी.
2. भयेन उत्पन्ना पालयनेच्छा भयसंज्ञा। -गो.जी./जी.प्र.
3. अइभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए।
   भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चदुहिं।।136।। -गो.जी.
4. मैथुने-मिथुनकर्मणि सुरतव्यापाररूपे संज्ञा-वांछा मैथुनसंज्ञा।
   -गो.जी./जी.प्र.
5. पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगेण कुसीलसेवाए।
   वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ।।137।।
6. आलीढबाह्यार्थलोभतः परिग्रहसंज्ञा। -(ध.पु.2)
7. परिग्रह संज्ञा-तदर्जनादि वांछा जायते। -गो.जी./जी.प्र.
8. उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य।

पुनः ग्रन्थकार गुणस्थानों में संज्ञा के अस्तित्व का कथन करते हैं। मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थान से प्रमत्तविरत नामक छठवें गुणस्थान तक चारों संज्ञाएँ ही होती हैं। अप्रमत्त गुणस्थान में प्रथम संज्ञा अर्थात् आहार संज्ञा नहीं होती क्योंकि वहाँ आहार संज्ञा के अंतरंग कारण असातावेदनीय कर्म की उदीरणा का अभाव हो गया है। सातावेदनीय-असातावेदनीय तथा आयुकर्म की उदीरणा प्रमत्तगुणस्थान तक ही होती है, अप्रमत्त संयतादि गुणस्थानों में उनका अभाव हो जाता है। अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में भय, मैथुन व परिग्रह संज्ञा होती है क्योंकि उनके कारण नोकषाय भयकर्म, वेदकर्म व लोभकषाय की उदीरणा पाई जाती है।

अपूर्वकरण आठवें गुणस्थान में भयकर्म की उदीरणा- व्युच्छित्ति हो जाने से अनिवृत्तिकरण (नौवें) गुणस्थान में भय संज्ञा नहीं है। नौवें गुणस्थान के अवेदभाग में वेदकर्म की उदीरणा नहीं होती अतः वहाँ पर मैथुन संज्ञा भी नहीं होती।

उपशांतमोह आदि गुणस्थानों में लोभकषाय की उदीरणा का अभाव हो जाने से परिग्रहसंज्ञा का भी अभाव हो जाता है। अप्रमत्तादि गुणस्थानों में कर्मोदीरणा निमित्त कारण के सद्भाव से उन संज्ञाओं का अस्तित्व उपचार मात्र से कहा गया है, किंतु वहाँ उनका कार्य शरण, रतिक्रीडा व परिग्रह की वांछा नहीं होती।

कर्मों का मन्द, मन्दतर व मन्दतम अतिसूक्ष्म अनुभागोदय होने से तथा विशेष संयम सहित होने से ध्यानयुक्त महामुनियों के मुख्यरूप से भय आदि संज्ञाएँ नहीं होतीं, अन्यथा शुक्लध्यान व घातिया कर्मों का क्षय कदाचित् घटित नहीं हो सकता। इस प्रकार जीवनमुक्त जीवों के अभाव का प्रसंग आ जाएगा। जीवन्मुक्त जीवों (अर्हन्तों) का अभाव होने से परममुक्त (सिद्ध) जीवों का भी अभाव हो जाएगा।

जिस प्रकार वैदिकमत वाले संसारी जीवों की मुक्ति का अभाव मानते हैं वैसे ही अर्हन्त के मत में भी मुक्ति के अभाव का प्रसङ्ग आ जाएगा। इसीलिए मोक्ष के इच्छुक स्याद्वादियों को क्षपकश्रेणी में आहार आदि चारों संज्ञाओं का अभाव मानना चाहिए। इस प्रकार आहार संज्ञा का निषेध हो जाने से केवलियों के कवलाहार भुक्ति कैसे संभव है? स्त्रियों के परिग्रहसंज्ञा के सद्भाव के कारण क्षपकश्रेणी-

लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा।।138।।

आरोहण का अभाव होने से स्त्रियों की मुक्ति कैसे सम्भव है? परमागम में स्त्रियों के वस्त्रत्यागपूर्वक संयम का निषेध है। आगमान्तर–जिसमें श्वेतवस्त्र आदि का विधान बताया गया है, युक्ति–आगमप्रमाण से उस आगमान्तर का खण्डन हो जाने से वह आगमान्तर (अन्य आगम) आगमाभास सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार केवलियों के कवलाहार का और स्त्री–मुक्ति का निषेध हो जाता है।[1]

इस प्रकार छठवें गुणस्थान तक चारों, सातवें गुणस्थान में आहार संज्ञा बिना तीन, आठवें गुणस्थान में तीन (भय, मैथुन, परिग्रह), नौवें गुणस्थान में दो (मैथुन, परिग्रह) व दसवें गुणस्थान में एक परिग्रह संज्ञा होती है। इसके आगे गुणस्थानों में संज्ञा का अभाव है। वे सभी क्षीण संज्ञा वाले कहे जाते हैं।

1. श्रीमदभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत टीका।

आहार व उनके स्वामी

कम्मो माणसिगो खलु, लेप्पो ओजो णोकम्माहारो।
छव्विह-कवलाहारो, आहारो संसारीसुं च॥9॥
णेरइय-देवाणं च, रुक्खाण अंडाणं केवलीणं।
माणुसाण-तिरियाणं, होदि उत्तकमेणाहारो॥10॥

अर्थ–संसारियों में निश्चय से आहार छह प्रकार का है। कर्म, मानसिक, लेप्य, ओज, नोकर्म और कवलाहार। नारकी, देव, वृक्ष, अंडे, केवली और मनुष्य-तिर्यंचों के उक्त क्रम से आहार होता है।

There are definitely six types of food of worldly beings. Karmahaar, Mansik ahaar, Lepahaar, Ojahaar, Nokarmahaar and Kavalahaar. These are of souls of hell, celestial beings, trees, egg, arihantas and men or animals respectively.

व्याख्यान–आहार का मनुष्य के जीवन पर अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। यह आहार छह प्रकार का कहा गया है–कर्माहार, मानसिकाहार, लेपाहार, ओजाहार, नोकर्माहार व कवलाहार। अन्य भी कहा है–

णोकम्म-कम्माहारो कवलाहारो य लेप्पाहारो।
ओजमणोविय कमसो आहारो छव्विहो णेयो।

1. संसारी जीव प्रति समय कर्मों का बंध करता है, कार्माण वर्गणाओं का आहरण ही कर्माहार कहलाता है। अथवा जीव के परिणामों के द्वारा प्रतिक्षण कार्माण-वर्गणाओं के ग्रहण करने को 'कर्माहार' कहते हैं। नारकियों के लिए यह मुख्य माना जाता है। नरक की वेदना के वर्णन में लिखा है कि वहाँ इतनी भूख है कि पूरे लोक का अनाज खा लें फिर भी भूख न मिटे और इतनी प्यास की वेदना

है कि सारे समुद्र का पानी भी पी लें तो भी प्यास न मिटे किन्तु नरक में किसी भी प्रकार का आहार नहीं होता। भूख- प्यास की वेदना नारकी हर पल सहते हैं।

2. मन में सोचने भर से होने वाला आहार मानसिकाहार या मानस आहार कहलाता है। यह आहार मात्र देवों के होता है। देवों को भूख लगने पर मन में भोजन का विचार आते ही कण्ठ से अमृत झरता है जिससे उनकी क्षुधा शांत हो जाती है।

3. शरीर के स्पर्श मात्र से ग्रहण किए जाने वाला आहार लेप्याहार है। यह मात्र वृक्षादि एकेन्द्रिय जीवों के होता है।

4. पक्षियों द्वारा अपने अंडे को सेना, उन्हें ऊर्जा देना, ऊष्माहार या ओजाहार कहलाता है। पक्षियों द्वारा दिये गए अंडों में जीव होता है। वे जीव इसी ओज से शक्ति प्राप्त करते हैं। अंडे के अंदर जीव का इस प्रकार ऊर्जा ग्रहण करना उसका ओजाहार है।

5. शरीर निर्माण के निमित्तभूत नोकर्म वर्गणाओं का प्रतिसमय होना नोकर्माहार है। औदारिक, वैक्रियक, आहारक व तैजस शरीर के योग्य वर्गणाओं को नोकर्मवर्गणा कहते हैं। नोकर्माहार 13वें गुणस्थान तक प्रत्येक जीव के होता है और केवली भगवान् के मात्र नोकर्माहार ही होता है। बोधपाहुड़ की टीका में आचार्य श्री श्रुतसागरजी ने स्पष्ट किया है–''अन्य जनों को असाधारण ऐसे शरीर की स्थिति के हेतुभूत तथा पुण्यरूप अनन्ते परमाणु समय-समय प्रति अर्हन्त भगवान् के शरीर से संबंध को प्राप्त होते हैं। ऐसा नोकर्म रूप आहार ही भगवान का कहा गया है, इतर मनुष्यों की भाँति कवलाहार भगवान् को नहीं होता।[1]

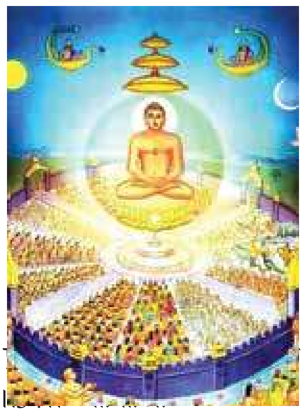

1. समयं समयं प्रत्यनन्ताः परमाणवोऽनन्यजनासाधारणाः शरीरस्थितिहेतवः नोकर्मरूपा अर्हताहार उच्यते न त्वितरमनुष्यवद्भगवति कवलाहारो भवति।

6. कवल का अर्थ होता है-ग्रास। मुख में कवल या ग्रास बनाकर जो आहार किया जाता है वह कवलाहार है। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय सभी इसमें समाहित हैं। देव, नारकी व केवली भगवान् के यह कवलाहार नहीं होता मनुष्य व तिर्यंचों के कवलाहार होता है।

कवलाहार का स्वरूप

कवल-गाहगं अदणं, कवलाहारो मण्णदे समयम्मि।
णरतिरियाणं लोए, कवलाहारो मुणेदव्वो॥11॥

अर्थ–आगम में कवल (ग्रास) को ग्रहण करने वाला भोजन कवलाहार माना जाता है। लोक में मनुष्य व तिर्यंचों के कवलाहार जानना चाहिए।

The food that is consumed in form of morsels is considered as kavalahaar. Kavalahaar should be known of humans and animals in the world.

व्याख्यान–यहाँ ग्रंथकार कवलाहार के स्वरूप का कथन करते हैं। अन्य पाँच प्रकार के आहारों के स्वरूप का नाम मात्र निर्देशित किया किन्तु कवलाहार का लक्षण भी कहा। इसका कारण यह है कि ग्रंथकार कवलाहारी मनुष्यों के आहार के शुद्धिकरण का यहाँ निर्देश कर रहे हैं। देव व नारकियों को शास्त्र की आवश्यकता नहीं, वे तो स्वयं अवधिज्ञानादि के धारक होते हैं, नारकियों को भी विपरीत या सम्यक् ज्ञान होते हैं, तिर्यंच पढ़ नहीं सकते। शास्त्र का लेखन मनुष्य के जीवन में सम्यक् परिवर्तन हेतु किया गया है। मनुष्यों का आहार (कवलाहार) किस प्रकार का होना चाहिए, किस शुद्धि से होना चाहिए इन सबका कथन ग्रंथकार स्वयं ग्रन्थ में करेंगे।

कवल का अर्थ होता है-ग्रास। ग्रास का ग्रहण करना कवलाहार कहलाता है। कोई यहाँ शंका करता है कि जल आदि का ग्रहण करना कौन सा आहार कहलाएगा? समाधान देते हुए कहते हैं कि ग्रास तो यहाँ उपलक्षण मात्र है। कवलाहार से खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय सबका ग्रहण होता है अथवा मुख से खाए जाने वाला कवलाहार कहलाता है। देव, नारकी, केवली, एकेन्द्रिय या अन्य जो मुख से आहार नहीं करते उनके कवलाहार नहीं होता। इन सबके आहार का कथन पूर्व गाथा में किया जा चुका है।

कोई प्रश्न करता है यदि केवली कवलाहार नहीं करते तो उनके शरीर की स्थिति कैसे रहती है; रत्नत्रयादि के लिए तो भोजन करते ही होंगे?

ऐसा कहना ठीक नहीं है। केवली के कवलाहार नहीं होता; उनके परमौदारिक शरीर की स्थिति नोकर्माहार के माध्यम से होती है।

केवली जिन पूर्णरूप से आत्मस्वभाव को प्राप्त कर चुके हैं इसलिए वे रत्नत्रय अर्थात् ज्ञान, संयम और ध्यान के लिए भोजन करते हैं, यह बात संभव नहीं है। इसी का स्पष्टीकरण करते हैं–

1. केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिए तो भोजन करते नहीं हैं क्योंकि उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया है तथा केवलज्ञान से बड़ा और कोई दूसरा ज्ञान प्राप्त करने योग्य नहीं है, जिससे उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए भोजन करें। न ही संयम के लिए भोजन करते हैं क्योंकि उन्हें यथाख्यात संयम की प्राप्ति हो चुकी है तथा ध्यान के लिए भी भोजन नहीं करते क्योंकि उन्होंने त्रिभुवन को जान लिया है, इसलिए इनके ध्यान करने योग्य कोई पदार्थ ही नहीं रहा है। अतएव भोजन करने का कोई कारण न रहने से केवली जिन भोजन नहीं करते हैं यह सिद्ध हो जाता है।

2. यदि केवली जिन भोजन करते हैं तो संसारी जीवों के समान बल, आयु, स्वादिष्ट भोजन, शरीर की वृद्धि, तेज और सुख के लिए ही भोजन करते हैं ऐसा मानना पड़ेगा, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर वे मोहयुक्त हो जायेंगे और इसलिए उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। यदि कहा जाये कि जिनदेव को केवलज्ञान नहीं होता तो केवलज्ञान से रहित जीव के वचन ही आगम हो जावें? यह भी ठीक नहीं, क्योंकि राग, द्वेष और मोह से कलंकित जीवों के सत्यता का अभाव होने से उनके वचन रत्नत्रय नहीं कहे जाते। आगम का अभाव होने से रत्नत्रय की प्रवृत्ति नहीं होगी और तीर्थ का व्युच्छेद हो जायेगा। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि निर्बाध बोध के द्वारा ज्ञान तीर्थ की उपलब्धि–बराबर होती है।[1]

इस प्रकार मुख से खाने वाले मनुष्य व तिर्यंचों का भोजन ही कवलाहार जानना चाहिए।

---

1. क.पा.–1

आर्यों के लिए शाकाहार

भक्खंति सागमज्जा, तदो सागाहारी मुणेदव्वा।
किं चि पहभट्ट-तिरिया, मंसं वि मंसाहारी ते॥12॥

अर्थ–आर्य पुरुष शाक-सब्जी खाते हैं इसलिए उनको शाकाहारी जानना चाहिए। किंचित् तिर्यंच व पथभ्रष्ट माँस भक्षण भी करते हैं अत: उन्हें माँसभोजी जानना चाहिए।

Noble people eat vegetables. That's why they are known as vegetarian. Some animals and misguided people eat meat, so they are considered non-vegetarian.

व्याख्यान–दुग्ध उत्पाद, फल, सब्जी, अनाज, बादाम आदि बीज सहित वनस्पति आधारित भोजन शाकाहार है। शाक, सब्जी, फलादि का ग्रहण शाकाहार कहा जाता है। त्रस आदि जीवों का कलेवर, हड्डी, रक्त आदि हिंसा व क्रूरता की जमीन से उत्पन्न होने वाला माँसाहार कहलाता है। प्रकृति ने मानव शरीर के लिए अनेक वनस्पति व स्वादिष्ट पदार्थ उत्पन्न किए हैं।

पशु व पक्षी एक ओर प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में सहायक हैं तो दूसरी ओर मानव का थोड़ा भी प्यार पाकर बफादार बनकर सेवा करते हैं। यह मानव की क्रूरता, नृशंसता व जिह्वा लंपटता ही तो है जो प्रकृति द्वारा दिए गए खाद्य

पदार्थ रूपी अमूल्य धरोहर को छोड़ पशुओं का वध कर उनके भक्षण पर उतर आया है। यह क्रूरता, दयाहीनता व असंवेदनता का परिणाम है।

चीन में 200 वर्ष प्राचीन एक अहिंसा का ग्रंथ है। उसमें उल्लेख है कि एक अमीर व्यक्ति यात्रा के लिए बाहर जा रहा था, उसके मूलकक्ष में एक पक्षी ने घोंसला बना लिया। उसने सोचा क्या करूँ? बाहर निकाल देता हूँ तो ये मर जाएँगे, यदि मकान बंद कर देता हूँ तो ये अंदर ही घुटकर मर जाएँगे। कुछ सोचकर उसने एक कारीगर को बुलवाया, दीवार में एक बड़ा छिद्र करवाया, जब पक्षी उसमें से होकर आने जाने लगे तब वह ताला बंद करके चला गया। उस व्यक्ति के मन में उन पक्षियों के प्रति कितनी संवेदना व करुणा थी। मन की यही निर्मलता दुर्भावना व दुर्घटनाओं को रोक देती है और क्रूरता का भाव आतंकवाद को जन्म देता है।

आश्चर्य है जहाँ गुड्डे-गुड़ियों का खेल खेलते समय गुड़िया के गिर जाने पर या अंगुली आदि अलग हो जाने पर बच्चों की आँख में आँसू आ जाते थे वहीं आज करुणा व संवेदनशीलता का अभाव इस हद तक हो चुका है कि अपने प्रियजनों को मारने पर भी उनके हाथ नहीं कांपते। इस करुणा और संवेदना को खत्म करता है क्रूरता का वातावरण और यह उत्पन्न होता है माँसाहार से। शाकाहारी भोजन मानवीय संवेदनाओं का पालनकर्ता होता है।

वैज्ञानिक तौर पर देखें तो मानव मस्तिष्क में अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा और थीटा ये पाँच प्रकार की विद्युत् तरंगें पायी जाती हैं। मस्तिष्क में उत्पन्न तरंगें वातावरण में भी संप्रेषित होती हैं और दूसरे लोगों को भी प्रभावित करती हैं। वैज्ञानिक शोध के नतीजे बताते हैं कि शाकाहारी भोजन में उपस्थित मैग्नीशियम एवं विटामिन-सी तनाव को कम करने में सहायक होते हैं। शाकाहारी भोजन से मस्तिष्क में अल्फा तरंगें उत्पन्न होती हैं जिससे मस्तिष्क को अत्यंत शांति मिलती है। परिणामस्वरूप शाकाहारी व्यक्ति शांत प्रवृत्ति के होते हैं और पुनः शाकाहारियों के आस-पास के सारे परिवेश में शांति का अनुभव होगा क्योंकि उनके मस्तिष्क से होने वाले रेडिएशन में अल्फा वेव्स की प्रधानता होती है। मैडिटेशन, पूजा,

जपादि के माध्यम से भी ये वेव्स उत्पन्न होती हैं जो स्वयं के साथ-साथ सभी के लिए शांति का कारण होती हैं। शुद्ध शाकाहारी भोजन से उत्पन्न शुद्ध सोच आतंकवाद जैसी गंभीर समस्याओं के निदान में भी कार्यकारी है।

माँस खाने से मस्तिष्क में ट्रिप्टोफेन अमीनो एसिड के स्तर में कमी आ जाती है जो कि सेरोटोनिन हार्मोन का निर्माण करता है। यह सेरोटोनिन हार्मोन आनन्द प्रदान करता है जबकि इसकी कमी से क्रोध एवं लड़ने की भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति झगड़ालू प्रवृत्ति के हो जाते हैं। माँस में ओमेगा-6 वसीय अम्ल (Omega-6 Fatty acid) भी पाया जाता है। साइकोसोमेटिक मैडीसिन के एक जर्नल की रिपोर्ट के अनुसार इस fatty acid की अधिकता से depression भी होता है। माँस में एड्रीनलिन एवं नोरएड्रीनलिन न्यूरोट्रांसमीटर की उपस्थिति रहती ही है जिससे माँस खाने वाला व्यक्ति तनाव में रहता है, ऐसी स्थिति में मस्तिष्क में बीटा तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं। बीटा तरंगों की अधिकता के कारण माँसाहारी व्यक्ति स्वयं तो निषेधात्मक विचारों से ग्रसित रहता ही है और अपने आस-पास के वातावरण में भी निषेधात्मकता फैलाता रहता है जिसके कारण माँसाहारियों का पूरा परिवेश ही तनावग्रस्त रहता है।

जिस प्रकार का भोजन ग्रहण किया जाता है परिणाम भी वैसे ही हो जाते हैं, यह वैज्ञानिकादि तथ्यों पर भी प्रमाणिक है। जब किसी जीव को मारा जाता होगा, आप स्वयं सोचिए उसके भाव कैसे होते होंगे? उस समय मृत्यु भय से वे काँप जाते हैं, कभी अपने को बचाने के लिए आक्रामक भावनाओं से युक्त होते हैं, कभी क्रोध के आवेश में चीखने, चिंघाड़ने लगते हैं, ऐसी भयाक्रांत यातना-पीड़ा और क्रोधावेश की दशा में उन्हें मारा जाता है तो उनका रक्त-माँस जहरीला हो जाता है। तब ऐसे माँस को खाने वाले में उन पशुओं के स्वभावगत दोष क्रूरता, हिंसा, निर्दयता, प्रतिशोध की भावनाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। पशु को भोजन रूप करने वाला वैसी ही हीन पाशविकता से ग्रस्त हो जाता है। 'इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंट्रीयल ह्यूमैन साइन्सेज' मॉन्ट्रियल के अध्यक्ष डॉ. जॉन रासेमर जब भारत

में आए तो उन्होंने बताया कि वे मानवशास्त्र के विशेषज्ञ हैं और पूर्ण शाकाहारी हैं। उनका कहना है कि बूचड़खाने में जब पशुओं का वध किया जाता है तब जीवनमृत्यु के बीच संघर्ष करते हुए वे अपने शरीर में कुछ हार्मोन्स छोड़ जाते हैं जो पूर्णतः दुःख व पीड़ा से भरे होते हैं। इस माँस को जो भी खाता है उसके शरीर पर इन हार्मोन्स का प्रभाव पड़ता ही है।

माँसाहार मनुष्य में पाशविक वृत्ति तो देता ही है, क्रूर व निर्दयी तो बनाता ही है, वह बौद्धिक स्तर खराब करने के साथ-साथ शारीरिक स्तर भी गिरा देता है। माँसाहार को यदि रोगों का अड्डा कहा जाए तो ठीक होगा। अमेरिका के नोबल पुरस्कार विजेता डॉ. माइकेल ब्राऊन और डॉ. जोसेफ गोल्डस्टीन का अनेक प्रयोगों व परीक्षणों के बाद यह निष्कर्ष है कि ''माँसाहार करने वालों में हृदय रोग, चर्मरोग आदि की सर्वाधिक संभावना रहती है।'' विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.0.) के बुलेटिन संख्या 637 के अनुसार ''मनुष्य के शरीर में लगभग 160 बीमारियाँ माँस खाने से प्रविष्ट होती हैं।'' माँसाहारी के भीतर रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बहुत कम होती है। यह माँसाहार शरीर के लिए धीमा विष है।

शाकाहार मनुष्य के लिए प्रकृति प्रदत्त वरदान है। मनुष्य शरीर की बनावट भी इसी अनुसार होती है। मनुष्य के नाखून, मोलर दांत व जबड़ा शाकाहार के अनुकूल ही होते हैं। मनुष्य की लार का क्षारीय (alkaline) होना और उसमें एमायलेज (amylase) जैसे एन्जाइम का होना उसके शाकाहारी होने को प्रमाणित करता है। जब मनुष्य की प्राकृतिक संरचना ही शाकाहार के अनुकूल है तब मानव माँसाहार कर प्रकृति विरुद्ध जाकर स्वयं व दूसरों के लिए कष्ट उत्पन्न क्यों करता है, जो पूरा वैश्विक समीकरण ही बिगाड़ देता है।

पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण कर कुछ स्वविवेक से हीन लोगों ने माँसाहार को अपनाया। जिसके परिणाम स्वरूप भुखमरी, पर्यावरण असंतुलन, आतंकवाद, अपराध, बीमारी आदि बढ़ गईं। आज 100% माँसाहारी देश जर्मन में 10% जनसंख्या पूर्णतया शाकाहारी हो चुकी है। गैलप मतगणना के अनुसार इंग्लैंड में प्रति सप्ताह 3000 व्यक्ति शाकाहारी बन रहे हैं। वहाँ अब 25 लाख से अधिक

व्यक्ति शाकाहारी हैं। आज विदेश भी शाकाहार की ताकत को स्वीकार कर उसी ओर बढ़ रहे हैं।

शाकाहारी भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। इसका पाचन शीघ्र हो जाता है। यह मस्तिष्क को सचेत रखते हुए आपको बुद्धिमान बनाता है। जबकि माँसाहार को पचने में 36-60 घंटे लगते हैं। शाकाहार अर्थात् सब्जियों आदि में प्रोटीन, कार्बोहाइट्रेड और वसा के साथ-साथ और भी बहुत आवश्यक तत्त्व होते हैं। विटामिन, एंटीऑक्सीडेन्ट, अमीनो एसिड इत्यादि तत्त्व भी शामिल होते हैं जो कैंसर जैसी घातक बीमारी से बचाव में सहायक होते हैं। इसमें फायबर की भरपूर मात्रा होने से यह हार्मोन्स को संतुलित रखता है, अच्छी पाचन क्रिया में सहायक होता है।

फोलेट के अत्यधिक मात्रा में होने के कारण और न्यून मात्रा में सेचुरेटेड वसा, कॉलेस्ट्रॉल और एनिमल प्रोटीन मात्रा के कारण शाकाहार भोजन व्यक्ति का रोगों से बचाव करता है। शाकाहार करने वालों में हृदय को रक्त भेजने वाली धमनियों से संबंधित बीमारी की संभावना कम होती है। शाकाहारियों में कुल तरल कॉलेस्ट्रॉल तथा कम घनत्व वाले लायपोप्रोटीन कोलेस्ट्रॉल की मात्रा सामान्यत: कम पाई जाती है, लेकिन उच्च घनत्व वाले लायपोप्रोटीन कोलेस्ट्रॉल की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि शाकाहारी भोजन किस प्रकार का है।

शाकाहारियों में हाई ब्लडप्रेशर की संभावना माँसाहारियों से कम होती है। फाइबर युक्त फल व सब्जियों के अधिक सेवन के कारण शाकाहारियों में फेफड़ों और बड़ी आँत का कैन्सर कम होता है। विश्व भर से लिए गए आँकड़ों के अनुसार शाकाहारियों में एस्ट्रोजन की कम मात्रा पाई गई है जिससे स्तन केन्सर की संभावना कम होती है। वनस्पतियों में पाए जाने वाले कुछ प्रोटीन जीवित रहने की संभावना बढ़ाते हैं।

‘‘शाकाहार से शक्ति उत्पन्न होती है, माँसाहार से केवल उत्तेजना बढ़ती है। परिश्रम के अवसर पर माँसाहारी जल्दी थक जाता है। अफीम, कोकीन, शराब की भाँति माँस भी नशीली चीज है।’’ –**डॉ. हेग**

‘‘शाकाहार पर रहने वालों को टाइफाइड बहुत कम होता है।’’ –**डॉ. शिरमेर** (अमेरिका)

‘‘जिन बच्चों को माँस खिलाया जाता है, वे बड़े होने पर सुस्त, आलसी, भोंदू और दुर्बल होते हैं। उनके लिए दूध, शाक और अन्न ही सर्वोत्तम आहार है।’’–**डॉ. क्लाडर्सन**

‘‘जहाँ माँसाहार जितना कम होगा वहाँ कैंसर की बीमारी उतनी ही कम होगी।’’ –**डॉ. रसेल**

‘‘मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि माँस खाने वालों की अपेक्षा अन्न खाने वाले बहुत कम बीमार पड़ते हैं और यदि पड़ते भी हैं तो भी अपेक्षाकृत जल्दी अच्छे हो जाते हैं।’’ –**डॉ. मेनरी पडरो**

खुरपका–मुँहपका तथा मैडकाओ जैसे रोगों से लोगों को बचाने के लिए उत्तरी अमेरिका के कुछ लोगों ने 70 के दशक में नॉर्थ अमेरिकन वेजिटेरियन सोसाइटी का गठन किया। सोसाइटी ने 1977 से अमेरिका में विश्व शाकाहार दिवस मनाने की शुरुआत की जो अब 1 नवंबर को मनाया जाता है। सोसाइटी के इस अभियान के शुरू होने के बाद से अकेले अमेरिका में लगभग 10 लाख से ज्यादा लोगों ने माँसाहार को पूरी तरह त्याग दिया है। वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं के कई अध्ययनों के बाद शाकाहार का डंका विश्वभर में बजने लगा है। शरीर पर शाकाहार के सकारात्मक परिणामों को देखते हुए विश्व भर के लोगों ने माँसाहार को छोड़ शाकाहार अपनाना शुरू किया है।

स्वास्थ्य व आरोग्य की दृष्टि से माँसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारी अधिक अच्छी स्थिति में होते हैं। वहीं बल और शक्ति की दृष्टि से भी वे बहुत आगे होते हैं। इसका एक प्रयोग आज से लगभग 100 वर्ष पहले जर्मन में किया गया। सन् 1898 में जर्मन में एक बार शाकाहारी और माँसाहारी व्यक्तियों में सत्तर मील चलने की प्रतियोगिता हुई। इस प्रतियोगिता में बीस माँसाहारी और छह शाकाहारी सम्मिलित थे। सारे शाकाहारी माँसाहारियों से बहुत पहले ही अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँच गए। शाकाहारियों में सबसे पहले यात्रा पूरी करने वालों को चौदह घंटे लगे। जबकि 14 माँसाहारियों में से केवल एक व्यक्ति निर्दिष्ट स्थान पर एक घण्टा बाद पहुँचा वह भी बहुत थका-मांदा दम डालता हुआ। जबकि शाकाहारी सभी स्वस्थ और प्रसन्न स्थिति में थे। उनमें से 13 माँसाहारी तो केवल 35 मील चलकर ही हार चुके थे।

ऐसे अनेक प्रयोगों से सिद्ध है कि शाकाहार शक्ति का स्रोत है। शाकाहारी पशुओं में भी माँसाहारी पशुओं की अपेक्षा अधिक बल व शक्ति होती है। घोड़ा जिसके बल की तुलना अश्वशक्ति (horse power) के रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय मानक बन गया है वह पूर्ण शाकाहारी प्राणी है। वह कितना फुर्तीला, चुस्त, बलशाली, बुद्धिमान और सूझबूझ वाला प्राणी है। इसी प्रकार हाथी, गेंडा, ऊँट, बंदर, हरिण, गाय, बैल, जेब्रा आदि भी शाकाहारी प्राणी हैं जो बल, शक्ति, श्रम में माँसाहारी पशुओं से श्रेष्ठ हैं। एक बैल खेती में जिस प्रकार हल खींच लेता है, जितना भार ढो लेता है, क्या एक माँसाहारी पशु उतना भार ढो सकता है? नहीं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि माँसाहार में बल, शक्ति आदि नहीं है।

Sir William Cooper C.I.E. के कथनानुसार घी, गेहूँ, चावल, फल इत्यादि माँस से अधिक शक्तिवर्द्धक होते हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार 100 ग्राम माँसाहार में अधिकतम 194 कैलोरियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, जबकि 100 ग्राम गेहूँ के आटे में लगभग 353 कैलोरी, अरहर

दाल में 343 कै., सोयाबीन में 432 कै. और मूंगफली में लगभग 550 कै. सहज ही मिलती है। ऊर्जा के अनुसार माँसाहार तो कूड़े का ढेर है।

शाकाहार ही मानव का आहार है। सत्य कहें तो मानव हेतु माँस को आहार रूप कहना भी उचित नहीं होता है। श्रेष्ठ विद्वान्, बुद्धि-विवेक से संपन्न लोग सदैव शाकाहार ही ग्रहण करते हैं। यहाँ ग्रंथकार ने कहा है कि आर्य पुरुष शाकाहार ग्रहण करते हैं, वे शाकाहारी ही होते हैं। **''गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्याः''** जो गुणों या गुण वालों के द्वारा माने जाते हों, वे आर्य कहलाते हैं। श्री महावीर, श्री राम, हनुमान, गौतमबुद्ध, ईसामसीह, गुरु नानक या अन्य जितने भी महापुरुष हुए कभी किसी ने माँस का सेवन नहीं किया। श्री राम, लक्ष्मण, सीता 14 वर्ष वन में रहे किन्तु माँस जैसी घृणित वस्तुओं का स्पर्श भी कभी नहीं किया, फल-सागादि ग्रहण कर ही समय व्यतीत किया। पाँचों पांडव जब राज्य हारकर वन गए तब वनों में फलादि खाकर ही रहे।

सम्राट चंद्रगुप्तमौर्य, कलिंगचक्राधिपति खारवेल, महाराणा प्रताप, सम्राट अशोक, राजा हरिश्चंद, सम्राट अमोघवर्ष, राजा भरत, राजा चेटक, राजाश्रेणिक, राजा कृष्णदेवराय, वीर शिवाजी, पृथ्वीराज चौहान, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य, राजा भोज, राजा हर्षवर्धन, राजा सोमेश्वर चौहान 'प्रतापलंकेश्वर', नागभट्ट द्वितीय, राजा यशोवर्मन, राजेन्द्र चोल-नन्नि चंगाल्व, राजेन्द्र पृथ्वीकोंगाल्व, महाराज डूंगरसिंह-कीर्तिसिंह, महाराजाधिराज रामगुप्त, राजा विनयादित्य द्वितीय, राचमल्ल आदि अनेक महान् शासक हुए जिनकी वीरता व पराक्रम का लोहा पूरे विश्व ने स्वीकार किया, जिनके सामने हर प्रकार के शत्रुओं ने घुटने टेके, ये सभी सम्राट शाकाहारी थे। जैसा न्यायपूर्ण शासन इन राजाओं ने किया वह सभी के द्वारा अनुकरणीय है। इनका बुद्धिकौशल सभी को अचंभित करने वाला था। महाराणा प्रताप ने जंगल में रहकर घास की रोटियाँ तो स्वीकार की किन्तु माँस की बोटियों को स्पर्श तक नहीं किया।

हमारे यहाँ के क्षत्रिय राजा शाकाहारी थे। महाराज जनक के जीवन चरित्र में लिखा है कि वे माँस परित्यागी थे। **''निवृत्तमासस्तु तत्र भवान् जनकः''** (-उत्तररामचरित) राम का संदेश लेकर हनुमान जब सीता के पास पहुँचे तब सीता ने हनुमान पर राम का अनुचर होने का विश्वास नही किया और पूछा कि तुम राम के स्वभाव, रहन-सहन, खानपान के बारे में बताओ, तभी मैं विश्वास कर पाऊँगी। तब हनुमान ने बताया कि-

न माँसं राघवो भुक्ते न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति केवलम्॥

-वाल्मिकी रामायण, सुंदरकांड-36/41

इक्ष्वाकुवंशी राम माँसाहार नहीं करते, वे शाकाहारी हैं। वे मधु का सेवन नहीं करते, वे चावल का ही सेवन करते हैं, इत्यादि-इत्यादि। तभी सीता को हनुमान पर विश्वास हुआ।

दिव्यावदान ग्रंथ में लिखा है कि-अशोक के समक्ष प्याज परोसने पर अशोक ने कहा कि-''हे देवी! मैं उच्चकुलीन क्षत्रिय हूँ, मैं प्याज ग्रहण नहीं करता हूँ।

महान् कूटनीतिज्ञ, अर्थशास्त्र प्रणयनकर्ता चाणक्य, दानवीर भामाशाह, वीर पत्ता, सेनापति वीर मार्तण्ड चामुंडराय, रिपु-कंज-कुंजर, मंत्री चिंतामणि पेर्गडे हासम, महामात्य भरत, मंत्री नन्न, योगेश्वर दंडनायक, पार्श्वदेव, दंडनायक शान्तियण्ण, महामंत्री जक्कले, राजा हरसुखराय, रायचंद्र, महात्मागांधी आदि सभी शाकाहारी थे।

इनकी बुद्धि, वीरता, विवेक, धर्मनिष्ठता आदि श्लाघनीय रही है। इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में इन महापुरुषों के नाम अंकित हैं। इतिहास साक्षी है जितनी सुख-शांति-समृद्धि उक्त राजाओं के काल में रही वह माँसाहारी शासकों के काल में प्रायः न रह सकी। इन शाक-फल-अन्नादि ग्रहण करने वाले शासकों ने जिस प्रकार शत्रुओं को परास्त किया वह विस्मयकारक है। महाराज पृथ्वीराज चौहान ने 17 बार मोहम्मद गौरी को हराया व क्षमा किया। इतना क्षमापूर्ण, उदार व पराक्रम से परिपूर्ण व्यक्तित्व एक शाकाहारी शासक या मानव का ही हो सकता है।

इनके शासन में न्यायप्रियता व सुख-शांति जो रही उसमें शाकाहार बहुत महत्वपूर्ण कारण है; जिससे राजाओं का सौम्य व शांत चित्त रहा, उन्होंने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया। दंडव्यवस्था इतनी न्यायपूर्ण व विवेक के साथ की गई कि असंतुष्टि का कोई स्थान नहीं था। राजा चंद्रगुप्तमौर्य के शासनकाल में तो लोग घरों में ताले ही नहीं लगाते थे। ऐसा सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की सभा में रहने वाले यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक में लिखा। इसका कारण उस समय का शुद्ध-सात्विक शाकाहार था।

वीर भामाशाह जिसने अपना संपूर्ण धन महाराणा प्रताप को राष्ट्र रक्षा के लिए समर्पित कर दिया, यह कार्य भी शाकाहारी का ही हो सकता है; क्योंकि इतनी उदारता, राष्ट्रप्रेम, समर्पण की भावना, त्याग-दान की भावना उसमें ही हो सकती है। जितने भी शासक, मंत्री, सेनापति, दंडनायक, श्रेष्ठी आदि के नाम यहाँ लिखे गए हैं यदि उनके जीवन चरित्र को पढ़ा जाए तब उस शाकाहार की ताकत का अंदाजा संभवतः हो जाए। जो बौद्धिक स्तर सात्विक शाकाहारियों में देखने को मिलता है वह माँसाहारियों में नहीं।

अरस्तू, प्लेटो, लियोनार्दो दविंची, शेक्सपीयर, डारविन, पी.एच. हक्सले, इमर्सन, आइन्स्टीन, जॉर्ज बनार्ड शॉ, एच.जी. वेल्स, सर जूलियन हक्सले, लियो टॉलस्टॉय, शैली, रूसो आदि शाकाहारी थे।

ग्रन्थकार ने शाकाहार आर्यपुरुषों का आहार बताया। उत्कृष्ट जन, उत्कृष्ट वस्तु का ही चुनाव करते हैं। शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य, समाजिक व्यवहार, पर्यावरण, अर्थव्यवस्था, न्यायप्रियता, सुख-शांति आदि किसी भी प्रकार से देखें उत्कृष्टाहार शाकाहार ही है। आज का युग विज्ञान युग है। सभी लोग स्वयं सोचने-समझने की सामर्थ्य रखते हैं अतः स्वविवेक व धैर्य से, जिह्वा-लंपटता का त्यागकर, कुसंगत में न पड़ स्वयं के उत्कृष्ट जीवन के लिए स्वयं उत्कृष्टाहार का चुनाव करें।

पुनः कहा कि तिर्यंच व किंचित् पथभ्रष्ट जो माँस ग्रहण करते हैं उन्हें माँसाहारी जानना चाहिए। सिंहादि पशु माँसाहारी हैं व जो मनुष्य माँसाहार करते

हैं ग्रंथकार उन्हें पथभ्रष्ट कहकर संबोधित करते हैं। यह आचार्य महाराज की जीवमात्र के प्रति करुणा है जो माँसाहारी मनुष्य को हेय, पापी आदि न कहकर पथभ्रष्ट कहा। जिस प्रकार माँ कुसंगति में पड़ने आदि कारणों से गलत मार्ग पर चलते हुए अपने पुत्र का परित्याग नहीं करती, दुष्ट, पापी आदि न कहकर कहती है कि ''रास्ता भूल गया है, भगवान करे जल्दी सही राह पर आ जाए''। इसी प्रकार माँ के समान करुणा से परिपूर्ण ग्रंथकार सर्वथा अयोग्य माँसाहार करने वालों को पथभ्रष्ट कह रहे हैं।

''अहिंसक आहार'' इस ग्रंथ को आचार्य भगवन् ने इसी भावना से लिखा कि जिस प्रकार गलत राह पर चलने वाले राही को आगे कहीं साईन-बोर्ड दिख जाए, वह उसे समझ ले तो सही राह ले सकता है उसी प्रकार भटका राही ग्रंथ रूपी साइनबोर्ड से संभवतः समीचीन राह पर गतिशील हो अपने जीवन में सम्यक् उन्नति कर सके।

पथभ्रष्ट अर्थात् अपने मार्ग से भ्रष्ट या भटका हुआ। अभी तक तो विवेकीजन समझ ही चुके होंगे कि माँसाहार मानवीय आहार नहीं है और मानव यदि मानवता की राह पर न हो तो वह पथभ्रष्ट ही कहलाएगा; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह सदैव भटका ही रहे, गुरु उपदेश आदि निमित्तों से सही राह पर चलना भी शक्य है।

एक बार एक युवक नोएडा में हमारे पास आया। उस समय नैष्ठिक श्रावक दीक्षा के फॉर्म भरे जा रहे थे। जिसमें सप्तव्यसन त्याग व अष्टमूलगुण पालन अनिवार्य था। उस युवक ने कहा 'मैं तो ये फॉर्म नहीं भर सकता।' हमने पूछा 'क्या आप इसमें से कोई कार्य करते हैं?' उसने कहा 'अभी तक तो नहीं, किंतु मैंने सोचा है कि 21 वर्ष का होते ही मैं नॉन वेज खाऊँगा।' हमने उसे समझाया और उसने जीवनपर्यंत के लिए माँसादि का पूर्णतया परित्याग कर दिया। उस युवक ने तो कर दिया, अपने मन की बात कह दी किन्तु संभव है कुछ और युवक इस प्रकार की बात सोच रहे हों। तो आपको बता दें कि माँस भक्षण से इस भव में

व परभव में जो दुःख मिलता है वह तो अकथनीय है ही, साथ ही ऐसा सोचने का परिणाम भी अत्यंत भयावह होता है।

काकंदी नगरी में श्रावक कुलोत्पन्न सौरसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसने अपना कुलधर्म समझकर माँस खाने का त्याग कर दिया था। बाद में कुछ धर्म विरुद्ध लोगों के कहने से उसे माँस खाने की रुचि उत्पन्न हुई। किन्तु की हुई प्रतिज्ञा को न निभाने के लोकोपवाद से वह डरता था। उसका कर्मप्रिय नाम का रसोइया एकान्त में अनेक जलचर, थलचर और बिलों में रहने वाले जन्तुओं का माँस तैयार करता था, किन्तु अनेक राजकार्यों में घिरे रहने से उसे माँस खाने के लिए एकान्त समय नहीं मिलता था। इस प्रकार कर्मप्रिय रसोइया राजा की आज्ञा के अनुसार प्रतिदिन माँस पकाता था। एक दिन उसने साँप का माँस पकाया और उसी के जहर से मरकर वह स्वयंभूरमण नाम के समुद्र में विशालकाय तिमिङ्गल नाम का महामत्स्य हुआ।

कुछ काल के बाद राजा भी मरकर माँस खाने के संकल्प के कारण उसी समुद्र में उसी महामत्स्य के कान में उसका मैल खाने वाला मत्स्य हुआ। जिसका शरीर शाली चावल के बराबर था। महामत्स्य मुँह खोलकर सोता रहता था और उसके गुफा के समान गहरे गले में नदी के प्रवाह की तरह जलचर जीवों की सेना घुसकर जीवित निकल आती थी। उसे देखकर तन्दुल मत्स्य सोचता 'यह मत्स्य बड़ा पापी और अभागों में भी सबसे बड़ा अभागा है, जो अपने मुँह में स्वयं ही आने वाले मत्स्यों को भी नहीं खा सकता। यदि हार्दिक इच्छा के प्रभाव से दैववश मेरा इतना बड़ा शरीर हो जाये तो मैं समस्त समुद्र को जलचर जीवों से शून्य कर दूँ।' इसी संकल्प से अल्पकाय तन्दुलमत्स्य और समस्त मगरमच्छों को खाने से महाकाय महामत्स्य दोनों मरकर सातवें नरक में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु लेकर उत्पन्न हुए।

उन दोनों को भव प्रत्यय नाम का अवधिज्ञान था। उसके द्वारा पूर्व जन्म का वृतान्त जानकर वे दोनों नारकी आपस में कहते हैं—'तंदुलमत्स्य! मैंने बड़ा पाप

किया, इसलिए मेरा यहाँ आना तो उचित था किन्तु तुम तो मेरे कान के बिल में कान का मैल खाया करते थे तुम यहाँ कैसे आये?' तब तंदुलमत्स्य उत्तर देता है—अशुभ ध्यान से मरकर मैं यहाँ पैदा हुआ हूँ। स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य के कान में रहने वाला तंदुलमत्स्य बुरे संकल्प से नरक में गया। माँस खाने के संकल्प मात्र से सौरसेन तंदुलमत्स्य होकर सातवें नरक गया।

जब माँस भक्षण के संकल्प मात्र से जीव कुगति का पात्र हो सकता है तब उसके खाने वाले की क्या गति होगी? अतः विवेकी सज्जन व्यक्ति को माँसादि भक्षण तो ठीक, उसके संकल्प का भी त्याग कर देना चाहिए।

माँस भक्षण निषेध

कुलीणं अज्जपुरिसं, हेयं मंसं ण कया वि भुंजेज्ज।
मंस-भक्खणंहवेदि,दुग्गदि-अघ-कारणंणिच्चं॥13॥

अर्थ–कुलीन व आर्यपुरुष को कभी भी त्यागने योग्य माँस नहीं खाना चाहिए। यह माँस भक्षण नित्य दुर्गति और पाप का कारण होता है।

A noble man should never eat meat that is to be given up. Eating meat is the cause of constant sufferings and abjection.

व्याख्यान–माँस एक क्रूर कर्म है तथा घृणित, निंद्य व अखाद्य है। किसी का वध करना, उसे मारना, उसके टुकड़े करना सबसे बड़ा क्रूर कर्म है। माँस की उत्पत्ति रज और वीर्य से उत्पन्न होने वाले प्राणियों के घात से होती है। माँस की उत्पत्ति का कारण अपवित्र है तथा स्वभाव से अमेद्य मलमूत्र का बीज व मलमूत्रयुक्त है अतः घृणित व निंद्य है।

एक विद्वान ने लिखा है-''कोई माँसाहारी जिन कत्लखानों का माँस मँगाकर खाता है, वह यदि एक दिन उन कत्लखाने में चला जाए, अपनी आँखों से उनका कत्ल होते देखे, पीड़ा से कराहते-चीखते जानवरों का क्रन्दन सुन ले, उनकी तड़पती हालत को देख ले तो वह जिन्दगी में कभी माँस नहीं खाएगा। निर्दय से निर्दय क्रूर हत्यारा भी ऐसे घृणित और हृदय को दहलाने वाले दृश्य को देखकर काँप जाएगा।''

जिस माँस का उत्पादन इतने घृणित व क्रूर ढंग से किया जाता है वह मनुष्य के शरीर में जाकर कितनी घृणा व क्रूरता को उत्पन्न करेगा।

समाज या देश में पनप रही हिंसा, क्रूर से क्रूर अपराधों का मूल माँसाहार एवं मद्यपान ही है। माँसाहारियों के द्वारा ही क्रूर कर्म किए जाते हैं। हत्या, चोरी इत्यादि में वे ही सबसे आगे रहते हैं, तभी तो कहते हैं 'कत्लखाने, हिंसा-बर्बरता और क्रूरता के अड्डे हैं। संसार में अपराध व माँसाहार का घनिष्ठ संबंध है।

माँसाहार के प्रभाव से मनुष्य के मन में उत्तेजना, आक्रोश, तनाव, असंतोष और आत्महत्या आदि पनपते हैं।

लन्दन की ''वैजीटेरियन एसोसिएशन'' ने शाकाहारी और माँसाहारी श्रेणी के एक सी स्थिति वाले हजारों लोगों पर परीक्षण करके जो निष्कर्ष निकाला है वह है–''माँसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारी लोग अधिक श्रम करते हैं, कम बीमार पड़ते हैं और दीर्घजीवी होते हैं। मानसिक क्षेत्र में भी शाकाहारियों की अपेक्षा माँसाहारी अधिक उद्दण्ड, क्रोधी, मंदबुद्धि और अपराधी मनोवृत्ति के पाये गए।

माँसाहार मनुष्य को पाशविक वृत्ति से युक्त तो करता ही है साथ ही पर्यावरण को भी असंतुलित कर देता है। हिंसा प्रदूषण का तथा अहिंसा प्रदूषण–मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय है। माँसाहार पृथ्वी पर जलाभाव करने को उत्तरदायी है। 'फ्री–प्रेस' इंदौर के अनुसार लगातार माँसाहार के बढ़ने के कारण पश्चिम देशों, विशेषतः उत्तरी अमेरिका में पानी के दुष्काल की भयावह स्थिति पैदा हो गई। प्राप्त आंकड़ों से जहाँ प्रति टन माँस के उत्पादन के लिए लगभग 5 करोड़ लीटर जल की जरूरत होती है। वहाँ प्रति टन चावल व गेहूँ के लिए क्रमशः 45 लाख लीटर व 5 लाख लीटर जल की जरूरत होती है। यदि इसी प्रकार जल का दुरुपयोग होता रहा तो जल की समस्या का अत्यधिक उत्पन्न होना कोई बड़ी बात नहीं है। कैलीफोर्निया के आंकड़ों के अनुसार एक पौंड माँस उत्पादन में 2500 गेलन पानी की खपत होती है, उतने जल से सामान्य परिवार की पूरे महीने की जल की जरूरतें पूरी हो जाती हैं।

कत्लखानों एवं पोल्ट्री फार्मों आदि के कारण धरती का दृश्य केवल नरक जैसा भयावह ही नहीं बनता अपितु धरती का पर्यावरण अत्यंत दूषित होता है। कुछ वर्षों पूर्व वैज्ञानिकों ने घोषणा की थी कि पृथ्वी पर जो भूकंप आ रहे हैं उनमें बढ़ते कत्लखाने और प्राणियों का निर्मम संहार एक मुख्य कारण है।

International Commission के अनुसार मनुष्य का भोजन माँस नहीं है।[1]

1. Inter-Allied food Commission Report London, July 8, 1918.

जिनका भोजन माँस है वे जन्म से ही अपने बच्चों को माँस से पालते हैं। यदि मनुष्य ऐसा करें तो वे जिन्दा नहीं रह सकते।[1] यह माँस मनुष्य का भोजन नहीं है।

Dr. Josiah Oldfield के अनुसार 99% मृत्यु माँस भक्षण से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के कारण होती हैं।[2] संसार के प्रसिद्ध डॉक्टर्स के शब्दों में माँस भक्षण से अपाचन, दर्द, गुर्दा एवं आंतों की बीमारी, जिगर की खराबी आदि अनेक भयानक रोग हो जाते हैं।[3] Royal Commission के अनुसार माँस के लिए मारे जाने वाले पशुओं में आधे तपेदिक के रोगी होते हैं। इसलिए उनके माँस भक्षण से मनुष्य को तपेदिक का रोग लग जाता है।[4]

कुलीन व आर्यपुरुषों के द्वारा माँस सदैव त्याज्य है। कहा भी है–

भक्षयन्ति पलमस्तचेतनाः सप्तधातुमयदेहसंभवम्।
यद्वदन्ति च शुचित्वमात्मनः किं विडंबनमतः परं बुधाः॥

माँस सप्तधातुमय देह के घात से उत्पन्न होता है। उसे अपने को पवित्र और विवेकी मानने वाले खाएँ, इससे अधिक विडंबना और क्या होगी?

यतो मांसाशिनः पुंसो दमो दानं दयार्द्रता।
सत्यशौचव्रताचाराः न स्युर्विद्यादयोऽपि च॥

उसके खाने से मनुष्य के दया, दम, सत्य, शौच, व्रत, आचार, विचार, विद्यादिक नहीं हो सकते।

सभी धर्मों के धर्मग्रन्थों को समीचीन रूप से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि हिन्दु,

1. Prof. Moodia-Bombay H. League Publication No. XVII.
2. Flesh eating is one of the most serious causes of diseases, that 99% of the people carry that are born–Ibid. P.15.
3. World-fame Medical Experts-Graham, O.S. Fyler, J.F. Newton, J. Smith etc. corroborate the fact that meat-eating causes various diseases such as Rheumatism, Paralysis, Cancer, Pulmonary, Tuberculosis, Constipation, Lever, intestinal worms etc. –Meat Eating A Study.
4. Royal Commission on T.B. reports that it is cognizable fact killed that about 50% of the cattle killed for food are tuberculous and T.B. is infectious. –Bombay H. League Tract No. 17.

मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई तथा पारसी आदि सब ही धर्म माँस भक्षण का निषेध करते हैं। कुरान, बाइबिल, विष्णुपुराण, महाभारत, रामायण आदि में माँस भक्षण निषेध का स्पष्ट कथन है।

अल्पायुषो दरिद्राश्च परकर्मोपजीविनः।
दुष्कुलेषु प्रजायन्ते ते नराः मांसमक्षकाः॥ –विष्णुपुराण

जो मनुष्य माँस खाते हैं वे अल्प आयु वाले, दरिद्री, दूसरे के कर्म पर जीवित रहने वाले होते हैं तथा दुष्कुल (दुर्गति) में उत्पन्न होते हैं।

श्री उग्रदित्याचार्य ने कल्याणकारकम् के हिताहित अध्याय में मनुष्य में प्राण नाश के 6 कारण बताए, जिसमें माँस सबसे पहला कारण है।[1] आचार्य महाराज ने इस अध्याय में कई बार माँस भक्षण का निषेध करते हुए कहा है कि माँस न कोई औषधि हो सकता और न ही रसायन।[2]

आंगेऽव्याभयसत्क्रियासु च चतुष्कर्मप्रयोगेषु तद्-
दोषाणामपि संचयादिषु तथा भैषज्य कर्मस्वपिं
रोगोपक्रमषष्ठिभेदविविधे वीर्यस्य भेदे प्रती-
कारं नास्ति समस्तमांसकथनं शाकेषु तत्कथ्यते?॥

आयुर्वेद शास्त्र में शरीर में अभयोत्पन्न क्रियाओं के प्रयोग में, चतुष्कर्म के प्रयोग में, दोषों के संचय होने पर, भैषज्य कर्म में, रोगोत्पादक साठ प्रकार के भेदों में और औषधवीर्य के भेदों में माँस का प्रतीकार के रूप में कहीं भी कथन नहीं। यह सर्वदा त्याज्य है। यह समस्त अंगशास्त्रों से बहिर्भूत है।

---

1. शुद्धं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।
   प्रत्यूषे मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्॥
2. ''माँसमौषधं न भवतीत्येवं''
   ''मांसं नास्ति न शब्दतोऽपि घटते स्यादौषधं तत्कथम्।''
   ''मांसं रसायनमपि **न** भवत्येव।''

ग्रंथकार ने भी कहा कि श्रेष्ठ, उत्तम, विवेकवान् लोग कदापि माँस भक्षण नहीं करते। शरीर में धातु-उपधातुओं की निष्पत्ति शाक-अन्न-फलादि के माध्यम से ही होती है, इसका कथन ग्रंथ में किया है।

निमि ने भी कहा है कि अभक्ष्य माँस को भक्षण करने वाले सर्व जंगली प्राणी एक वर्ष में एक बार मैथुन करने वाले होते हैं क्योंकि उनके शरीर में धातु पुष्ट नहीं रहता।[1]

माँसभक्षी प्राणियों का तो दूधादि भी ग्राह्य नहीं। आचार्य श्री ने कहा है माँस अभक्ष्य ही है। उन माँसभक्षक प्राणियों के शरीर का दूधादि त्यागकर तृण भक्षक प्राणियों का दूधादि जो आठ प्रकार की संख्या (बकरी, ऊँटनी, गाय, भैंस, घोड़ी, हथिनी, गधैया, मेंढी)[2] से जो कहे गये हैं उन्हीं का ग्रहण औषधी में करने के लिए समस्त शास्त्रों का कथन है।[3]

प्रतीत होता है आचार्य महाराज से किसी ने किसी आयुर्वेद शास्त्र में माँसादि के औषधि रूप होने का कथन किया होगा तब आयुर्वेद के महान् ज्ञाता आचार्य श्री उग्रादित्य स्वामी ने स्पष्ट कहा-यह माँस आहार के काम में कदापि नहीं आ सकता और औषधि में भी इसकी गणना नहीं है और न ही ये उत्तम रसायन ही हो सकता है। फिर ऐसे निंद्य, अभक्ष्य, निरुपयोगी, हिंसाजनित पदार्थ का सेवन करने के लिए सर्वज्ञ, दयालु, ब्रह्मऋषि किस प्रकार कह सकते हैं। अतः निश्चित है कि इस आयुर्वेद शास्त्र में जिह्वालंपटों के द्वारा मद्य, माँस, मधु बाद में मिलाए गए हैं।[4]

---

1. मांसादः श्वापदाः सर्वे वत्सरान्तरकामिनः।
   अवृष्यास्वत एव स्युरभक्ष्यपिशिताशिनः।।
2. आजमौष्ट्रं तथा गत्यमाविकं माहिषं च यत्।
   अश्वानां च करीणां च मृग्याश्चैव पयः स्मृतम्।।
3. पिशितमभक्ष्यमेव पिशिताशिमृगेषु तदूष्यते तत्-
   पिशितपयः शकृज्जलमलं परिहृत्य तृणाशिनां पयः।
   जलमुपसंख्ययाष्टविधमेव यथार्हमहौषधेष्वति-
   प्रथितसमस्तशास्त्रकथनं कथयत्यधिकं तृणादिषु।।-कल्याणकारकम्
4. मासं तावदिहाहृतिर्न भवति प्रख्यातसद्भेषजं,

इस प्रकार अनेक हेतु व दृष्टान्तों की परंपरा से माँस का कथन पूर्वापरविरोध दोष से दूषित है, अत्यंत कष्टदायक, अत्यंत नीचतम घृणा के योग्य व कृमिजनन के लिए उत्पत्तिस्थान व मूलतंत्र का व्याघातक है। अतएव उसका सदैव निराकरण किया गया है।[1] अज्ञान अंधकार से व्याप्त हृदय वाले मिथ्यादृष्टि दुष्ट मनुष्य ही शिष्टों के द्वारा सदैव त्याज्य मधु-मद्य-माँस के भक्षण की अभिलाषा रखते हैं।[2]

आर्य जन, शिष्ट जन सदैव प्राणियों की रक्षा में अग्रसर रहते हैं। उनका स्वभाव निर्दयता वा क्रूरता का नहीं, दयालुता व करुणामय होता है। यही भारतीय संस्कृति भी है। आज भी भारतीय संविधान की '51A(G)' के अन्तर्गत लिखित है कि मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि प्राणीमात्र के प्रति दया भाव रखे, हिंसा से दूर रहे। धर्म, संस्कृति, सभ्यता, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से माँस सदैव त्याज्य है।

माँसाहार करने वाला नियम से दुर्गति का पात्र होता है। वह अनंत दु:ख भोगता हुआ दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करता है। राजा सौरसेन के विषय में आपने जाना कि माँस खाने के संकल्प मात्र से उसने भयंकर दु:खों को भोगा। राजा ब्रह्मदत्त आदि मनुष्य हुए जिन्होंने माँस भक्षण के कारण नरकगति को प्राप्त किया व जिह्वा से कहे जाने वाले अनंत भयावह दु:खों को भोगा। वहीं खदिरसाल भील, मातंग, पुरुरवा भील आदि ने माँस त्यागकर स्वर्ग को प्राप्त किया।

जम्बूद्वीप के विंध्याचल पर्वत पर कुटज वन में किसी समय खदिरसार नाम का भील रहता था। एक दिन उसने समाधिगुप्त नाम के मुनिराज के दर्शन किये

नैवात्युत्तम-सद्रसायनमपि प्रोक्तं कथं ब्रह्मणा।
सर्वज्ञेन दयालुना तनुभृतामत्यर्थ मेतत्कृतं,
तस्मात्तन्मधुमद्यमांससहितं पश्चात् कृतं लम्पटै:।। -क.का.

1. इत्यनेकहेतुदृष्टान्तसंतानक्रमेण पूर्वापरविरोधदोषदुष्टमतिकष्टं कनिष्ठं बीभत्सं पूतिकृमिसंभवं मूलतंत्रव्याघातकं मांसमिति निराकृतं। -क.का.
2. अज्ञानमहांधकारावगुण्ठितहृदयमिथ्यादृष्टयो दुष्टजना विशिष्टार्जितं मधुमद्य- मांस-मनवरतं भक्षयितुमभिलषन्ते। -क.का.

व नमस्कार किया तब मुनिराज ने उसे धर्मलाभ हो ऐसा आशीर्वाद दिया। उसने मुनिराज से पूछा हे प्रभो! धर्म क्या है? और उससे लाभ क्या है? मुनिराज ने बताया कि मद्य-माँस आदि का सेवन करना पाप का कारण है और उससे विरक्त होना धर्म कहलाता है और उस धर्म की प्राप्ति होना धर्म लाभ कहलाता है। उस धर्म से पुण्य होता है और पुण्य से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह सुनकर भील कहने लगा कि मैं इस धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। मुनिराज उसका अभिप्राय समझकर कहने लगे कि हे भव्य! क्या तूने पहले कभी कौए का माँस खाया है? तब भील मुनिराज के वचन सुन विचार करने लगा कि मैंने तो कभी वह नहीं खाया तब मुनिराज ने कहा कि यदि ऐसा है तो इसका त्याग कर दो। तब संतुष्ट होकर उसने कौए के माँस का त्याग कर दिया और अपने घर चला गया।

किसी एक समय भील को असाध्य बीमारी हुई। तब वैद्य ने बताया कि कौए का माँस खाकर ये बीमारी शांत हो सकती है। इसके उत्तर में भील ने दृढ़ता से उत्तर दिया कि मेरे प्राण भले ही चले जायें, मुझे इन चंचल प्राणों से क्या प्रयोजन है। मैंने धर्म की इच्छा से तपस्वी मुनिराज से व्रत ग्रहण किया है। जो ग्रहीत व्रत का भंग करता है उसे महान पाप का बंध होता है। मैं इस पाप रूप माँस के द्वारा जीवित नहीं रहना चाहता और उसने माँस खाना स्वीकार नहीं किया।

यह सुनकर सारसौख्यनामक नगर से उसका साला शूरवीर आया। जब वह मार्ग से यहाँ आ रहा था, तब सघन वन के मध्य में स्थित वट वृक्ष के नीचे किसी स्त्री को रोते हुए देखा, उसे रोते देखकर उसने पूछा तू क्यों रो रही है? इसके उत्तर में वह कहने लगी कि तू चित्त लगाकर सुन-मैं इस वन की यक्षी हूँ, यहीं रहती हूँ, तेरा बहनोई खदिरसार रोग से पीड़ित है और कौए का माँस त्याग करने से वह मेरा पति होगा, पर अब तू उसे त्याग किया हुआ माँस खिलाने जा रहा है जिससे तू उसे नरकगति का पात्र बनाना चाहता है इसलिए मैं रो रही हूँ। हे भद्र! अब तू अपना आग्रह छोड दे।

देवी के वचन सुन शूरवीर खदिरसार के पास पहुँचा और एक बार उसने वैद्यजी द्वारा बतायी गयी औषधि खाने को कहा, तब खदिरसार उसकी बात अस्वीकार कर कहने लगा कि तू प्राणों के समान मेरा भाई है, स्नेह वश तू मुझे जीवित रखने के लिए ऐसा कह रहा है परन्तु व्रत भंग कर जीवित रहना हितकारी नहीं है। क्योंकि व्रत भंग करना दुर्गति की प्राप्ति का कारण है। जब उसे निश्चय हो गया कि ये व्रत भंग नहीं करेगा तब उसने उसे मार्ग में घटित यक्षी का वृतांत बतलाया। उसे सुनकर खदिरसार ने श्रावक के पाँच अणुव्रत धारण किये तथा सभी प्रकार के माँस का त्याग कर दिया। जिससे आयु समाप्त होने पर वह सौधर्मस्वर्ग में अनुपम देव हुआ।

शूरवीर दुखी होता हुआ पारलौकिक क्रिया करके अपने घर की ओर चला। मार्ग में वह उसी वट वृक्ष के समीप खड़ा होकर कहने लगा कि हे यक्षी! क्या हमारा वह बहनोई तेरा पति हुआ है, इसके उत्तर में यक्षी ने कहा कि नहीं, वह समस्त व्रतों से सम्पन्न हो गया था अतः व्यंतर योनि से पराङ्मुख होकर सौधर्मस्वर्ग में देव हुआ है। वह मेरा पति कैसे हो सकता था वह तो स्वर्ग के श्रेष्ठ भोगों का भोक्ता हुआ है। अहो! व्रत का ऐसा माहात्म्य है, वह अवश्य ही इच्छित सुखों को प्राप्त कराता है। दो सागर तक दिव्य भोगों का उपभोग कर वह खदिरसार का जीव स्वर्ग से च्युत होकर राजा श्रेणिक हुआ। जो आगे चलकर जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के भविष्यकालीन चौबीस के श्रीपद्म नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

इस प्रकार माँस त्याग करने वाला जीव इह-परलोक में सुख प्राप्त करता है, सुगति का पात्र होता है व सांसारिक सुखों को प्राप्त करता है। अतः विज्ञान, धर्म, चिकित्सा, सामाजिक आदि परिपेक्षों से माँस सदैव त्याज्य है।

भोजन ग्रहण के हेतु

दयाइ-रक्खणत्थं हु, तव-संजम-झाणाइ-वड्ढणत्थं।
छुहाइ-णिवित्तीए दु, णिमित्तं य पाण-धारणस्स॥14॥
महप्पाण सेवाए, पहु-पूयणत्थं च सुह-किदाण चिय।
कत्तव्वपालणत्थं, सव्वदा तित्थवंदणत्थं॥15॥
सत्थ-सज्झायत्थं च, सव्व-रोयाइ-विणासणत्थं खलु।
दाणाइ-सुकज्जत्थं, सज्जणा भोयणं कुव्वंति॥16॥

अर्थ–निश्चय से दयादि गुणों की रक्षा के लिए, तप- संयम-ध्यान की वृद्धि के लिए, क्षुधा आदि की निवृत्ति के लिए भी सज्जन भोजन करते हैं। महात्मा की सेवा, प्रभु पूजन, सुकृत, कर्त्तव्य पालन व तीर्थवंदन के लिए, शास्त्र स्वाध्याय, सर्व रोगादि के विनाश, दानादि सुकार्यों के लिए सज्जन भोजन करते हैं।

People eat food for the protection of virtues like compassion, for enhancing penance, restraint and meditation and for satisfaction of hunger. Noble people take food for the service of mahatamas or saints, for worshipping God, for good deeds, for obeying duties, for pilgrimage, for studying to scriptures, for destroying diseases and for good deeds like donation.

मनुष्य एक विवेकवान् प्राणी है। विवेकी मनुष्य प्रत्येक कार्य सोच-विचारकर करता है। जीवन तो संसार का प्रत्येक प्राणी जीता है किन्तु उत्कृष्ट, श्रेष्ठ जीवन जीना एक अलग बात है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीते हैं। असंज्ञी जीव अर्थात् मन रहित जीव, सोच-विचार के अभाव में निरुद्देश्य जीवन जीते हैं,

संज्ञी पंचेन्द्रिय पशुओं का जीवन भी आहार, निद्रा, भय, मैथुन इनमें व्यतीत हो जाता है। सुबह से शाम और शाम से सुबह बस यूँ ही दिन कटते चले जाते हैं, मानो बस श्वांसों की पूर्ति कर रहे हों। किन्तु मनुष्य सोच-विचार की शक्ति के साथ उन विचारों को साकार रूप देने में भी समर्थ है।

प्रत्येक मानव के जीवन में कोई न कोई शुभ या सदुद्देश्य अवश्य होना चाहिए। उद्देश्य से रहित जीवन पशु के जीवन के समान माना जाता है।

Law of cause and action के अनुसार हर क्रिया का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। आहार करना मनुष्य जीवन की क्रियाओं का अभिन्न व आवश्यक अंग है। यहाँ ग्रंथकार आहार या भोजन करने के कारणों का उल्लेख इसलिए कर रहें हैं कि यदि कोई भोजन करके इन कार्यों को नहीं करता तो वह सावधान होकर इन क्रियाओं को करने का प्रयास करे अथवा जो भोजनादि से शक्ति प्राप्त कर हिंसादि क्रूर कर्म, अन्याय, अत्याचार या नहीं करने योग्य कार्यों में रत है तो वह दुरुपयोग कर रहा है और पुण्य से प्राप्त जिस वस्तु का दुरुपयोग किया जाता है, कालांतर में वह उसे प्राप्त नहीं होती। जैसे माँस, मदिरादि ग्रहण करने वाला स्वपापकर्मों के कारण नरक पहुँचता है तब सागर का जल पी ले इतनी प्यास व तीनों लोकों का अनाज खा ले इतनी भूख लगती है किन्तु खाने-पीने योग्य वस्तुओं का सेवन न कर, इन अशुद्ध, निंदनीय पदार्थों के सेवन से उसे वहाँ कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

अतः करुणामूर्ति आचार्य भगवन् मनुष्य को उन दुःखों से बचाने के लिए ''भोजन मनुष्य क्यों करता है अथवा भोजन करके मनुष्य को क्या करना चाहिए'' इसका यहाँ कथन करते हैं।

प्रथम कहा दयादि की रक्षा के लिए मनुष्य भोजन ग्रहण करता है। यदि मनुष्य भोजन कर हिंसा, अराजकता, तोड़-फोड़, अन्य दुष्कर्म करता है तो इससे बेहतर

है वह भूखा ही रहे। शक्ति के अभाव में स्वदुष्कर्मों से मानव समाज को कम से कम लज्जित तो नहीं करेगा। भोजन करके दया, क्षमा, विनम्रता, सहयोग की भावना, मैत्री, समन्वयता इत्यादि वृद्धिगत होने चाहिए तब ही उसका भोजन करना सार्थक है।

पुनः कहा कि तप, संयम, ध्यान आदि के वर्द्धन के लिए वह भोजन ग्रहण करता है। मनुष्य के जीवन में संयम अवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार ब्रेक से रहित गाड़ी, व्यक्ति की यात्रा को लक्ष्यहीन एवं दुःखमय बना देती है, उसी प्रकार संयम रूपी ब्रेक से रहित मनुष्य का जीवन अंत में उसे कष्ट रूपी गर्त में पहुँचा देता है। पहले वृद्ध लोग कहा करते थे–''संयम से बोलो, संयम से रहो।'' प्रत्येक कार्य में संयम की आवश्यकता होती है। असंयमित होते ही जैसे गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है वैसे ही मनुष्य का जीवन भी दुःखपूर्ण हो जाता है। यदि मानव जीवन की सुखद यात्रा करनी है तो दिनचर्या में संयम को ऐसे मिला दो जैसे दूध में शक्कर। जैसे शक्कर मिलाने पर दूध कहीं से फीका या मीठा नहीं होता अपितु उसका कण-कण मीठा हो जाता है उसी प्रकार दिनभर की प्रत्येक क्रिया चलना, उठना, बैठना, बोलना, भोजन करना आदि में संयम होना चाहिए। अतः मानव संयमवृद्धि के लिए व्रत-उपवास या ध्यानादि के लिए भोजन करता है।

पुनः कहा क्षुधा की निवृत्ति व प्राणों के धारण के निमित्त मानव भोजन करता है। भोजन नहीं करने से भूख से व्याकुलता होती है व भोजन का दीर्घकालीन विग्रह प्राणों को हर सकता है। अतः क्षुधा व्याकुलता मुक्ति व प्राणों की रक्षा के लिए वह भोजन करता है।

महात्माओं की सेवा, प्रभु पूजन व शुभ कृत्यों के लिए भी वह भोजन करता है। यहाँ शुभ कृत्यों से समाजसेवा, देश सेवा, जप इत्यादि उन सभी को ग्रहण करना चाहिए जो स्व वा पर हितकारक हो। पुनः कहा कर्त्तव्य पालन के लिए

मनुष्य भोजन करता है। कर्त्तव्य पालन का क्षेत्र बहुत बड़ा है। अर्थात् व्यक्ति राजा से लेकर सेवक तक जिस-जिस समीचीन पद पर आसीन हो उस-उस के योग्य कर्तव्यों का पालन करे। चाहे वे पद पारिवारिक, सामाजिक या राष्ट्र संबंधित ही हों। जैसे विद्यार्थी पढ़ने के लिए, व्यापारी व्यापार के लिए, शिक्षक पढ़ाने के लिए, गृहिणी गृह कार्यों की संपन्नता के लिए, शासक शासन के लिए, डॉक्टर्स इलाज के लिए इत्यादि पदधारी स्व कर्त्तव्यों के पालनार्थ भोजन करते हैं। गृहस्थ गृहस्थधर्म का व साधु साधुधर्म का पालन करते हैं।

तीर्थवंदना, शास्त्र स्वाध्याय के लिए मानव भोजन ग्रहण करता है। बिना भोजन के वंदना, स्वाध्यायादि हेतु शक्ति क्षीण हो जाती है, जिसके कारण चाहते हुए भी मनुष्य इन्हें करने में असमर्थ होता है। भोजन से शक्ति का वर्द्धन होता है जिसके कारण वंदना, स्वाध्याय या दान आदि सुकार्यों में वह प्रवृत्त होता है।

और कहा रोगादि के विनाश के लिए वह भोजन करता है। बिना भोजन किए रोग का शमन कभी संभव नहीं है और निरोगी मनुष्य ही अन्य सर्व कार्य उत्साह के साथ संपन्न कर सकता है।

इस प्रकार ग्रंथकार ने सज्जन मनुष्यों के भोजन ग्रहण के कारण यहाँ कहे। भोजन कर जो शिष्ट वा सज्जन पुरुष इन कार्यों से वंचित हैं वे इनमें प्रवृत्त होने का प्रयास करें। सज्जन व्यक्तियों का यह स्वभाव होता है कि जब वे किसी वस्तु आदि को ग्रहण करते हैं तो उसका सदुपयोग करने का पूर्णतः प्रयास करते हैं। तब स्वभाव से वे किये गए भोजन से उपर्युक्त कार्य कर उसके उद्देश्य की पूर्ति भी करते हैं।

भोजन त्याग के हेतु

सीलाइ-पालणत्थं, तवोवड्ढग-सल्लेहणत्थं खलु।
भोयणमारोग्गस्स, उज्झदि आगदे उवसग्गे॥17॥

अर्थ–शील आदि पालन करने के लिए, तपवर्द्धक सल्लेखना के लिए, आरोग्य के लिए व उपसर्ग के आने पर सज्जन भोजन को त्यागते हैं।

Noble people give up food in order to observe minor vows, for the sake of sallekhanna which enhances penance, for the sake of good health and when state of affliction arises.

व्याख्यान–सज्जन प्रत्येक कार्य किसी न किसी उद्देश्य से युक्त होकर करते हैं। यदि भोजन ग्रहण करने का उद्देश्य है तो भोजन त्याग का भी उद्देश्य है और सज्जन वही है जिसका उद्देश्य सम्यक् हो। कोई गुस्से में कहे कि मेरा भोजन का त्याग, तो यह कोई उद्देश्य नहीं, यह तो व्यक्ति के व्यक्तित्व का नकारात्मक पहलू है, उसकी कमजोरी का प्रतीक है। यहाँ ग्रंथकार भोजन त्याग के कारणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि वह शील आदि के पालन के लिए भोजन का त्याग करता है।

गरिष्ठाहार शीघ्रता से नहीं पचता, इसलिए वह कब्ज (Constipation) करता है। मल का अवरोध होने से वासना जागृत होती है। अतः पेट भरा रहे, प्रमाद न आए और ऐसा भोजन करें जिससे पेट साफ रहे। मल अवरोध से गैस बनती है जिससे पेट में दबाव बढ़ने से कामवाहिनी नाड़ियाँ उत्तेजित होती हैं और वासना उत्पन्न होती है। खानपान में सजगता शील पालन की बहुत बड़ी शर्त है। अतः शीलपालन के लिए भी भोजन का परित्याग किया जाता है।

किसी नगर में एक सेठ रहते थे। घर में सेठानी व युवा पुत्र था। पुत्र को विवाह योग्य जान उन्होंने अपने पुत्र का विवाह एक सुंदर कन्या से कर दिया। दुर्भाग्यवश कुछ ही समय पश्चात् पुत्र की मृत्यु हो गयी। उससे उबरे नहीं कि सेठानी की भी मृत्यु हो गयी। अब सेठजी अपनी पुत्रवधू का पालन-पोषण पुत्रीवत् करते। सेठजी ने सोचा कि पुत्रवधू को पति का वियोग बार-बार न सताए इसलिए घर में भोजन से लेकर श्रृंगारादि का सामान भरपूर रख दिया।

कुछ दिनों बाद सब स्थिति सामान्य सी हुई। बहू अब घर में बनने वाले मिष्ट व तले गरिष्ठ व्यंजन खाने लगी। जिससे उसका मन वासना से ग्रसित होने लगा और वासना इतनी प्रबल हो गई कि उसने एक दिन निर्लज्जता से सेठजी से कह दिया, पिता जी! अब मैं अकेले नहीं रह सकती अर्थात् वह दूसरा विवाह करना चाहती थी। सेठजी यह सुनकर अवाक् रह गए। तब तो कुछ नहीं बोले किंतु बाद में उन्होंने बहुत सोचा कि बहू के संस्कार ऐसे तो नहीं हैं आखिर उसके मन में ये विचार आया कैसे? बहुत विचार करने के पश्चात् उन्हें समझ में आया कि बहू के मन में विकार आने का कारण भोजन की गरिष्ठता है। इसका निवारण करने के लिए सेठजी ने एक उपाय निकाला

बहू का एक नियम था कि घर में बड़ों को भोजन कराए बिना वह भोजन नहीं करती थी। अतः सेठजी ने बहू से कहा ''बेटा! आज मेरा उपवास है।'' अब तो बहू का भी उपवास निश्चित हो गया। पूरे दिन बिना खाए-पीए बहू ने मुश्किल से अपना दिन निकाला। अगले दिन प्रातः बहू ने सेठजी से भोजन के लिए कहा तो वे बोले ''बेटा! मेरा तो आज भी उपवास है, तुम भोजन कर लो।'' किन्तु बहू अपने नियम में दृढ़ थी। उसने भी दूसरा उपवास कर लिया।

तीसरे दिन भी सेठजी ने उपवास किया और बहू का भी तीसरा उपवास हो गया। अब बहू की इंद्रियाँ शिथिल हो गईं, उसको श्रृंगारादि कुछ भी अच्छा नहीं लगा। चौथे दिन वह बोली ''पिता जी! यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो

भोजन कर लो।'' सेठजी ने कहा ''बेटी! तुमने मुझसे तीन दिन पहले जो कहा था पहले उसकी पूर्ति या उसका उपाय कर लूँ तब पारणा करूँगा।'' यह सुनते ही बहू को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने तत्काल अपने बुरे विचारों की निंदा की व क्षमा माँगने लगी। आज उसके शरीर में गरिष्ठ भोजनादि नहीं था तो परिणाम शील में दृढ़ हो गए किन्तु यदि उसी समय समझाया जाता तो वह समझ नहीं पाती। खानपान को कुविचारों का कारण जानकर उसने सदैव सात्विक, हल्का, सुपाच्य भोजन करने का नियम लिया और कदाचित् भी दुर्भावना कभी जन्म लेती तो उपवासादि कर स्वयं को व्रत में दृढ़ कर लेती।

अगली बात ग्रंथकार ने यहाँ कही कि तप में वृद्धि करने वाली सल्लेखना के लिए सज्जन भोजन त्याग करते हैं। सल्लेखना या समाधि क्या है? आचार्य समंतभद्र स्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं–

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचन प्राहुः सल्लेखनामार्याः॥

उपसर्ग आने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, वृद्धावस्था में वा रोग होने पर जब इनका प्रतिकार ना किया जा सके तब धर्म के लिए अपने शरीर का त्याग सल्लेखना कहलाती है।

सल्लेखना को समझाने के लिए पूज्य गुरुदेव एक बहुत सुंदर दृष्टांत देते हैं–एक व्यक्ति जिसने जीवन भर बहुत श्रम कर धनार्जन किया, वह एक कुटिया में निवास करता था। उसने अर्जित धन से तीन बहुमूल्य रत्न खरीदे और अपनी कुटिया में बहुत संभालकर रख दिए। एक दिन उस व्यक्ति की कुटिया में आग लग गयी, उसने आग को बुझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु अब वह अपनी जलती हुई कुटिया को बचाने में असमर्थ था। जब उसने देखा कि वह अपनी कुटिया को नहीं बचा सकता तो उस बुद्धिमान व्यक्ति ने अपने बहुमूल्य रत्न निकाल लिए, उनको सुरक्षित कर लिया। इसी प्रकार सर्वप्रथम व्यक्ति देह रूपी

कुटीर की हर प्रकार से रक्षा करता है किन्तु जब वह देह रूपी कुटीर को नहीं बचा पाता तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूपी रत्नों के साथ उनको सुरक्षित करता हुआ अपनी देह का परित्याग कर देता है और यही समाधि है।

ऐसे तप को वृद्धिंगत करने वाली उत्कृष्ट साधना अर्थात् सल्लेखना के लिए सज्जन भोजन का त्याग करता है। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज, आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज, आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज, मुनि श्री तरुणसागर जी, श्री चिन्मयसागर जी आदि ने जीवनभर साधना कर अंत में जब शरीर की स्थिति अल्प रह गई तब चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर समत्व परिणामों के साथ देह का परित्याग कर दिया।

जीवनभर साधना करने वाले साधक ही नहीं अपितु सहज-सरल परिणामों के साथ जीवन व्यतीत करने वाले धर्मी श्रावकों ने भी जीवन के अंत में समस्त परिग्रह व खाद्य पदार्थों का त्याग कर व्रतों को स्वीकार कर सल्लेखना को स्वीकार किया एवं समाधिपूर्वक मरण किया।

पद्मपुराण में वर्णित है—मथुरा पर आधिपत्य करने के लिए शत्रुघ्न का राजा मधु के साथ युद्ध हुआ। तब युद्ध में गंभीर रूप से घायल मधु ने शत्रु को दुर्जेय देखकर विचार किया कि अब मेरा अन्त होने वाला है। उसने विचार किया कि यह समस्त आरंभ क्षणभंगुर तथा दुःख देने वाला है। इस संसार में वही कार्य प्रशंसा योग्य है जो धर्म का कारण है। जो पुण्यात्मा मनुष्यजन्म पाकर धर्म में बुद्धि नहीं लगाता वह यथार्थ में मोहकर्म द्वारा ठगा गया। पुनर्जन्म अवश्य ही होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापी ने उस समय अपना हित नहीं किया जिस समय काल अपने आधीन था अतः प्रमाद करने वाले मुझ मूर्ख को धिक्कार है, इत्यादि वैराग्यपूर्ण चिंतन कर राजा मधु ने पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया व सर्व सावद्य का त्यागकर पूर्वोपार्जित पाप कर्म की निंदा की, निज पापों का प्रायश्चित

किया, प्रतिक्रमण किया। समाधिमरण के लिए यथार्थ में न तृण ही संस्तर है और न उत्तमभूमि ही संस्तर है किन्तु कलुषित बुद्धि से रहित आत्मा ही संस्तर है। इस प्रकार समीचीन ध्यान पर आरूढ़ हो उन्होंने दोनों प्रकार के परिग्रह छोड़ दिए और बाह्य में हाथी पर बैठे-बैठे ही अपने केश उखाड़कर फेंक दिए। यद्यपि उनके शरीर में गहरे घाव लग रहे थे तथापि वह दुर्धर धैर्य धारण कर रहे थे। उन्होंने शरीरादि से ममता छोड़ दी थी। उसी समय समाधिमरण कर वह राजा मधु सनत्कुमार स्वर्ग में उत्तमदेव हुए।

पुनः कहा आरोग्य लाभ के लिए भी सज्जन भोजन का त्याग करते हैं। आयुर्वेद ग्रन्थों में कहा है–

ज्वर जुखाम और पाहुनो, चौथो माँगनहार।
लंघन तीन कराइये, फिर नहीं आवे द्वार॥

आज डॉक्टर्स भी सलाह देते हैं कि व्यक्ति को फिटनेस के लिए सप्ताह-महिने भर में एक उपवास आदि करते रहना चाहिए। जापान के वैज्ञानिक योशिनोरी ओसुमी ने बताया कि लंबी भूख या उपवास करने वाले लोगों के शरीर में

आँटोफागी नाम की सफाई प्रक्रिया शुरू हो जाती है, बेकार कोशिकाओं को शरीर साफ करने लगता है और पुनः नई कोशिकाओं का निर्माण होता है। उन्हें इसी खोज के लिए 2016 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। वैज्ञानिक कहते हैं कि उपवास से व्यक्ति का जीवन लंबा हो सकता है, डायबिटीज और कैंसर जैसी बीमारियों का खतरा भी कम हो सकता है।

साइबेरिया में 10 लाख की जनसंख्या वाला बुर्यातिया एक गणतंत्र है। 1995 से वहाँ उपवास द्वारा बीमारियाँ ठीक करने वाला एक प्रसिद्ध अस्पताल विभिन्न बीमारियों के हजारों रोगियों का इलाज कर चुका है। गोर्थाचिंस्क में उपवासी उपचार विधि से लोगों का उपचार किया जाता है। डॉ. निकोलायेव ने डिप्रेशन से लेकर स्कित्सोफ्रेनिया, फोबिया या ओसीडी (ऑब्सेसिव कम्पल्सिव डिसऑर्डर/ सनकपूर्ण शंका-विकार) जैसे रोगों के अनेक पीड़ितों का उपवास द्वारा सफल उपचार किया। उन्होंने कहा कि उक्त मनोरोगियों को ठीक करने में उपवास का बहुत बड़ा योगदान है।

रूसी वैज्ञानिकों ने कहा था कि उपवास से शरीर के तंत्रिका तंत्र (नर्वस सिस्टम) में एक प्रकार से अलार्म बजने लगता है, वह हार्मोन्स और अन्तःस्रावी रसों की सहायता से 'सैनोजेनेसिस' कहलाने वाली शरीर की स्वनियमित आत्मोपचारी क्षमता को जागृत कर देता है। उसके जागृत होने पर शरीर अपने आपको नई परिस्थितियों के अनुरूप ढालते हुए ब्लड शुगर, कोलेस्ट्रॉल, इन्सुलिन या ट्राइग्लिसराइड जैसे घटकों के स्तर में आवश्यक सुधार करने लगता है। योग-ध्यान के समान उपवास भी दमा, हृदय रोग या रक्तचाप जैसी कई शारीरिक बीमारियों का बहुमुखी उपचार है। अर्थराइटिस, इरिटेवल बॉवेल आदि बीमारियों में भी उपवास कारगर है। शरीर के विषाक्त तत्त्वों को नष्ट करने के लिए, यकृत, पेट

व पैनक्रिया की सुरक्षा के लिए, पाचन प्रणाली को लंबे समय तक ठीक रखने के लिए उपवास अत्यंतावश्यक है।

अंतिम कारण बताते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि उपसर्ग आने पर भी सज्जन व्यक्ति भोजन का त्याग कर देते हैं। शास्त्रों में संदर्भ प्राप्त होते हैं कि उपसर्ग आने पर श्रावकों ने उपसर्ग दूर होने तक या दूर नहीं होने की आशंका में सदैव के लिए भोजन अर्थात् चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर दिया। नीली, वृषभसेना आदि के शील पर जब दोष लगा तब उन्होंने स्वयं पर आए उपसर्ग के दूर होने तक चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। अनंगसरा के समक्ष जब अजगर मुख खोलकर खड़ा हो गया तब अपने पिताजी से उस अजगर की प्राण रक्षा हेतु निवेदन करते हुए उसने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। सेठ सुदर्शन पर रानी अभयमती द्वारा उपसर्ग होने पर उन्होंने भी उपसर्ग दूर होने तक चारों प्रकार का आहार त्याग कर दिया था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण आगम ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं।

मनुष्य इन सभी कारणों से भोजन का त्याग करते हैं अथवा इन कारणों से भोजन त्याग करना चाहिए व अपने जीवन को अनुशासित, संतुलित व संयमित करना चाहिए।

कवलाहार के भेद व स्वरूप

चउविह-कवलाहारं, खज्जं सज्जं च लेहं पेयं ति।
सोधिय अक्कपयासे, णिच्चं भक्खेज्ज धम्मप्पा॥18॥

रोडिआइ-खज्जं खलु, सयपुप्फेलाइ-सज्जाहारो य।
हलुआइ-लेहं होदि, जलखीराइ-पेयं भणिदं॥19॥

अर्थ–चार प्रकार के कवलाहार खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय को धर्मात्मा नित्य ही प्रकाश में सोधकर खाए। रोटी आदि खाद्य, सौंफ, इलायची आदि स्वाद्य आहार हैं, हलुवा आदि लेह्य आहार होता है और जल, दूध आदि पेय आहार कहा गया है।

Righteous people should eat four types of kavalahaar (food taken by putting morsel in mouth). Khadya, swadya, leha and peya after seeing it properly in day light. Chapati etc. is khadya. Fennel, cardamom etc. are tasty food. Halwa etc. are leha (semi liquids) and water, milk etc. are peya (liquids).

व्याख्यान—मुख से खाया जाने वाला, मनुष्य व तिर्यंचों का आहार कवलाहार कहा जाता है। यह कवलाहार खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय के भेद से चार प्रकार का कहा गया है। यहाँ उनका स्वरूप बताते हुए कहा गया है—भूख को शांत करने वाले रोटी, दाल, भात आदि खाद्य आहार कहलाते हैं। स्वाद के लिए ग्रहण किए जाने वाले पदार्थ जैसे—इलायची, सौंफ आदि स्वाद्य आहार कहा जाता है। रबड़ी, लपसी, हलुआ आदि लेह्य आहार कहा जाता है तथा पीने वाले पानक जैसे—दूध, पानी आदि पेय आहार कहा जाता है। चार प्रकार के आहारों का वर्णन करते हुए आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी ने मूलाचार में कहा है—

असणं खुहप्पसमणं पाणाणमणुग्गहं तहा पाणं।
खादंति खादियं पुण सादंति सादियं भणियं॥646॥

जिससे भूख की शांति हो जाती है वह अशन है, जिसके द्वारा दस प्रकार के प्राणों का उपकार होता है वह पान है, जो खाए जाते हैं वे खाद्य हैं, रस सहित लड्डू आदि पदार्थ खाद्य हैं। जिनका आस्वाद लिया जाता है वे स्वाद्य हैं।

इन चारों प्रकार के आहार को सूर्य के प्रकाश में शोधकर ग्रहण करना चाहिए। सूर्य का प्रकाश ही क्यों कहा इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि सूर्य के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट और इन्फ्रारेड किरणें होती हैं। इन किरणों से सूक्ष्म जंतु उत्पन्न नहीं होते जबकि सूर्य के प्रकाश के अभाव में सूक्ष्म जीवों की अत्यधिक उत्पत्ति हो जाती है।

कुछ युवा कहते हैं कि सूर्य का प्रकाश नहीं तो क्या हुआ लाइट्स तो हैं। यह तर्क देने से पूर्व आप तो स्वयं प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं कि लाइट पर कीड़े और अधिक आते हैं। सूर्य के प्रकाश में ही सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति को रोकने की सामर्थ्य है। उसके अभाव में भोजन में असंख्यात सूक्ष्म त्रस जीव मिल जाते हैं जिससे उनकी हिंसा तो होती ही है और मानव शरीर में रोग भी उत्पन्न होते हैं। चिकित्सा शास्त्रियों का अभिमत है कि कम से कम सोने से तीन-चार घंटे पूर्व तो भोजन कर ही लेना चाहिए। रात्रि में भोजन करते समय यदि चींटी पेट

में चली जाए तो बुद्धि नष्ट हो जाती है, जूँ से जलोदर रोग उत्पन्न हो जाता है, मक्खी से वमन, मकड़ी से कुष्ट रोग, बाल गले में जाने से स्वर भंग व कंटक आदि से कंठ में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः सूर्य के प्रकाश में शोधकर ही भोजनादि ग्रहण करना चाहिए।

सागर, मध्यप्रदेश की एक घटना है। वहाँ रामदयाल नाम का एक हकीम रहता था। एक समय हकीम की पत्नी को रात्रि में प्यास लगी और उसने पलंग के नीचे रखे लोटे को उठाया और पानी पी लिया। उस लोटे में दुर्भाग्यवश एक मकड़ी गिर गई थी जो जल के साथ-पेट में चली गईं। परिणाम यह हुआ की कुछ समय बाद उनका शरीर फूलकर ढोल हो गया। अनेक औषधियाँ भी प्रभावहीन हो गई। छह मास तक घोर दु:ख, कष्ट भोगने के उपरांत उनकी मृत्यु हो गई। ऐसे एक नहीं अनेक प्रसंग हैं। अतः ग्रंथकार ने पाप से रक्षा व आरोग्य लाभ हेतु निर्देश दिया कि भोजन को सूर्य के प्रकाश में एवं शोधकर अर्थात् भलीभाँति देखकर कि उसमें कोई जीव अथवा बाल आदि तो नहीं है तब ग्रहण करना चाहिए चाहे वह खाद्य हो, स्वाद्य हो, लेह्य हो या पेय। यह धर्म का भी कारण है और स्वास्थ्य का भी कारण है।

आहार के अन्य तीन भेद

तिविहाहारो सत्थे, तामस-रायस-सत्तिआ य भणिदो।
आमुयेज्ज पढमं खलु, गहेदु किंचि रायस मज्जा॥20॥
सत्तिअ-सुद्धाहारं, छुहा-विणासणत्थं गहेज्ज सया।
सो अहिंसगाहारो, अघ-संतीइ कारणं होदि॥21॥

अर्थ—तीन प्रकार का आहार शास्त्र में कहा गया है—तामसिक, राजसिक और सात्विक। प्रथम अर्थात् तामसिक आहार को आर्यजन निश्चय से त्यागें और राजसिक आहार को किंचित् ग्रहण करें। क्षुधा निवृत्ति के लिए सात्विक शुद्ध आहार ही ग्रहण करना चाहिए। वह अहिंसक आहार पापों की शान्ति का कारण होता है।

Three types of food have been mentioned in the scriptures-Tamasik, Rajasik and Satwik. Gentlemen should definitely give up Tamasik food and if have Rajasik food then it should be taken in very small quantity. Only Satwik food should be consumed to satisfy hunger. That non-violent food is the cause of destruction of sins.

व्याख्यान—आरोग्यशास्त्र में आहार के अनेक नियम व अनेक प्रकार बताये हैं। तामसिक, राजसिक व सात्विक के भेद से भी आहार को तीन भागों में विभक्त किया गया है। यहाँ आचार्य महाराज इन तीनों में लेने योग्य या नहीं लेने योग्य आहार का विवेचन करते हैं। वे बताते हैं कि सभी को सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए। तामसिक आहार का तो पूर्णतया निषेध किया, वह सर्वथा अग्राह्य है, राजसिक आहार क्वचित्-कदाचित्-किंचित् ग्राह्य है और सात्विक आहार सर्वथा ग्रहणीय है।

सात्विक संस्कृत शब्द 'सत्व' से लिया गया है। सत्व भारतीय योग दर्शन की एक अवधारणा है जिसका अर्थ है शुद्ध, सच्चा, नैतिक, ऊर्जावान्, स्वच्छ, मजबूत, बुद्धिमान व जीवित। एतावता सात्विक आहार में उन खाद्यपदार्थों को शामिल किया जाता है जो इसके अर्थ का अनुपालन करते हैं। आयुर्वेदानुसार शरीर और मन के बीच संतुलन बनाए रखने वाला भोजन सात्विक भोजन कहलाता है। अथवा आयुर्वेद व योग साहित्य में बताए गए खाद्य पदार्थों पर आधारित ताजा, शुद्ध, शाकाहारी, हल्की चिकनाई वाला व पौष्टिक आहार को सात्विक आहार कहते हैं।

यह आहार फाइबर से भरपूर और लो फैट वाला शाकाहारी आहार है। तीनों प्रकार के आहार में यह सबसे अधिक पौष्टिक व पोषक तत्त्वों से भरपूर माना जाता है। सात्विक आहार से व्यक्ति में प्रमाद या आलस्य नहीं आता, उत्तेजना नहीं आती। ऐसे आहार से मन प्रसन्न व शांत, विचार शुभ व बुद्धि स्थिर रहती है। ऐसे आहार के सेवन से व्यक्ति का मन तो सद्‌विचार व सद्‌चिंतनों से ओतप्रोत रहता ही है साथ ही स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है।

चिकित्सकों के अनुसार सात्विक भोजन पाचन को अच्छा रखता है और ब्लोटिंग खत्म करता है। इससे व्यक्ति की इम्युनिटी पावर भी बढ़ती है और यह मानसिक ऊर्जा को सही दिशा में प्रयोग करने में सहायक होता है। सात्विक भोजन करने से डायबिटीज, हृदय रोग और कई प्रकार के कैंसर का खतरा भी काफी

हद तक कम हो जाता है। हाइ ब्लडप्रेशर और हाइ कोलेस्ट्रॉल लेविल जैसे गंभीर कारकों को नियंत्रित रखने में यह मदद करता है।

ओबेसिटी (obesity) से व्यक्ति कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है किन्तु सात्विक भोजन में कैलोरी की मात्रा कम व फाइबर की अधिकता होने से यह उसको भी नियंत्रित करता है। ऐसा भोजन करने वाला चुस्त व संतुलित रहता है। सात्विक भोजन सौंदर्य वृद्धि में भी कारण होता है। यह न केवल शरीर स्वस्थ रखता है बल्कि मन को भी शांत व स्थिर बनाता है, अंत:करण को पवित्र करता है, आयु, बुद्धि, बल, सुख व प्रीति को बढ़ाने वाला होता है। यही भारतीय संस्कृति का भोजन है जिससे व्यक्ति ऊर्जावान्, बलवान, शांत व अध्यात्मवृत्ति वाला होता है। इसी सात्विक भोजन के करने से भारतीयों में इतनी सात्विकता-आध्यात्मिकता थी (या कथंचित् कुछ में आज भी हो) जिसके कारण भारत विश्व गुरु के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

एक समय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ट्रेन से उतर रहे थे, तभी एक विदेशी व्यक्ति सामने आया और उनके चरण स्पर्श करने लगा। उन्होंने उसे रोकते हुए कहा ''अरे! क्या कर रहे हो, मैं साधु नहीं हूँ।'' उस व्यक्ति ने कहा ''मैंने भारतीयों की सात्विकता, धार्मिकता आदि के विषय में सुना था, आज आपको देख भी लिया। मैं तो प्रत्येक भारतीय को साधु ही समझता हूँ।'' यह रही है भारत की संस्कृति-सादा जीवन, सात्विक भोजन, शुद्ध व उच्च विचार।

स्वास्थ्य मंत्री हर्षवर्धन जी ने भी कहा ''अगर हमें अच्छा स्वास्थ्य चाहिए तो शारीरिक गतिविधियों को बढ़ाना होगा और सात्विक भोजन का सेवन करना होगा।'' योगशास्त्र में भी सात्विक भोजन को सबसे शुद्ध आहार माना गया है। इससे व्यक्ति को गुस्सा, चिंता, चिड़चिड़ाहट आदि भी नहीं आता है। सात्विक भोजन करने वाले में प्रसन्नता, संतुष्टि, धैर्य, क्षमा करने की क्षमता, प्रभु भक्ति या अध्यात्म के प्रति झुकाव इत्यादि अधिक होता है।

तामसिक आहार व्यक्ति के विवेक को नष्ट कर देता है, बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है, मन को अशांत करता है, चिड़चिड़ापन, क्रोध, अवसाद आदि की स्थिति उत्पन्न कर देता है। यह जीवनी शक्ति में अवरोध पैदा करता है जिससे कि धीरे-धीरे स्वास्थ्य और शरीर कमजोर पड़ने लग जाता है। तामसिक भोजन करने वालों में असुरक्षा की भावना, अतृप्त इच्छाएँ, वासनाएँ एवं भोग की इच्छा हावी हो जाती है जिसके कारण वे दूसरों से संतुलित या उचित व्यवहार नहीं कर पाते। ऐसे भोजन से सहानुभूति की भावना नष्ट प्रायः हो जाती है।

तामसिक भोजियों का केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र और हृदय पूरी शक्ति से काम नहीं कर पाता और इनमें समय से काफी पहले ही बुढ़ापे के लक्षण दिखने में आने लगते हैं। ये सामान्यतः कैंसर, हृदय रोग, डाइबिटीज, आर्थराइटिस और लगातार थकान जैसी समस्याओं से ग्रस्त पाए जाते हैं। ऐसा भोजन करने से शरीर में सुस्ती आती है। उसका मन भटकने लगता है और लापरवाह व असावधान होता है। मानसिक शांति और शारीरिक ऊर्जा बिल्कुल नहीं रहती।

आयुर्वेदज्ञों का कहना है कि लंबे समय तक इसके सेवन से पेट में जलन, एसिडिटी के साथ कई अन्य समस्याएँ भी बढ़ जाती हैं। यह व्यक्ति की प्रवृत्ति, आचार-विचार-व्यवहार आदि बिगाड़ देता है। कई बार तो तामसिक भोजन से व्यक्ति की प्रवृत्ति उग्र व असामाजिक होने लगती है। तामसिक भोजन रोगों को आमंत्रित करने के लिए निमंत्रण पत्र है।

राजसिक आहार करने वाले में शक्ति, सम्मान, पद और संपन्नता आदि के प्रति रुचि वृद्धिंगत हो जाती है। ये दृढ़ निश्चयी होते हैं। ये जीवन का आनंद भी लेते हैं किन्तु इनमें कामुकता, दुःख, लालच, ईर्ष्या, क्रोध, कपट, कल्पना, अहंकार और अधर्म की भावना भी होती है। कर्मठता, स्वयं कार्यरत रहना, सदैव सक्रिय रहना, बहुत भाग-दौड़ करना, बाह्य व अभ्यंतर अशांति, स्वार्थपना इत्यादि राजसिक भोजन करने वालों के लक्षण हैं। यह स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होता है। इससे मन व बुद्धि चंचल हो जाती है।

तामस, राजस व सत्त्व ये खाद्य पदार्थों के गुण नहीं अपितु जीवन जीने व उसे दिशा देने का मार्ग भी हैं। जैसा भोजन वैसा विचार, जैसा मन वैसी प्रवृत्ति, जैसा आचार वैसा ही व्यवहार।

कोई राजा अपने राजपरिवार के साथ वन विहार के लिए गया। राजा जिस घोड़े पर बैठा था वह घोड़ा बहुत आगे निकल गया, बाकी रानियाँ, सेवक, सैनिक सब पीछे रह गये। दूर जंगल में जाने पर राजा बहुत थक गया। कड़ाके की भूख भी लग गयी। वह जहाँ जाकर रुका वहाँ एक ऋषि का आश्रम था। राजा आश्रम में गया और ऋषि से कहा—मुझे बहुत भूख लगी है, कुछ खाने को दीजिये।''

ऋषि ने वन के ताजे फल वगैरह राजा को खाने के लिए दिये। झरनों का स्वच्छ पानी पिलाया। सात्विक, शुद्ध भोजन-पानी से राजा को बड़ी तृप्ति मिली। राजा सोचने लगा—यहाँ आश्रम का वातावरण कितना पवित्र और आनन्दमय है। मैं वहाँ नगर में दमघोटू जिन्दगी जीता हूँ। यहाँ कितना सुख प्रतीत होता है। यहाँ के फल व जल कितने स्वादिष्ट हैं। उसका मन हुआ बस, मैं यहीं रहूँ और भजन व साधना में अपना जीवन बिताऊँ।

तभी राजा की रानियाँ, दास-दासियाँ सब आ पहुँचे। राजसी भोजन तैयार करके साथ लाये थे। झारियों में सुगन्धित जल भरा था। राजा ने ऋषि के आगे अनेक प्रकार के मिष्टान्न, पक्वान्न, व्यंजन व सुगंधित जल आदि रखे और कहा—ऋषिराज! इसमें से कुछ आप ग्रहण कीजिये और इनका स्वाद चखिये, कितना स्वादिष्ट है यह भोजन। यह जल भी केवडा, गुलाब की सुगन्ध से महक रहा है। राजा के आग्रह से ऋषि ने राजा का भोजन-जल ग्रहण कर लिया। भोजन करने के बाद ऋषि का विचार बदला। सोचा-जीवन का आनंद तो यह राजा ले रहा है। कितनी सुंदर रानियाँ, दास-दासी और यह मधुर-मिष्टान्न युक्त स्वादिष्ट भोजन। मेरा जीवन तो वन के कन्दमूल-फल खाकर व्यर्थ ही बीता। मैंने तो जंगली पशुओं की तरह जीवन बिता दिया।

इस प्रकार दोनों के विचारों में परिवर्तन आ गया। राजा ने ऋषि का सात्विक आहार ग्रहण किया तो उसके विचार सात्विक बन गये। वह राज छोडकर साधना करने में रुचि लेने लगा और राजा का राजसिक भोजन ऋषि ने किया तो उसके विचार भी राजसिक हो गये। वह साधु अपनी त्याग-तपस्या को छोड़ राज करना चाहता था।

निःसंदेह भोजन व्यक्ति को पूर्णतया प्रभावित करता है। सात्विक भोजन से व्यक्ति तन से व मन से भी स्वस्थ रहता है जिससे समाज व देश में भी शांति की स्थापना संभव है और उसका स्वयं का जीवन तो शांतिमय व सुखी होगा ही, अतः व्यक्ति सदैव शुद्ध सात्विक भोजन करे। राजसिक भोजन क्वचित्-कदाचित् कभी कर भी ले किन्तु तामसिक भोजन कभी न करे, उसका परित्याग दूर से ही कर दे।

सात्विक भोजन के अंतर्गत मौसमी फल, सब्जियाँ (प्याजादि छोड़कर) दूध व दूध से बने उत्पाद, साबुत अनाज, जूस, दालें, ड्राइफ्रूट्स आदि आते हैं। अथवा यों कहें शरीर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करने वाला भोजन सात्विक भोजन है; जो मिर्च मसालों व तेल से लगभग रहित होता है। अथवा पेड़-पौधों से मिलने वाले सब्जी-फल वा दुग्धादि सात्विक भोजन की श्रेणी में आते हैं। इसमें प्रोसेस्ड फूड्स का कोई स्थान नहीं है। फ्राइड फूड, अधिक मीठी चीजें, कैफीन युक्त पेय पदार्थ, केक, पेस्ट्री इत्यादि सात्विक भोजन से बाह्य हैं और विशेषता ये है कि यदि सात्विक भोजन बनाकर फ्रिज में रख दिया जाए और बाद में उसका सेवन किया जाए तो वह भी अग्राह्य है। शुद्ध शाकाहार सात्विक भोजन है।

यहाँ ग्रंथकार ने शुद्ध, सात्विक भोजन को अहिंसक आहार कहा है। 'शुद्ध' शब्द का प्रयोग इसलिए आवश्यक है क्योंकि कई बार लोग होटल आदि में सात्विक भोजन करते हैं किन्तु वह सात्विक भी तामसिक रूप ही जानना चाहिए। इसका कारण है अशुद्धता से बना वह भोजन अथवा कई बार तो दिनों-दिनों तक की चीजों को व्यक्ति भक्षण करता है जिसमें कई जीवों की उत्पत्ति हो

जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होता है। यह शरीर में phthalates नामक रसायन के उत्पादन को बढ़ाता है और स्वास्थ्य को सबसे खराब तरीके से नुकसान पहुँचाता है। यह हार्मोनिक बैलेंस को भी बिगाड़ देता है। शुद्धता का अर्थ हाइजीनिक भी लिया जा सकता है और यह बताने की आवश्यकता नहीं कि बाहर रेस्ट्रॉ आदि का भोजन कितना हाइजीनिक होता है।

यहाँ शुद्ध सात्विक का प्रयोग कर ग्रंथकार ने व्यक्ति का ध्यान न केवल दाल, सब्जी आदि भोजन की ओर आकर्षित किया है अपितु वह शुद्ध प्रकार से बना हो। बनाने वाला भी स्वच्छ हो, भोज्य सामग्री भी स्वच्छ हो, भोजन बासी न हो तभी वह सात्विकाहार कहलाता है। रेस्ट्रॉ, होटल आदि में अशुद्धता के कारण वह ग्राह्य नहीं है।

एक बार एक श्रावक जिनका केटरिंग का काम था उन्होंने हमें बताया कि दूसरों का तो दूर, हम अपनी केटरिंग का भोजन भी कभी नहीं करते। बोले–केटरिंग वाला हूँ, कहना तो नहीं चाहिए किन्तु केटरिंग का भोजन लेने योग्य ही नहीं है।

जिन खाद्य पदार्थों में खमीर उठाया जाता है, अति जीवोत्पत्ति के कारण वे भी सात्विक आहार की श्रेणी में नहीं आते। सात्विक आहार शुद्ध व शाकाहार है। अज्ञानतावश कुछ लोग कहते हैं कि सात्विक आहार में यदि शाकाहार है तो दुग्धादि को इसमें ग्रहण क्यों किया, वह तो शाकाहार नहीं? तो आपके भ्रम को दूर करते हुए बता दें कि शाकाहारी पशु गाय आदि का दूध कदापि माँसाहार की श्रेणी में नहीं आता। वह शुद्ध शाकाहार है। यदि गायादि से प्राप्त होने के कारण शाकाहार नहीं मानेंगे तो माँ के दूध को भी माँसाहार कहेंगे जो कि हर प्रकार से बाधित है।

रक्त या माँसादि को शरीर से अलग करने पर शरीर में वेदना होती है किन्तु जब गाय दुग्ध देती है तो उसे कोई वेदना नहीं होती और 48 मिनट तक उसमें जीव उत्पत्ति भी नहीं होती इसलिए श्रावक 48 मिनट से पूर्व ही दूध को गर्म कर लेते हैं, जिससे आगे भी उसमें जीवोत्पत्ति नहीं होती। कोई अंडे को भी शाकाहारी

कहे तो वह नितांत मूर्ख है। क्योंकि अंडे में पंचेन्द्रिय जीव पल रहा है। जैसे–जब जन्म होता है तब उसी समय जीव का आना नहीं होता बल्कि 9 माह पूर्व से ही माँ के गर्भ में उसका पालन होता है। इसी प्रकार अंडे में प्रथम क्षण से ही जीव होता है। उसका भक्षण माँस भक्षण ही है।

अंडे में से कुछ समय पश्चात् वह अण्डा जिस जीव का है वह जीव उत्पन्न होता है किन्तु दूध कितने भी समय रखा रहे उसमें से कभी गाय-भैंस पैदा नहीं होगी इसलिए अंडा माँस की श्रेणी में आता है व दूध शाकाहारी ही है। दूध को माँसाहार कहने वाले विद्वत्ता की किसी भी श्रेणी में सम्मिलित नहीं है। दूध तो मादा के वात्सल्य का प्रतीक है जो उसके शिशु के लिए उमड़ता है। माँ अपने शिशु को दूध पिलाकर तो पालन-पोषण करती है किन्तु रक्त पिलाकर कभी नहीं। माँस-रक्तादि जीव में जन्म से होता है जो रज-वीर्य से मिलकर बनता है किन्तु दुग्ध प्रकृति का वरदान है। माँ तो दुग्ध से मात्र अपने शिशु का पालन करती है किन्तु गौ आदि पशु मानव जाति का पालन-पोषण करते हैं। दूध पूर्णतया शाकाहार, शुद्ध व सात्विक है।

राजसिक आहार का स्वरूप

णाणाविंजणजुत्तं छहरसजुत्तं गरिट्ठभोयणं च।
रायाणं खलु जोग्गो, राजसाहारो बलजुत्तो॥22॥

अर्थ–अनेक व्यंजनों से युक्त और षट्रस से युक्त राजाओं के लिए योग्य शक्तिशाली गरिष्ठ भोजन ही राजसिक आहार है।

Rajasik food is the powerful, heavy meal consisting of many dishes having six tastes. This Rajasik food is fit for kings.

व्याख्यान–अत्यंत मसालों युक्त (spicy), तला, गरिष्ठ भोजन, देर से पचने वाला भोजन राजसिक भोजन कहलाता है। अथवा ज्यादा खट्टा, मीठा, नमकीन, कसैला, चटपटा, तीखा, राजाओं के योग्य भोजन राजसी भोजन कहा जाता है। या कड़वे खट्टे-नमकीन, अत्युष्ण, तीखे, रूखे और दाहकारक नमक, मिर्च, इमली, मसाले आदि से युक्त भोजन राजसिक है।

अनेक व्यंजनों वाला षट्रसों से युक्त अत्यंत गरिष्ठ भोजन जो व्यक्ति में प्रमाद उत्पन्न करता है, उसमें क्रोधादि भावनाओं का उत्पादक होता है, जिसका पाचन अधिक समय में कठिनता से होता है, जो कोलेस्ट्रॉल, एसिडिटी, डाइबिटीज आदि

बीमारियों का कारण होता है, जिससे मन उत्तेजित रहता है वह राजसी भोजन कहलाता है। गरिष्ठ या राजसी भोजन स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध होता है।

इसका पाचन देरी से होने के कारण संपूर्ण पाचन प्रणाली असंतुलित हो जाती है। इनका अधिक सेवन व्यक्ति में बेचैनी, क्रोध, चिड़चिड़ापन और अनिद्रा इत्यादि लाता है। यह अत्यधिक वसा से युक्त होता है, उत्तेजक होता है। इसका सेवन व्यक्ति को कामुक व आवेशपूर्ण बनाता है। पूर्व गाथा में जो ग्रंथकार ने किंचित् राजसी भोजन के ग्रहण की बात कही वह उन्हीं लोगों के लिए है जो शारीरिक मेहनत अधिक करता हो, जो कैलोरी अधिक कन्ज्यूम (Consume) करता हो। आवश्यकता से अधिक callories हानिकारक होती है।

राजसिक भोजन करने वालो में आज्ञापालन, विनम्रता आदि गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। वर्तमान में बहुत से माता- पिता कहते हैं कि हमारे बच्चे हमारी बात नहीं सुनते, हमारी बात नहीं मानते तो ध्यान रहे इसमें भोजन की बहुत बड़ी भूमिका है। आप बच्चों को सात्विक भोजन देना प्रारंभ करें, उनकी प्रवृत्ति व वृत्ति स्वयं ही बदल जाएगी

विद्यार्थी अथवा एक्टिव व फिट रहने के इच्छुक, आनंद व शांति के अभिलाषी लोगों के लिए राजसिक भोजन उचित नहीं क्योंकि यह प्रमाद, आलस्य का कारण है। राजसिक भोजन व्यक्ति की सहनशीलता को भी घटाता है, अत्यधिक सेवन तानाशाही सी प्रवृत्ति बना देता है। ऐसा भोजन करने वाले की प्रवृत्ति आक्रामक भी देखी जाती है। उत्तेजक होने से ऐसा व्यक्ति प्रायःकर अनुशासन व मर्यादा में नहीं रहता।

एक बार दो मित्र थे। एक मित्र ने दूसरे मित्र को भोजन के लिए बुलाया। नाना प्रकार के व्यंजनों से युक्त भोजन करने के पश्चात् मित्र ने पूछा यह तो बताओ भोजन कैसा लगा? दूसरे मित्र ने कहा कल बताऊँगा। कल पूछने पर उस मित्र

ने कहा अगले माह आप हमारे यहाँ भोजन के लिए आना तब बताऊँगा। अपने मित्र के आमंत्रण पर पहला मित्र अपने मित्र के यहाँ पहुँच तो गया किन्तु उसे समझ नहीं आ रहा था कि इतने सरल से प्रश्न का उत्तर मेरा मित्र क्यों नहीं दे रहा है। भोजन करने बैठे तब पहले मित्र ने फिर पूछा 'क्या अब आप मेरे प्रश्न का उत्तर दोगे?' दूसरे मित्र ने कहा पहले भोजन कर लें फिर बताते हैं। दोनों ने सानंद भोजन किया। जब वह भोजन कर चलने लगा तब पुनः बोला अब तो बताओ मेरे प्रश्न का उत्तर। दूसरा मित्र मुस्कुराता हुआ बोला—अब तक तो आप समझ ही गए होंगे। वह बोला—मतलब? मतलब ये कि जिस दिन मैंने तुम्हारे यहाँ भोजन किया था मुझे आलस्य आया मैं 1 घंटे सोया, दिन भर कुछ चिड़चिड़ा या भारीपन भी रहा। किन्तु तुम आज बिना थके सीधे काम पर जा सकते हो, तुम्हें प्रमाद भी नहीं आएगा और मन भी शांत रहेगा। उस दिन वाला भोजन राजसिक था तथा आज वाला भोजन सात्विक है।

इस प्रकार अत्यंत वसा युक्त गरिष्ठ भोजन राजसिक भोजन है जो सदैव ग्राह्य नहीं है।

तामसिक आहार का स्वरूप

मज्जमिरियं पलंडुं, मंसं मदजणगमणिट्ठाहारं।
संधाणं कंदं णिसि-भोयणं तामसिगो भणिदो॥23॥

मदकारगाहारो य, रुद्द-पयडीए उप्पत्ति-हेदू।
कसायभावो हवेदि, जेण सो तामसिगाहारो॥24॥

अर्थ—मद्य, मिर्च, प्याज, माँस, मदोत्पादक अनिष्ट आहार, अचार, जमीकंद तथा रात्रिभोजन तामसिक आहार कहा गया है। मदकारक आहार रुद्र प्रकृति की उत्पत्ति का हेतु है और जिससे कषायभाव होता है वह तामसिक आहार है।

Alcohol chillies, onion, meat, intoxicating food, pickles, bulbous vegetables and food at night, is called Tamasik food. Intoxicating food causes cruel temperament and that which causes astringency is Tamasik food.

व्याख्यान—मिर्च युक्त अत्यंत तीखा, मद को उत्पन्न करने वाला, प्याज, लहसुन, माँस, मदिरादि अनिष्टकारक पदार्थ, अचार, जमीकंद आदि अपवित्र भोजन तामसिक भोजन कहलाता है। तेज गंध वाले तथा नींद लाने वाले खाद्य पदार्थ तामसिक गुण वाले होते हैं। प्याज, तेल या चर्बी वाले खाद्य, शराब, दवाईयाँ, चाय, कॉफी, तंबाकू, धूम्रपान आदि तामसिक गुण वाले कहे जाते हैं। रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं से उगाए गए खाद्य पदार्थों की प्रकृति तामसिक होती है। डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ और रासायनिक पदार्थों से तैयार रस तामसिक गुण वाले कहे जाते हैं।

क्रोध, बीमारी, दुर्भावनादि का उत्पादक भारी व बासी भोजन तामसिक कहलाता है। जो अन्न सड़ा-गला, चलित रस, कृमि कीटों से अपवित्र, खमीर युक्त, रसहीन, दुर्गन्धित हो वह तामसिक भोजन की श्रेणी में आता है। बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला, नकारात्मकता को बढ़ाने वाला पिज्जा, बर्गर, जंक फूड आदि तामसिकाहार हैं। अस्पृश्य पदार्थों की मात्रा से युक्त भोजन तामसिक कहलाता है। रात्रि में किया गया भोजन भी इसी के अंतर्गत आता है क्योंकि रात्रि में जीवघात बहुलता से होता है।

जो भोजन व्यक्ति को असंवेदनशील, लक्ष्यहीन, निष्क्रिय बनाता है वह तामसिक गुण से युक्त है। तामसिक आहार करने वाले की वृत्तियाँ हिंसा, झूठ, व्यभिचार आदि की ओर बढ़ती हैं। यह भोजन रोग, बुढ़ापे और मृत्यु का कारण है। तामसिक भोजन करने वाले सामान्यतः कैंसर, हृदय रोग, डाइबिटीज, आर्थराईटिस आदि रोगों से युक्त पाए जाते हैं। प्रोसेस्ड फूड भी तामसिक जानना चाहिए। केक, पेस्ट्री, मैगी, फ्रेंच फ्राइस, नूडल्स, चॉकलेट आदि सब अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड में शामिल हैं। यह व्यक्ति में 12% कैंसर का खतरा बढ़ा देता है। प्रोसेस्ड फूड व्यक्ति को विटामिन, मिनरल और एंटीऑक्सीडेंट्स से दूर कर देते हैं व स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

वर्तमान में जंकफूड, फास्टफूड और डिब्बा बंद फूड का बहुत प्रचलन है जो व्यक्ति के शरीर व मानसिक स्वास्थ्य दोनों के लिए हानिकारक होता है। इस प्रकार का भोजन जितना कम होगा शरीर में फुर्ती और दिमाग उतना ही तेज होगा। जैसे लोहे में यदि जंग लग जाए तो उसे खराब कर देता है उसी प्रकार जंकफूड मानव शरीर व बुद्धि दोनों में जंग लगा देता है, उन्हें खराब कर देता है। फास्टफूड व जंकफूड से व्यक्ति डिप्रेशन का शिकार हो सकता है। इस भोजन से उसके हार्मोन्स इन्बैलेंस हो जाते हैं। ये tooth enamel को नष्ट कर सकते हैं व कैविटीज का कारण भी बनते हैं। हाई कॉलेस्ट्रॉल व हाई ब्लडप्रेशर व हार्ट डिसीज के तो ये सच्चे मित्र हैं।

कभी इस अत्यल्प रोगमुक्त भारत को आज heart disease country या diabetic country बनाने में फास्टफूड, प्रासेस्ड फूड आदि की सबसे बड़ी भूमिका है। बच्चों और युवाओं में heart attack की बढ़ती समस्या का ये मुख्य कारण है।

कोल्ड ड्रिंक्स को यदि टॉयलेट क्लीनर कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। यदि कोल्डड्रिंक में दाँत डालकर दो दिन के लिए छोड़ दिया जाए तो वह गल जाएगा, तब आपके शरीर में पहुँचकर वह किस प्रकार नुकसान पहुँचाता होगा यह आप स्वयं विचार करें। मेडिकल जनरल लेन्सेट ब्रिटिश के शोध 1980 के पृष्ठ 834-40 के अनुसार अधिकांश कोल्ड ड्रिंक्स में एस्परटेम रसायन मिलाया जा रहा है जो मूत्र नलिका के कैंसर के लिए जिम्मेदार है। डॉ. एन.डब्ल्यू. वॉकर ने अपनी पुस्तक 'वाटर केन अण्डर योर हैल्थ' में लिखा है कि कोल्डड्रिंक्स का नियमित वा अधिक सेवन सरेब्रल पाल्सी (मस्तिष्क संबंधी बीमारी) व अन्य दिमागी रोग पैदा कर सकता है। यह दिमागी तंत्रिकाओं को नष्ट कर सकता है।

इन्सुलिन के सहखोजी वैज्ञानिक चार्ल्स बेस्ट ने शोध में पाया कि इसके अधिक उपयोग से बच्चों के लीवर में सिरोसिस नामक रोग हो जाता है। अमेरिका के मार्ग पेंडरग्रास्ट ने अपने शोध में बताया है कि कोकाकोला में स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने वाले अन्य रसायनों के साथ-साथ शराब का भी प्रयोग होता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'फॉर गॉड, कंट्री एंड कोकाकोला' में बताया है कि कोकाकोला में कैफीन, वैनीला, फ्लेवरिंग, एफई कोको, साइट्रिक एसिड, नींबू रस, चीनी व पानी मिला होता है। ऐसे रसायनों से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, कैफीन, कोकीन, पोटेशियम बेंजोएट और दूसरे जहरीले रसायन शरीर में पहुँचते हैं। इससे आमाशय व आंतड़ियों में घाव, हड्डियों का गलना, मोटापा, दाँत गिरना, हृदय रोग, गुर्दे में पथरी और कैफीन का नशेड़ी बना देने जैसे रोग हो सकते हैं। कुछ आँकड़ों के अनुसार विश्वभर में सॉफ्टड्रिंक्स से 1.80 लाख लोग मरते हैं।

किसी ने फास्टफूड के विषय में बताते हुए कहा ''डिब्बाबंद या रैपर पैकेट बंद खाद्य पदार्थ जो बाजार में बिक रहे हैं जैसे मैगी, पिज्जा, बर्गर, फ्रेंच फ्राइज, चाउमीन, बिस्किट, चॉकलेट, बोर्नवीटा, कॉम्प्लेन, होर्लिक्स, माइलो चोकोज, प्रोटीनोज, बूस्ट, लेज, पेस्ट्री, कुरकुरे, कोल्ड ड्रिंक्स, च्युइंगम आदि को लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए जहरीले रसायनों का प्रयोग किया जाता है। ये शरीर के नाजुक अंगों को धीरे-धीरे क्षति पहुँचाते हैं। जब जीवन की गाड़ी चिकित्सकों के भरोसे घसीटने को हो जाती है मजबूर, उसे कहते हैं—फास्ट फूड।

मधुमेह, किडनी फेल, आँखों की रोशनी जाना, हृदयघात सफेद दाग, सफेद बाल, याददाश्त कमजोर होना, मोटापा, कैंसर आदि के लिए फास्टफूड जिम्मेदार है।

—डॉ. एन. कोच पिल्लई

(अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली के इंडोक्रोइनोलॉजी के विभागाध्यक्ष)

आहार विशेषज्ञ डॉ. शिवा वंदना का भी कहना है कि फास्ट फूड से भारत में बीमारियों की 70% वृद्धि हुई है।

छाती में धड़कन बढ़ना, दमा, लगातार सिरदर्द, कैंसर, याददाश्त कमजोर होना (memory loss), स्वभाव चिड़चिड़ा, क्रोधी, पेट खराब रहना आदि रोगों का कारण फास्टफूड में मोनो सोडियम ग्लूटामेट (अजीनोमोटो) फ्लेवरिंग एजेन्ट है।

—डॉ. लुकमान अहमद खान

(अणु जीव विज्ञानी)

भारत में प्रयुक्त फास्टफूड में डी.डी.ए., बी.एच.सी. तथा मेलाथियान जैसे घातक रसायनों की मात्रा मानव की सहनशक्ति से बाहर की बात है। फास्टफूड स्वास्थ्य को पूरी तरह चौपट कर रहे हैं।

—फूड टैक्नोलॉजी रिसर्च इंस्टीट्यूट मैसूर, भारत

इनके अतिरिक्त आर्टिफीशियल फ्रक्टोज युक्त पदार्थ जैसे—अमेरिकन मक्का–बेबी कॉर्न आदि भी स्वास्थ्य के शत्रु हैं। ये भी तामसिक भोजन के अंतर्गत आते हैं। डॉ. रॉबर्ट एच. लस्टीग (प्रोफेसर ऑफ पिडियाट्रिक्स एवं मोटापा विशेषज्ञ) ने कहा कि ज्यादा फ्रक्टोज इन्सुलिन के प्रभाव को कम करता है जिससे डाइबिटीज की संभावना बढ़ जाती है। वैज्ञानिक परीक्षण से ये सारी बातें सिद्ध हो चुकी हैं कि फ्रक्टोज की अधिक मात्रा मोटापा, डायबिटीज, हृदय रोग, लीवर की बीमारियाँ एवं जानलेवा बीमारी कैंसर को जन्म दे रही हैं।

Healthy Family Organization के अनुसार फ्रक्टोज से सबसे ज्यादा लीवर प्रभावित होता है एवं पेनक्रियाज भी अपना काम सही नहीं कर पाती। यह फ्रक्टोज कॉर्न सिरप (स्वीट कॉर्न, बेबीकॉर्न, अमेरिकन भुट्टा) में सबसे अधिक पाया जाता है। इसका सेवन बंद करना चाहिए व सामान्यजनों को इससे होने वाले हानिकारक प्रभाव के बारे में जागरूक करना चाहिए व उन्हें रोकना चाहिए

माँसादि जिसमें कदाचित् भी मिश्रित है वह भी तामसिक भोजन ही है। आजकल खाने–पीने के पैकेट्स पर E.No. लिखा होता है। ये E. No. सूअर की चर्बी, मछली की चर्बी आदि को दर्शाते हैं। जिस भी product पर E.No. लिखा हो उसे Net के जरिए देख लें। उस ई–नंबर का नाम व उत्पादन स्रोत आप देख सकेंगे। इसलिए ग्रीन साइन वाले प्रोडेक्ट्स पर भी यदि ई. नंबर डला है तो आवश्यक नहीं वह वेज हो इसीलिए बच्चों को अवेयर करें, स्वयं भी E.No. देखें, चेक करें, बच्चों को भी सिखाएँ।

माता-पिता अपनी संतानों से लाड़-प्यार तो करें किन्तु उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ न करें। बच्चों की हर जिद को प्यार में पूरा न करके उन्हें समझाएँ व स्वास्थ्यवर्द्धक पौष्टिक खाद्य पदार्थ का ही सेवन कराएँ। माता-पिता बच्चों के भविष्य के निर्माता माने जाते हैं, उसें नष्ट करने वाले नहीं। अतः केक, पेस्ट्री, चॉकलेट, कोल्ड ड्रिंक्स आदि से उन्हें दूर रखें।

तामसिक भोजन बच्चों में अग्रेसिवनैस, गुस्सा, चिल्लाना, मिसबिहेवियर, बात न मानना आदि को बढ़ाता है। मानव में यह रौद्रता उत्पन्न करता है व कषायों को बढ़ाता है। अतः ग्रंथकार ने पूर्व में ही इसके सर्वथा त्याग की बात कही। स्वास्थ्यवर्धन, संस्कारों के संरक्षण, परंपराओं के संपोषण, सुभविष्य के निर्माण, देश में अपराधिक गतिविधियों को विराम देने और सुख की स्थापना के लिए इस निम्न स्तरीय तामसिक आहार को छोड़ देना चाहिए।

किसी ने कहा है-Food is poison to ignorant and long life to the wise. अज्ञानी व लापरवाह के लिए भोजन रोगों को निमंत्रण देता है और विष बन जाता है किन्तु समझदार व संयमी के लिए वह दीर्घजीवन व आरोग्यदायक भी है। अतः आहार संबंधी नियमों का सदैव पालन करें, यही दुःख से बचने का उपाय है।

अभक्ष्य त्याग प्रेरणा

अज्जा सव्ववत्थाइ, अभक्खं भोयणं सया उज्झेज्झ।
दुग्गदि-कारणमिदं च, सुगदीइ अहिंसगाहारो॥25॥

अर्थ–आर्यों को सभी अवस्था में सदा अभक्ष्य भोजन त्याग देना चाहिए। यह दुर्गति का कारण है और अहिंसक आहार सुगति का कारण है।

Noble people should always give up non-edible food in all circumstances. This is the cause of abjection and non-violent food is the cause of good transit.

व्याख्यान–शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ बने रहने के लिए उचित, संतुलित, शुद्ध व सात्विक भोजन ही होना चाहिए। आहार को कला व विज्ञान का समन्वयात्मक रूप कहा गया है और इसका कारण यह है कि आहार विज्ञान न केवल यह बताता है कि व्यक्ति को कौन से पोषक तत्त्व किस प्रकार लेने हैं बल्कि उनकी समुचित मात्रा का भी कथन करता है। उनके परिणाम का भी कथन करता है। मनुष्य के लिए खाने योग्य पदार्थ अथवा नहीं खाने योग्य पदार्थ का भी कथन करता है।

भक्ष्य का अर्थ है–खाने योग्य और अभक्ष्य का अर्थ–नहीं खाने योग्य। अभक्ष्य अर्थात् भक्षण के अयोग्य पदार्थ या भोजन। यह श्रावक जीवन की गरिमा के प्रतिकूल है व दुर्गति का कारण भी है। श्रावक के अयोग्य 22 प्रकार के अभक्ष्य कहे गए हैं जो इस प्रकार हैं–

ओला, घोरबड़ा, निशि भोजन, बहुबीजक, बैंगन, संधान।
बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर-फल जो होय अजान॥
कन्दमूल, माटी, विष, आमिष, मधु, माखन अरु मदिरापान।
फल अति तुच्छ, तुषार, चलित रस, जिनमत ये बाईस अखान॥

1. ओला–अनछने जल के जम जाने से यह अस्तित्व में आता है। कैप्टिन स्ववोर्सवी ने अन्वेषण कर बताया कि अनछने पानी की एक छोटी सी बूँद में 36,450 सूक्ष्म जीव होते हैं। आगम के अनुसार तो एक बूँद में असंख्यात जीव होते हैं इसलिए जल को कपड़े से छानकर प्रयोग करने का विधान न सिर्फ जैन ग्रन्थों अपितु मनुस्मृति आदि में भी प्राप्त होता है। अनछने जल ग्रहण से न मात्र उन जीवों की हिंसा होती है अपितु अनेक बीमारियों के होने का भय भी रहता है।

एक समय पढ़ने में आया कि पानी में पानी के रंग के जीव होते हैं। उस (transparent) जीव की picture भी दिखाई गयी थी। जो सहजता में दिखने में नहीं आता और मानव शरीर में पहुँचकर भयंकर कष्टदायक होता है। अतः अनछना जल व उससे निर्मित वस्तु ओला के समान सदैव अभक्ष्य है।

2. घोरबड़ा–घोर बड़ा अर्थात् दही बड़ा। उड़द या मूंग की दाल के द्वारा निर्मित बड़ा जिसे दही या छाछ से खाया जाता है वह सदैव अभक्ष्य है। एक शब्द आता है 'द्विदल' इसका अर्थ है–दो दल हो जाएँ ऐसे अनाज जैसे–चना, दाल आदि को दही के साथ लेने से लार (saliva) के साथ मिलते ही उसमें बहुजीवों

की उत्पत्ति हो जाती है। अतः यह द्विदल सदा अभक्ष्य है। दही व दाल साथ में, दही की कढ़ी, दही बड़ा आदि अभक्ष्य हैं।

3. निशि भोजन—रात्रि में अनेक जीवों की उत्पत्ति होने से रात्रि में भोजन करना, माँस भक्षण के समान कहा गया है। रात्रिभोजन करने वाला अनेक दुर्गतियों में भ्रमण करता है। हिंदु ग्रंथ में भी कहा है **''चत्वारि नरक-द्वाराणि प्रथमं रात्रिभोजनं''** अर्थात् रात्रिभोजन नरक का पहला द्वार है। रात्रिभोजन करने से मानव शरीर में कई गंभीर समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। जो लोग हैल्थ कॉन्शियस हैं वे रात्रि में भोजन न करें क्योंकि रात्रिभोजन स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ है।

4. बहुबीजा—जिस फल या शाक के बीज अलग-अलग नहीं हों अपितु संकुल बना हुआ हो वह बहुबीजा की श्रेणी में आते हैं। क्योंकि उनमें जीवोत्पत्ति अधिक होती है अतः अभक्ष्य है।

5. बैंगन—उन्माद, विकृत व बहुबीजा होने के कारण यह अभक्ष्य है।

6. संधान—कैरी, नींबू आदि में मसाला-तेल आदि डालकर उन्हें बहुत दिनों तक रखा जाता है फिर खाया जाता है। उसमें असंख्यात जीवों की उत्पत्ति हो जाती है अतः यह भी अभक्ष्य है। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिक अचार खाने वालों को गैस्ट्रिक कैंसर होने का खतरा रहता है और ग्रासनली के कैंसर होने का तथ्य भी सामने आया है। हार्ट व लीवर पर यह अपना कुप्रभाव छोड़ता है। अचार बनाने के लगभग 24 घंटे बाद अभक्ष्य हो जाता है। उसमें कई त्रस जीव पड़ जाते हैं। कई बार तो फफूंद भी उसमें देखी जाती है। यह त्रस जीवों की उत्पत्ति में आधार बनती है। अतः हर प्रकार से अचार अभक्ष्य है।

7. बड़—बड़ वृक्ष के फल चमकीले लाल या कभी पीले होते हैं। इन फलों में बहुत त्रस जीव होने से सदा त्याज्य हैं।

8. पीपल–पीपल के वृक्ष पर लगे फल भी अत्यधिक त्रस जीव युक्त होते हैं अत: अभक्ष्य हैं।

9. ऊमर–यह गूलर भी कहलाता है। इसमें भी त्रस जीवों की अधिकता होने से यह अभक्ष्य है।

10. कठूमर–कुछ लोग इसे अंजीर भी कहते हैं जो आज ड्राइ फ्रूट्स के साथ प्रचलन में है। अंजीर का फल जब पक जाता है उसमें अंजीर का मादा ततैया

असंख्यातों अंडे देता है। जिसमें से नये नर–मादा पैदा हो जाते हैं। जब मादा बड़ी हो जाती है तब वह उड़कर अन्य फलों को अपना घर बनाती है और नर ततैये अण्डों सहित उसी में रह जाते हैं। इस तरह अंजीर असंख्यात चार इंद्रिय जीवों का घर है, जो माँस का पिण्ड है।

11. पाकर–बरगद के समान ही इसका वृक्ष कहा जाता है। दृष्टिगोचर अनेक त्रस जीवों से संयुक्त होने के कारण यह अभक्ष्य है।

12. कंदमूल–जमीन के अंदर पैदा होने वाले आलू, मूली, गाजर, अदरक, प्याज, लहसुन, शकरकंदी आदि में अनंत जीव होते हैं अतः ये ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। आलू आदि के विषय में बताया गया कि एक सुई की नोंक के स्थान पर अनंत जीव होते हैं तब उस संपूर्ण आलू में कितने जीव होंगे। मात्र स्वाद या जिह्वा लोलुपता के लिए इतने जीवों की हिंसा करना बिल्कुल उचित नहीं। अतः ये सदैव त्याज्य हैं।

13. माटी—खेत या खदान आदि की मिट्टी सदैव अभक्ष्य है। इससे परजीवी संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है, विटामिन्स आदि की कमी हो जाती है, मस्तिष्क क्षतिग्रस्त होने की संभावनाएं अत्यधिक बढ़ जाती हैं क्योंकि वह विषाक्त तत्त्वों से युक्त होती है।

14. विष—विष अर्थात् जहर। यह मनुष्य के प्राणों का हरण कर लेता है। यदि कोई जानबूझकर प्राणांत के उद्देश्य से जहर या उसके समान कीटनाशक आदि खाता है तो वह दुनिया का सबसे निकृष्ट जघन्यतम अपराध करता है। अतः प्रतिकूलता में भी कभी या किसी भी कारण से इसका भक्षण अनुचित ही है।

15. आमिष–माँस को आमिष कहा जाता है। जीव के कलेवर, अस्थि, रक्त आदि घृणित–निंदनीय अभक्ष्य हैं।

16. मधु–मधुमक्खियों का मल व निरंतर असंख्यात सम्मूर्च्छन जीवों का उत्पत्ति स्थान मधु सदैव त्याज्य है। वह स्पर्श करने योग्य भी नहीं है। मधु की एक बूँद का भक्षण करने में सात गाँव के भस्म करने से अधिक पाप लगता है।

17. मक्खन–बिलोकर मक्खन निकालने के उपरांत वह 48 मिनट तक भक्ष्य है किन्तु उसके बाद उसमें असंख्यात उस ही रंग के त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे वह माँस के पिण्ड के समान अभक्ष्य समझना चाहिए।

18. मदिरा–शराब, बीअर, वाइन इत्यादि को सड़ा–सड़ा कर भयंकर असंख्यात त्रस जीवों की उत्पत्ति कर बनाया जाता है। यह व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्णतया नष्ट कर देती है, उसे अमानवीय व पाशविक बना

देती है। विवेकीजन तो इसका कभी प्रयोग ही नहीं करते। किंतु अविवेकी सदा अविवेकी ही बने रहें ऐसा भी तो नहीं अतः बहुत देर हो, लीवरादि नष्ट हो उसके पूर्व ही उसे छोड़ दें।

19. तुच्छ फल—जिस शाक-फलादि में बीज न आए हों, जो बहुत छोटा हो, अभी पका भी नहीं वह तुच्छ फल अभक्ष्य है।

20. तुषार—अनछने जल के कारण ओस या तुषार अभक्ष्य है।

21. चलित रस—जिसका स्वाद बदल गया हो। दूध, दही, फलों के रस ताजे हों तो उनमें स्वाद रहता है किंतु कुछ समय बाद उनका स्वाद बिगड़ जाता है क्योंकि उनमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाता है अतः ऐसा स्वाद बिगडा भोजनादि भी अभक्ष्य है।

22. अजान फल–ऐसा फल जिसका स्रोत या नाम अज्ञात हो उसे कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि ये कई बार हिंसा के कारण तो होते ही हैं साथ ही जानलेवा या प्राणघातक भी सिद्ध हो सकते हैं।

ग्रंथकार ने यहाँ कहा है कि किसी भी अवस्था या प्रतिकूलता में भी आर्यजन कभी अभक्ष्य पदार्थ का सेवन न करें। ये सदैव मनुष्य को कुगतियों में भ्रमण का कारण है। जबकि अहिंसक आहार सुगति का हेतु है क्योंकि दयाशील मनुष्य अपनी भूख को मिटाने के लिए किन्हीं जीव या जीव बहुलता वाले पदार्थों का सेवन नहीं करता। दया व्यक्ति के लिए स्वर्ग-अपवर्ग का कारण है जबकि इसके विपरीत क्रूरता, निर्दयता से युक्त मानव ही जीव युक्त पदार्थों का सेवन कर सकता है। यह क्रूरता उसके लिए नरक आदि का ही कारण है।

पाँच प्रकार का अभक्ष्य भोजन

पणविहमभक्ख-अदणं, पयडि-विरुद्धं हु लोयणिंदगं च।
तस-बहुजीव-घादगं, मादग-भोयणमिणं भणिदं॥26॥

अर्थ–प्रकृति विरुद्ध, लोक निंदक, त्रसघातक, बहुजीव घातक और मादकभोजन ये निश्चय से पाँच प्रकार का अभक्ष्य भोजन कहा गया है।

Food which is contrary to nature, slanderous to people, fatal to mobile beings, lethal to many living beings and intoxicating food, these five types of food are definitely inedible.

व्याख्यान–पूर्व गाथा में ग्रंथकार ने अभक्ष्य सेवन को दुर्गति का कारण बताते हुए उसे प्रत्येक अवस्था में अग्राह्य ही कहा है। यहाँ अभक्ष्य भोजन को पाँच भागों में विभक्त किया गया है। 1. प्रकृति विरुद्ध, 2. लोकनिंदक वा अनुपसेव्य, 3. त्रसजीव घातक, 4. बहु (स्थावर) जीव घातक, 5. मादक भोजन।

''अहिंसक आहार'' इस शब्द की बहुत सूक्ष्म व्याख्या है। जहाँ अमर्यादित आटा भी अभक्ष्य की श्रेणी में आता है। हर वस्तु की अपनी मर्यादा होती है कि उसमें इतने समय तक जीवोत्पत्ति नहीं होती तत्पश्चात् उसमें जीवोत्पन्न होने लगते हैं। मर्यादा के बाहर की प्रत्येक वस्तु अभक्ष्य की श्रेणी में आती है। जैसे आटे की मर्यादा बरसात में तीन दिन, ग्रीष्मकाल में पाँच दिन और शरद में सात दिन मानी जाती है। अन्य मसाले, शक्कर आदि की मर्यादा भी शास्त्रों में कही गई है। इस मर्यादा के बाहर खाद्य पदार्थ अभक्ष्य हो जाते हैं। रात्रि में बना भोजन भी अभक्ष्य है।

यहाँ उसी अहिंसक आहार की सूक्ष्मता का व्याख्यान करते हुए ग्रंथकार पाँच प्रकार के अभक्ष्य का कथन करते हैं। उन अभक्ष्य के स्वरूप का वर्णन ग्रंथकार स्वयं आगे करेंगे।

प्रकृति विरुद्ध भोजन

पयडी इहलोयम्मि हु, होदि विभिण्णा पत्तेय-जीवस्स।

सगपयडीइ विरुद्धं, जमदणं पयडि-विरुद्धं तं॥27॥

अर्थ–इस लोक में प्रत्येक जीव की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। जो भोजन स्व प्रकृति के विरुद्ध है वह प्रकृति विरुद्ध भोजन है।

The nature of every living being is different. The food which is against one's own nature is food against nature.

व्याख्यान–प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति अलग-अलग होती है। किसी की वात प्रकृति तो किसी की पित्त, किसी की कफ किसी की मिश्र। जैसे–पित्त प्रकृति वाले को अत्यंत गर्म तासीर वाले खाद्य पदार्थ व कफ प्रकृति वाले को शीत प्रकृति वाले खाद्य पदार्थ हानिकारक होने से उनके लिए अभक्ष्य है। सरल शब्दों में कहें तो व्यक्ति के स्वास्थ्य (प्रकृति) के प्रतिकूल भोजन प्रकृति विरुद्ध या अनिष्टकारक कहलाता है, जैसे-खाँसी में दही का सेवन, बुखार में घी, हृदय रोग में तेल या अन्य चिकनाई, डाइबिटीज में मीठा, हाइ ब्लडप्रेशर में नमक इत्यादि प्रकृति विरुद्ध कहे जाते हैं।

जैसे जुकाम वाले के लिए ठंडाई, शिकंजी इत्यादि अभक्ष्य है, पित्त ज्वर रोगी के लिए उकाली आदि गर्म पदार्थ अभक्ष्य हैं, कब्ज (constipation) रोगी के लिए केलादि अभक्ष्य है, वात रोगी के लिए उड़द की दाल, चावल इत्यादि अभक्ष्य है एवं कफ रोगी के लिए खट्टे व ठंडे पदार्थ अभक्ष्य हैं क्योंकि ये सभी उनके लिए प्रकृति विरुद्ध हैं।

अभी तक आप जान ही चुके होंगे कि जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। सहस्रों वर्षों पूर्व आगम में जो तथ्य निहित हैं आज वैज्ञानिक उन्हें सिद्ध कर रहे हैं। चाहे

वह स्थावर जीवों की अवधारण हो या पृथ्वी, सूर्य, चंद्रादि ग्रहों के संबंध में। चाहे वह रात्रिभोजन त्याग, उपवास आदि के संबंध में हो चाहे जंकफूड आदि के संबंध में, चाहे द्रव्य की अविनाशिता का नियम हो या ऊर्जा संरक्षण का नियम।

अमेरिका में एक म्यूजियम में भगवान् महावीर स्वामी की तस्वीर लगी है और उस पर लिखा है ''ये दुनिया के ऐसे वैज्ञानिक हैं जिनकी आज तक कोई बात गलत सिद्ध नहीं हुई।''

अतः आगम का प्रत्येक तथ्य विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। 'जीओ और जीने दो' भगवान् श्री महावीर स्वामी का यह संदेश कहता है कि व्यक्ति स्वयं भी सुख-शांति से जीवन जिये और यही अधिकार दूसरों को भी है, उन्हें भी जीने दे। शरीर की स्थिति में मुख्य कारण भोजन भी है। अतः भोजन ऐसा लें जो आपके शारीरिक या मानसिक संतुलन को बनाए रखे, जिससे शरीर का प्रत्येक अंग सुरक्षित रहे और जो वस्तु आपके लिए हानिकारक है वह अन्य अभक्ष्य पदार्थों के समान ही त्याज्य है।

धार्मिक व विवेकीजन जिह्वा के स्वादपूर्ति हेतु स्व प्रकृति विरुद्ध भोजन न करें। यही प्रकृति विरुद्ध भोजन अभक्ष्य भोजन का प्रथम भेद है जो ज्ञानियों के द्वारा हेय है।

लोकनिंद्य पदार्थ

देहस्स सत्तधादू, उवधादू वि णियमेण मलरूवा।
ण कयावि भक्खणीया, सिट्ठेहि लोयणिंदणीया॥28॥

अर्थ–देह की सात धातु और सात उपधातु भी नियम से मलरूप होती हैं। वह शिष्टजनों के द्वारा कदापि भक्ष्य नहीं है। वह लोकनिंद्य है।

The seven dhatus (bodily tissues) and seven updhatus of the body are also faeces. That is never edible by the cultured people.

व्याख्यान–औदारिक देह में सात धातुएँ व सात उपधातुएँ होती हैं। रस, रक्त, माँस, मेदा, अस्थि, मज्जा व शुक्र ये सात धातुएँ कही जाती हैं।[1] वात, पित्त, कफ, सिरा, स्नायु, चर्म व उदराग्नि ये सप्त उपधातुएँ हैं।[2] जो धातु व उपधातुएँ अति घृणित व अपवित्र होती हैं, जिनके संस्पर्शन मात्र से पदार्थ भी अपवित्र वा घृणित हो जाते हैं ऐसे ये अपवित्र पदार्थ वा जिन भोज्य पदार्थों में ये सम्मिलित हों, वे सदैव ही अभक्ष्य हैं।

वर्तमान में कुछ अशिष्ट वा असमाजवादी तत्त्व खाद्य पदार्थों में कप, मूत्रादि मिला देते हैं, जो अत्यंत घृणित है। यह न मात्र घृणा, जीवहिंसादि का प्रसंग है अपितु शरीर पर भी इसका बहुत बुरा असर पड़ता है। इससे किडनी, लीवर, हार्ट आदि बुरी तरह प्रभावित होते हैं, रोगों से पीड़ित हो मानव कई बार समय से पूर्व अपनी देह का त्याग करने पर मजबूर हो जाता है।

1. रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजाः॥ –ध.पु.–6, पृ. 63
2. वातः पित्त तथा श्लेष्मा सिरा स्नायुश्च चर्म च।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः॥

कुछ घटनाएँ ऐसी सुनने या पढ़ने में आईं जिससे मन जुगुप्सा से भर जाता है, विश्वास भी नहीं होता कि क्या कोई ऐसा कर सकता है। किसी परिवार में जब सब लोग गंभीर रूप से बीमार होने लगे जबकि वे बाहर के भोज्य पदार्थों को भी ग्रहण नहीं करते थे तब ज्ञात हुआ कि उस घर की नौकरानी आटे में अपना urine मिलाकर सबको देती थी। कुछ ढाबे या होटल्स के विषय में भी कुछ ऐसा सुनने को मिला। ये घटनाएँ तो भारतीय संस्कृति को भी लज्जित करने वाली हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि ये हमें कैसे ज्ञात होगा कि इस प्रकार का पदार्थ कहाँ है, कहाँ नहीं? तो भैया घर से बाहर का भोजन स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता, मुख्यता से अशुद्ध ही होता है। यदि थोड़ी आसक्ति छोड़ दी जाए तो इस लोकनिंदनीय भोजन से बचा जा सकता है। जब तक स्वाद के लोभ में रहेंगे तब तक इन चीजों को ignore कर अभक्ष्य को भी ग्रहण करते रहेंगे। यदि दिन में आँखें बंद कर ली जाएँ तो रात नहीं हो जाती इसी प्रकार यदि कहा जाए कि ये packed food या restaurant food शुद्ध हैं तो कहने मात्र से शुद्ध अथवा भक्ष्य नहीं हो जाता।

यदि संस्कृति, सभ्यता, परिवार, खानदान, आचार, विचार, व्यवहार आदि की शुद्धता व सुरक्षा चाहते हैं तो लोकनिंद्य भोजन का परित्याग कर शुद्ध सात्विक भोजन ग्रहण करें।

त्रस घातक भोजन

तसजीवाणं देहा, उंबरफलाइं जीवजुदमदणं।
तसजीवजुत्तपेयं, तसघादग-भोयणं भणिदं॥29॥

अर्थ–त्रस जीवों का शरीर, उदंबर फल आदि जीवयुक्त भोजन और त्रस जीव युक्त पेय त्रस घातक भोजन कहा जाता है।

The bodies of mobile beings, udambara fruits (fruits containing thousands of mobile beings as bad fruit, figs, cluster fig, fruit of Kathumar tree & fruits of pakar tree or white figs) and drinks containing mobile beings are called food lethal to mobile beings.

व्याख्यान–त्रस जीवों का आश्रय या निवास रूप खाद्य पदार्थ स्पर्श योग्य भी नहीं है। त्रस जीवों का शरीर माँस कहा जाता है। माँस भक्षण दानवता का प्रतीक है। माँस का निरुक्त्यर्थ इस प्रकार है–**''मांसं भक्षयति प्रेत्य यस्य माँसमिहाम्यहम्''** अर्थात् जिसका माँस मैं आज खा रहा हूँ, वह मुझे परलोक में खाएगा।[1]

माँस किसी वृक्षादि से प्राप्त नहीं होता अपितु उसके लिए पशुओं को बड़े निर्दयतापूर्वक मारा जाता है। मारने के बाद भी उस माँस के प्रत्येक कण में उस जाति के असंख्यात जीव प्रत्येक समय उसमें रहते हैं, अपक्व, पक्वादि सभी अवस्थाओं में वे जीव रहते हैं। उसको छूने मात्र से ही अनेक जीव मर जाते हैं। प्रत्येक समय उसमें असंख्यात जीवों का घात होता रहता है। उसका सेवन निर्दयता, क्रूरता व कठोरतापूर्वक मानव कैसे करता है, आश्चर्य है।

कोई जिह्वालोलुपी मूढ़ कुतर्क देता है कि मरे जीव को खाने में क्या दोष है? खरीदने में क्या दोष है?

1. उमास्वामी श्रावकाचार

परिस्थिति कोई भी हो किन्तु माँस में तद्जातीय करोड़ों, असंख्यात सूक्ष्म, दृष्ट्यागोचर जीवों का सद्भाव सदैव रहता है। अतः जीव वध करने वाला, पकाने वाला, खरीदने वाला, खाने वाला, परोसने वाला सभी पाप के भागी हैं। कहा भी है–

यावंति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत।
तावद्वर्ष सहस्राणि पच्यते पशुघातकाः।। –विष्णुपुराण

पशु के शरीर में जितने रोम रहते हैं उस पशु के घात से वह पशुघातक उतने हजार वर्ष नरक में कष्ट को प्राप्त करता है। जैसे एक जीव में 100 रोम हैं तो उस पशु घातक को 100 × 1000 = 1 लाख वर्ष तक नरक में यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी। विचार करो कि एक जीव के भी घात से कितने वर्ष तक दुःख भोगना पड़ेगा। सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदि स्वामी ने वसुनंदि श्रावकाचार में कहा है–

मंसं अमेज्झ सरिसं किमिकुलभरियं दुगंधबीभच्छं।
पाएण छिवेउं जं ण तीरए तं कहं भोत्तुं।।85।।

माँस विष्टा के समान है, कृमियों के समूह से भरा हुआ है, दुर्गन्धियुक्त और बीभत्स है। जो पाँव से छूने योग्य नहीं है तो फिर वह खाने योग्य कैसे हो सकता है?

जैसे त्रस जीवों का कलेवर हर प्रकार से त्याज्य है उसी प्रकार जीव वध से उत्पन्न व जीवों से युक्त शहद भी त्याज्य है। पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में निरूपित है–

मधुशकलमपिप्रायो मधुकर हिंसात्मकं भवति लोके।
भजति मूढ़धी को यः स भवति हिंसकोऽत्यन्तम्।।69।।

स्वयमेव विगलितं यो गृह्णीयाद्वा छलेन मधुगोलात्।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रयप्राणिनां घातात्।।71।।

यदि कोई छल से अथवा मधुमक्खियों के छत्ते से स्वयं टपके हुए मधु को प्राप्त कर ले तो भी उसमें रहने वाले जन्तुओं के घात से हिंसा अवश्य होती है। लोक में मधु की प्राप्ति प्रायः मधुमक्खियों की हिंसा से होती है। जो मूढ़बुद्धि मधु का सेवन करता है वह निश्चित ही हिंसक है। वसुनंदि श्रावकाचार में भी निहित है–

दट्ठूण असणमज्झे पडियं जह मच्छियं णिट्ठिवइ।
कहं मच्छियंडयाणं णिज्जासं णिग्घिणो पिबइ॥81॥

जब भोजन की थाली में पड़ी हुई मक्खी को देखकर मनुष्य मुँह का ग्रास भी उगलकर कुल्लाकर मुख शुद्धि करता है तब फिर ऐसा कौन दुर्बुद्धि होगा जो मक्खियों के असंख्यात अंडों से निर्दयतापूर्वक बनाई गई शहद को ग्रहण करेगा।

शहद मधुमक्खियों के अंडे, बच्चे एवं माँस का निचोड़ है। शहद में हमेशा निगोदिया तथा द्वीन्द्रिय आदि सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होते रहते हैं। यदि कोई स्वयं टपकी हुई अथवा मधु के छत्तों से मक्खियाँ निकाल मधु निकालता या खाता है तो उसको भी छत्ते के आश्रित जीवों के वध का दोष लगता ही है। मधु नाना जीवों के वध से प्राप्त होता है। वह मधुमक्खियों का वमन है अतः घृणास्पद है, उसे भला कौन खाएगा?[1] मधु, मधुमक्खियों के वध से उत्पन्न होता है, माँसाकृति है, उसको अच्छे लोग कैसे खाएँगे? फूल के कोश से रस चूसकर मक्खियाँ लाती हैं और उसे छत्ते में इकट्ठा करती है। इस प्रकार उसके उच्छिष्ट (वमन) से मधु तैयार होता है। अतः धार्मिकजन उसे नहीं खाते।[2]

1. स्वयमेव विगलितं यद् गृहीतमथवा बलेन निजगोलात्।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रयप्राणिनां घातात्॥
अनेक जंतुसंघात–निघातन–समुद्भवम्।
जुगुप्सनीयं लालावत्कः स्वादयति माक्षिकम्॥
2. मक्षिका गर्भसंभूत–बालाण्डकनिपीडनात्।
जातं मधु कथं संतः सेवन्ते कललाकृति॥
एकैककुसुमक्रीडाद्रसमापीय मक्षिकाः।

कुछ लोग मधु को औषध या फेस पैक रूप में प्रयोग करते हैं तो आचार्य महाराज कहते हैं जो औषधि के रूप में भी मधु सेवन करता है वह भी तीव्र दु:ख प्राप्त करता है। यदि कोई जीवन की इच्छा से विष खाए तो क्या विष उसका जीवन नष्ट नहीं कर देता?[1] अत: सुख के इच्छुक दु:खदायी त्रस जीत विघातक शहद का सेवन नहीं करते।

बड़ (बरगद), पीपल, उंबर, कठूमर, पाकर इन पाँच वृक्षों के इन्हीं नाम वाले फल उदंबर फल कहलाते हैं, जो त्रस जीवों से युक्त होते हैं। यदि इन फलों के टुकड़े किए जाएँ तो वे त्रस जीव दिखते भी हैं, कई सारे छोटे छोटे जीव उसमें से उड़ते दिखाई देते हैं अत: ये सदैव त्याज्य हैं। कहा भी है–

उंबर - बड - पिप्पल - पिंपरीय - संधाणतरुपसूणाइं।
णिच्चं तससंसिद्धाइ ताइं परिवज्जियव्वाइं॥58॥

ऊँमर, बड़, पीपल, कठूमर और पाकर फल, अचार, वृक्षों के फूल आदि में हमेशा त्रस जीव रहते हैं अत: इनका त्याग करना चाहिए।

अथवा ऐसे खाद्य या पेय पदार्थ जिसमें त्रस जीव की उत्पत्ति हो गई हो या त्रस जीव युक्त हो जैसे–कस्टर्ड, अजीनोमोटो, जिलेटिन, साबूदाना, टाटरी, ब्रेड, पाव इत्यादि सदैव त्याज्य होते हैं। साबूदाना जमीकंद आदि को सड़ाकर उससे त्रस जीवों की उत्पत्ति कर बनाया जाता है। टाटरी जिसे नींबू का सत (फूल)–citric acid के नाम से भी जानते हैं। यह नींबू से नहीं बल्कि कई रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त होने वाला पदार्थ है जो असंख्य जीवों की हिंसा से बनता है।

यद्धमन्ति मधूच्छिष्टं तदश्नन्ति न धार्मिका:॥

1. योऽत्ति नाम मधु भेषजेच्छया सोऽपि याति लघु दु:खमुल्वणम्।
किन्न न नाशयति जीवितेच्छया भक्षितं झटिति जीवितं विषम्॥–अ.श्रा.

शक्कर बनाते समय शीरा की गंदगी बचती है, उस मीठे प्रवाही को बर्तन में ले असंख्य त्रसजीव उसमें डाले जाते हैं जिन्हें आप माइक्रोस्कोप से देख सकते हैं। क्षणभर में इनकी संख्या गुणाकार रूप बढ़ती चली जाती है। ये त्रस जीव मीठा प्रवाही खाते हैं और खट्टा प्रवाही मल बाहर निकालते हैं। 7 दिन तक ऐसे ही चलता है, फिर बाद में उन जीवों सहित उसे उबाल देते हैं, फिर छानते हैं जिसमें मरे जीवाणुओं का 8-10 कि.ग्रा. लोंदा निकलता है, जिसे थोड़े ही समय में जमीन में गाढ़ दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् उबालकर, गाढ़ाकर, मशीन से छोटे- छोटे पारदर्शी क्रिस्टल बनाए जाते हैं जिसे टाटरी या नींबू का फूल कहते हैं। सिरके आदि में इसका प्रयोग होने के कारण वह भी अभक्ष्य है।

अथवा आज बढ़ता हुआ ब्रेड, पाव आदि का प्रयोग अत्यंत हानिकारक है, जो भिखारियों द्वारा एकत्रित रोटी, सड़ा-गला खराब गेहूँ आदि से बनता है। जानवरों की चर्बी पड़े होने के कारण इसमें E.No.-471, 481, 1100, 1104 आदि पड़े होते हैं। अमेरिका सरकार का निष्कर्ष है कि 90% रोग ब्रेड जैसी चीजों को खाने से ही होते हैं। अथवा हर वो ड्रिंक या फूड जिसमें चर्बी पड़े होने के कारण E.No. डला है, त्रस घातक भोजन में आता है।

बहुजीवघातक भोजन

अगालिदं खलु णीरं, साहारण-रुक्खापक्क-सागं च।
अमज्जायिद-भोयणं, बहु-जीव-घादगं मण्णदे॥30॥

अर्थ–अनछना पानी, साधारण वनस्पति, अपक्व सब्जियाँ और अमर्यादित भोजन निश्चय ही बहुजीव घातक भोजन माना जाता है।

Unsieved water, sadharan vegetables (vegetables which have common body of many souls) unriped vegetables and amaryadita food (prepared or cooked food in which many minute organisms see the light after a certain time) are certainly considered food that is fatal to many organisms.

व्याख्यान–जिन पदार्थों के सेवन में त्रस-स्थावर सर्व बहुत जीवों का घात होता है वह बहुजीवघातक भोजन कहा जाता है। जल में सूक्ष्म त्रस जीवों का अस्तित्व अब विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है अतः प्रत्येक व्यक्ति को उन जीवों की रक्षा व अपने आरोग्य के लिए पानी छानकर पीना चाहिए। चलनी से, पतले कपड़े अथवा फटे कपड़े से पानी छानने का कोई लाभ नहीं। 36 अंगुल चौड़े, 48 अंगुल लंबे मजबूत, स्वच्छ, दुहरे, शुद्ध खद्दर के वस्त्र से जिसमें छेदादि न हों, पानी छानना चाहिए। जब इस प्रकार से छानने की विधि कही है तब नल की जाली आदि से छनता ही है ऐसी बातों का कोई स्थान नहीं है।

यहाँ तक कि जब पानी को छानकर बर्तन आदि में भर लिया तब भी 48 मिनट से अधिक होने पर उसमें जीवोत्पत्ति हो जाती है अतः उसे पुनः छानकर प्रयोग में लाना चाहिए अथवा गर्मादि कर उसकी मर्यादा को बढ़ाया भी जा सकता है। एक घटना पढ़ने में आयी थी किसी गाँव में एक लड़की जो अविवाहित थी, उसका पेट गर्भवती स्त्री की तरह वृद्धिंगत होने लगा। परिवार वालों ने उस लड़की को बहुत मारा किन्तु वह लड़की अपनी गलती न जान सकी। पूरे गाँव

में उसकी बदनामी हो गई, तरह-तरह की बातें होने लगीं, कुछ ही समय बाद उस लड़की की मृत्यु हो गई और मृत्यु के बाद उसका शरीर नीला पड़ गया। बाद में ज्ञात हुआ उसके उदर में एक साँप पल रहा था जो कुछ समय पूर्व पानी के साथ उसके पेट में चला गया था। बाद में उसके परिवारीजन आदि को बहुत दु:ख हुआ, शोक विलाप करने लगे। इस घटना को देख संपूर्ण गाँव वाले छानकर पानी पीने लगे।

अगली बात कही–साधारण वनस्पति भी अनंत जीवों का आधार होने से सदैव त्याज्य है।

बिना पका, कच्ची-पक्की सब्जी या बासी अथवा अमर्यादित भोजन भी त्याज्य है। मैथी, बथुआ आदि पत्ते वाली शाक तो विशेषकर अपक्वावस्था में नहीं खानी चाहिए क्योंकि उनमें जीव रहते हैं। अन्य शाकादि भी अपक्व होने से प्रकृति विरुद्ध हो जाते हैं, स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल हो जाते हैं अत: अग्राह्य हैं। रोटी, दाल आदि पदार्थ जो केवल अग्नि पर पकाए गए हों और पूरी-कचौड़ी आदि पदार्थ जो घी में पकाए गए हों अथवा पराठे आदि पदार्थ जो घी और अग्नि दोनों के संयोग से पकाए गए हों इन सभी पदार्थों के बासे रूप को नहीं खाना चाहिए क्योंकि उनमें सूक्ष्म व सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

बाजार में पैकेट वाले सभी खाद्य पदार्थ अभक्ष्य की श्रेणी में आते हैं। जामन से दूध को दही बनाने की प्रक्रिया में भी सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते हैं अतः वह भी अग्राह्य है। दही में शक्कर डालने पर 48 मिनट बाद वह हेय है, अग्राह्य है। इसी प्रकार मक्खन भी है क्योंकि 48 मिनट बाद बहुलता से इनमें जीवोत्पत्ति हो जाती है। खमीरादि में फारमेन्टेशन प्रॉसेस होता है जिससे असंख्यात सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति वहाँ हो जाती है अतः वह भी त्याज्य है। द्विदल, बींधा हुआ अन्नादि सर्वथा त्याज्य है।

हर खाद्य पदार्थ की मर्यादा होती है, उस मर्यादा के बाद उसमें जीवोत्पत्ति होने से उसे विवेकीजन ग्रहण नहीं करते। इस प्रकार अन्य जिस भी भोजन या खाने योग्य वस्तुओं में बहुत जीव होते हैं वह बहुजीवघातक भोजन माना जाता है।

मादक भोजन

अपक्क-चलिअ-दुग्गंध-संजुत्तमदणं कुद्दवभत्तं च।
गलिअ-फलाणं हु रसं, कलेवरजुत्तं मादगं च॥31॥

अर्थ–अपक्व भोजन, चलित रस युक्त, दुर्गंध युक्त भोजन, कोदों का भात, सड़े हुए फलों का रस और जीवों के कलेवर युक्त भोजन मादक भोजन है।

Food which is unriped, taste has been spoiled, which has foul smell, rice of kodo, millet juice of rotten fruits and food containing the bodies of living beings are all intoxicating.

व्याख्यान–जो खाद्य पदार्थ अपक्व हो या चलित हो या मादकता उत्पन्न करता हो वह सदा छोड़ने योग्य ही है। पूरी तरह से ना पका हुआ या कच्चा भोजन अपक्व कहलाता है। कच्चे भोजन को पचाने में परेशानी होती है। इसमें विटामिन व मिनरल्स की कमी हो सकती है। इससे पेट में सूजन, सिरदर्द, चक्कर आना, रैशेज, food poisoning जैसी समस्याएँ भी हो सकती हैं, यहाँ तक की यह लकवा (paralysis) का भी कारण हो सकता है। यह स्त्रियों के मासिक समस्याओं को बढ़ाने में भी सहायक है। कच्ची सब्जी आदि में कुछ हानिकारक तत्त्व भी पाए जाते हैं जैसे कच्चे आलू में सोलानीन नामक विषाक्त तत्त्व होता है, कच्चे पपीते में पाए जाने वाले पपेन कई तरह की एलर्जी पैदा कर सकते हैं। अतः जो खाद्य पदार्थ पकाकर लिए जाते हैं उन्हें अच्छी तरह पकाकर ही लेना चाहिए। आयुर्वेद के अनुसार भी अधिक मात्रा में salad भी कच्ची नहीं, पकाकर लेनी चाहिए।

"जिनका रूप, रस, गंध तथा स्पर्श चलित हुआ है, जो कुथित हुआ है अर्थात् फूई लगा हुआ है, जिसको जन्तुओं ने स्पर्श किया है ऐसा अन्न न तो देना चाहिए और न ही खाना चाहिए और न ही स्पर्श करना चाहिए।" ऐसा

भगवती आराधना की टीका में लिखित है–''**विपन्नरूपरसगन्धानि, कुथितानि पुष्पितानि। पुराणानि जन्तुसंस्पृष्टानि च न दद्यान्न खादेत् न स्पृशेञ्च।**'' अंकुरित हुआ अर्थात् सड़ा हुआ, फूई लगा हुआ या स्वाद चलित अन्न अभक्ष्य है।[1] चलित पदार्थों में अनेक त्रस जीवों की और निगोद राशि की उत्पत्ति अवश्य हो जाती है अतः बुद्धिमानों को जीव रक्षा, जीव दया के लिए चलित रस पदार्थों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।[2]

कभी-कभी तो खाद्य पदार्थों में दुर्गन्ध आने लगती है। वे दुर्गन्धित पदार्थ कभी भी ग्राह्य नहीं हैं क्योंकि उनमें अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो चुकी होती है। अथवा सड़े-गले फलों का रस व्यक्ति के अयोग्य है। फ्रूटी, आमरस आदि को कैसे बनाया जाता है आप जानते हैं, टमैटो सॉस (Tomato sauce) जिसे आप इतने स्वाद से खाते हैं, क्या उसकी निर्माण प्रक्रिया या बनाने में प्रयोग में आए पदार्थों के विषय में सोचा है? आप घर में 2-5 किलों आम लाते हैं, देखकर-शोधकर खाते हैं, उसमें भी कभी तो कुछ खराब भी निकल जाते होंगे। यहाँ तो आपने देख लिया किन्तु फैक्ट्री में जहाँ कुन्टलों आमों को मशीन में डाला जाता है वहाँ कोई देखता होगा? नहीं, अरे! कीड़े लगे, सड़े-गले ही आम मुख्यता से वहाँ होते हैं; क्योंकि जिन्हें मनुष्य नहीं खरीदते, जो खराब हो जाते हैं वे ऐसे ही स्थानों पर पहुँचते हैं।

1. सुललितपुष्पितस्वादचलितमन्नं त्यजेत्। –चा.पा./टी.
2. रूपगंधरसस्पर्शाञ्चलितं नैव भक्षयेत्। अवश्यं त्रसजीवानां निकोतानां समाश्रयात्।

एक बार एक व्यक्ति बता रहे थे कि जब सब्जी लेने मण्डी गए तो एक ओर बहुत भारी दुर्गंध आ रही थी, उन्होंने देखा तो वहाँ सड़े-गले टमाटरों का ढेर पड़ा था। उन्होंने यूँ ही कह दिया भाई! किसानों का, आप लोगों का कितना नुकसान होता है, क्विंटलों टमाटरादि तो यूँ ही सड़ जाते हैं। वह सब्जी वाला हँसता हुआ बोला अरे! कोई नुकसान नहीं होता, ये सब तो बड़ी-बड़ी कंपनी वालों के यहाँ चला जाता है, वे इसी को माँगते हैं।

महानुभाव! कब तक आँखें बंद कर सब जानते हुए भी मात्र जिह्वा लोलुपता के कारण इन अभक्ष्य पदार्थों को लेते रहोगे। गिरती हुई बिल्डिंग के नीचे आँख बंद करके खड़े हो जाने से वह गिरना बंद नहीं हो जाती। ऐसे ही आपके अनसुने करने या ध्यान नहीं देने से अभक्ष्य भक्ष्य नहीं हो जाता। अतः प्रत्येक वस्तु को जान-परखकर ही ग्रहण करें।

कोदों का भात, त्रस जीवों से युक्त मदिरा या विस्की, शैंपेन, बीअर, गांजा, भांग, चरस, तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गुटखा, चाय, कॉफी आदि सभी नशीले पदार्थ हैं। शराब की एक बूँद से पैदा होने वाले जीव यदि बाहर फैलें तो समस्त संसार उससे भर जाए।[1] उसके पीने से ज्ञान तंतु शिथिल हो जाते हैं, शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मद्यपान करने वालों का प्रायः अकाल मरण होता है, समय से पूर्व ही ऐसे व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

1. अमितगति श्रावकाचार, 5/2-22

'मेडिकल एक्टेटिल मोर्टलरी इन्वेस्टीगेशन' ने अन्वेषण कर बताया कि शराब न पीने वाले लोग, शराब पीने वालों की अपेक्षा पचास वर्ष अधिक जीवन जीते हैं।

वर्तमान में कितने उदाहरण देखने को मिलते हैं। युवक 30-35-45 वर्ष में अपने परिवार को छोड़कर चल देता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तब सब लोग कहते हैं "बहुत पीता था, अगर मान जाता तो ऐसा नहीं होता।"

कैलिफोर्निया के डॉ. एमिल ब्रोगन ने अपनी पुस्तक 'टॉक्सोलोजी ऑफ एल्कोहल' में लिखा है कि किसी अन्य जहर से शारीरिक रोग व मानसिक रोग नहीं पनपते और इतनी मौतें भी नहीं होतीं जितनी कि शराब से होती हैं। अमेरिकन जज श्री एडमण्ड डिलैन्टी ने कहा "नशाखोरी ने मुर्दों का शहर बसाने में आग, अकाल, महामारी व तलवार से अधिक भूमिका निभाई है।"

आंकड़ों से ज्ञात हुआ कि हर दस मरीज में लगभग 8 मरीज मद्यपान, स्मैक आदि नशे के कारण बनते हैं। भानुप्रताप शुक्लाजी ने बताया कि शराब पीने के कारण बिगड़ने वाले स्वास्थ्य को ठीक कराने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं पर हरियाणा सरकार को शराब से प्राप्त राजस्व का 8 गुने से अधिक बोझ उठाना पड़ता है। मारपीट आदि अपराधों में व्यय राशि शराब से प्राप्त राजस्व का 4 गुने से अधिक का अनुमान है।

इसके अतिरिक्त 35-40% एक्सीडेंट मद्यपान के कारण ही होते हैं। 60% यौन अपराध, 65% चोरी, 80% मारपीट व 90% तेजधार वाले अस्त्रों से प्रहार शराब के कारण ही होते हैं। सरकार को यह भ्रम है कि उसे इस उद्योग से अधिक लाभ होता है, जबकि आकड़ों के अनुसार उससे 12-13 गुनी अधिक हानि होती है। देश में रामराज्य की स्थापना, परिवारों को आबाद, समाज को खुशहाल व लोगों को स्वस्थता हेतु सरकार का पहला सख्त कदम **'मद्यपान निषेध'** होना चाहिए।

मद्यपान से व्यक्ति में कई दोष उत्पन्न हो जाते हैं। वह स्वयं का, परिवार, समाज, देश व राष्ट्र का शत्रु ही समझा जाना चाहिए, क्योंकि नशे में उन्मत्त मनुष्य लोकमर्यादा को लांघ देता है, उसकी दृष्टि भी विश्वसनीय नहीं रहती। मद्यपान से मनुष्य उन्मत्त होकर निंदनीय कर्म करता है जिससे इस लोक तथा परलोक में अनंत दुःखों का अनुभव करता है।[1]

तरस आता है मानव की बुद्धि पर, जो शराब आदि का नशाकर अपने प्रियजनों के लिए कष्ट का कारण बनता है। परिवार को जो खुशियाँ उसके माध्यम से मिल सकती थीं वे नहीं मिल पातीं। स्वयं तो नशे की लत में हर श्वांस- श्वांस पर मरण की ओर बढ़ रहा है और उसकी पत्नी, बहन, छोटे बच्चे आदि मुश्किल से जैसे-तैसे अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बचाते हुए जी रहे हैं। वह नशे का आदी व्यक्ति निंदनीय है जो सब धर्म-कर्म, सुख-शान्ति भूलकर मात्र रोगों को आमंत्रण देने में रत है।

एक बार एक व्यक्ति गुरुजी के पास आया, बोला ''महाराज जी! मुझे बचा लो, मेरा लीवर डैमेज सा हो गया। सबने समझाया था नशा छोड़ दो, तब तो मैंने नहीं छोड़ा किंतु अभी तो मेरे बच्चे छोटे-छोटे हैं, बस एक बार बचा लो फिर कभी मादक पदार्थ छूऊँगा भी नहीं।'' संभवतः ये शब्द उस एक के नहीं, कई लोगों के होते होंगे। किन्तु यदि व्यक्ति प्रारंभ में ही समझ जाए तो इन सबकी नौबत ही न आए।

कई लोग कहते हैं कि हम छोड़ना तो चाहते हैं पर छूटती नहीं। उन्हें हम बता दें कि व्यक्ति जो सोच ले, उसमें उसे करने की पूर्ण सामर्थ्य होती है। आज-कल न सोचें यदि नशा करते हैं तो तुरंत छोड़ दें। **'शुभस्य शीघ्रं'** अपनी आत्मा पर

1. मज्जेण णरो अवसो, कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं।
इहलोए परलोए अणुहवइ अणंतयं दुक्खं।।70।। -वसु.श्रा.

दया करें, नरक की यातनाओं से उसे बचा लें। अपने शरीर, अपने परिवार पर दया करें, जो दुःख वे आपके कारण भोग रहे हैं उन्हें उनसे मुक्त करा लें। नशा करने वाला, मद्यपानादि करने वाला दीर्घकाल तक नरकादि के दुःख भोगता है। मद्यपान व्यक्ति का सब सुख-समृद्धि नष्ट कर देता है।

शरीर का विद्रूप होना, रोगों का उत्पन्न होना, धर्म, अर्थ, काम का नाशक, तिरस्कार, अक्षमता, द्वेष, स्मृति व ज्ञान भ्रंश, विवेक विनाश, सत्संगति विनाश, वचन परुषता, बुरी संगति, कुलहीनता, शक्तिह्रास इत्यादि दुर्गुण मद्यपान से उत्पन्न होते हैं। शराब के हानिकारक होने के कारण ही जैन सम्राट कुमारपाल ने अपने राज्य में मदिरापान पर प्रतिबंध लगाया था।

एक बार कालीदास जी यूँ ही चले जा रहे थे। रास्ते में एक महिला सिर पर घड़ा रखे हुए मिली, उन्होंने पूछा कि तेरे इस घड़े में क्या है? तब उस महिला ने 2-3 बार पूछे जाने पर कालीदास जी को बताने से मना कर दिया, किन्तु बार-बार पूछे जाने पर उस महिला ने सीधा नाम ना बताकर, घड़े में रखे पदार्थ के गुणों का व्याख्यान करते हुए कहा कि-

मदः प्रमादः कलहश्च चिंता बुद्धिक्षयो धर्मविपर्ययश्च।
सुखस्य कंथा नरकस्य पंथा अष्टावनर्थाः करके वसन्ति॥

मद, प्रमाद (आलस्य), कलह (लड़ाई-झगड़ा), चिंता उत्पन्न कराने वाला, बुद्धि नष्ट करने वाला, धर्म से विपरीत करने वाला, समस्त सुख का नाश करने वाला और नरक का पथ देने वाला पदार्थ इस करके अर्थात् घड़े में भरा है। कालीदास विद्वान् थे अतः समझ गए कि इन सभी आठ अनर्थों को करने वाला यह पदार्थ मद्य अर्थात् शराब ही है अन्य कोई नहीं।

यदि आप चाहते हैं कि आपके बच्चे इस गलत रास्ते पर आगे न बढ़ें तो वक्त रहते आप अपना रास्ता बदल लें अन्यथा अपने बच्चों की बिगड़ी हुई जिन्दगी के जिम्मेदार आप स्वयं होंगे। यदि गुटखा, तंबाकू आदि भी आदत में हो तो ऐसी सभी गंदी चीजों को अपनी जिंदगी से बाहर कर दें क्योंकि विष्टा या मल कोई जेब में लेकर नहीं घूमता। इसी प्रकार अफीम, गांजा आदि जो भी नशीले पदार्थ हैं उन्हें छोड़ दें।

शराब के साथ अन्य मादक पदार्थों का भी कुप्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है, वे सर्वथा ही सेवन के अयोग्य हैं अतः अभक्ष्य के पाँच भेदों में यह पाँचवां भेद 'मादक भोजन' कहा गया है।

प्रकृति विरुद्धादि भोजन हेय

पणविहं भोयणमिणं, सज्जण-पुरिसेहिं परिहरिदव्वा।
दुहहेदुं भोयणं च, अप्पहिदाय णेव भक्खेज्ज॥32॥

अर्थ–सज्जनों के द्वारा सदा यह पंचविध भोजन छोड़ देना चाहिए। दु:ख का हेतु यह भोजन आत्महित के लिए नहीं करना चाहिए।

Noble persons should give up these five types of food. This food which is the cause of sadness should not be taken for self-benefit.

व्याख्यान–ग्रंथकार ने पाँच प्रकार के अभक्ष्यों का स्वरूप पूर्व पाँच गाथाओं के माध्यम से कहा। जिस भोजन में स्थावर-त्रसादि जीवों की उत्पत्ति हो, असंख्यात जीवों का जो स्वयं आधार हो, आर्यजन या सत्पुरुषों के लिए अयोग्य हो, शरीर में अनेक रोगों का कारण हो, मानसिक संतुलन को बिगाड़ने वाला हो, डिप्रेशन आदि का कारण हो, अशुभ पापबंध का कारण हो, कुगतियों में भ्रमण कराने वाला हो, ऐसा भोजन विवेकीजन या सज्जनों के द्वारा सदैव ही हेय है।

मद्य, माँस, मधु, जमीकंद आदि जीव युक्त पदार्थों के सेवन के फल का आचार्यों ने जो वर्णन शास्त्रों में किया है वह बहुत भयंकर है, दु:खों से परिपूर्ण है। मात्र जिह्वा या मन पर नियंत्रण न रखने के कारण व्यक्ति घोर दु:ख सहने को मजबूर हो जाता है। यहाँ असंख्यात, अनंत जीवों पर उसे दया नहीं आती तो ''जैसी करनी वैसी भरनी'' के अनुसार नरक वा तिर्यंच गति में जब दु:ख सहते हुए उसकी चीखें निकलती हैं, उसे काटा या पेला जाता है तब उसकी भी कोई नहीं सुनता।

दया का परिणाम दया और अत्याचार, क्रूरता का परिणाम भी अत्याचार व क्रूरता ही होता है। अभक्ष्यपदार्थ किस प्रकार इस भव में दु:खदायी होते हैं ये तो आपने जाना ही किन्तु परभव में भी ये पाप मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते। कष्ट या दु:ख सहते समय जीव चिल्ला-चिल्लाकर कहता है कि एक बार यहाँ से छूट जाऊँ पुनः अभक्ष्य भक्षण नहीं करूँगा किन्तु पुनः संसार में मोहित होकर उन्हीं कार्यों को करने में तत्पर हो जाता है। जब व्यक्ति जीने के लिए खाता है तो अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण क्यों? जब आकार में मानव है तो व्यवहार में दानवता क्यों? आत्म हितार्थ अहिंसक आहार ही पूर्णतया मानवीय आहार है।

अतः करुणा के सागर आचार्य महाराज दोनों भवों के दु:खों से मुक्ति के लिए सज्जनों को अभक्ष्य त्याग के लिए कहते हुए अहिंसक आहार की प्रेरणा देते हैं।

जीवों की रक्षा-धर्म

उत्तं पणविहमदणं, ण कया वि खादेज्जप्पसंतीए।
विस्ससंति-कारणं वि, जीवरक्खणं महाधम्मो॥33॥

अर्थ–आत्मशान्ति पाने के लिए पहले कहे गए पाँच प्रकार के भोजन कभी भी नहीं खाना चाहिए। विश्वशांति के कारण जीवों की रक्षा करना भी महाधर्म है।

One should never have the five types of food mentioned earlier to attain inner peace. To protect living beings for the sake of world peace is also a supreme religion.

व्याख्यान–इंद्रिय-संयम के ज्ञान के अभाव में मनुष्य में भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नष्ट हो जाता है पुनः मद्य, माँसादि के सेवन से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, हित व अहित का ज्ञान नहीं रहता। इससे मन अपवित्र, मलिन हो जाता है। मन की अपवित्रता, अपवित्र-खोटे विचारों को ही जन्म देती है। खोटे विचार खोटे व्यक्ति का ही उत्पादक हैं। एक दुर्जन के विचार सैकड़ों व्यक्ति के मस्तिष्कादि को प्रभावित करते हैं, जो समाज व देश में अपराधों को जन्म देता है।

संयम जीवन रूपी गाड़ी का ब्रेक है। यदि बिना ब्रेक की गाड़ी चलायी तो दुर्घटना होगी। दुर्घटनाग्रस्त शरीर का इलाज तो डॉक्टर कर भी देते हैं किन्तु संयमरूपी ब्रेक से रहित होने के कारण मन दुर्घटनाग्रस्त अर्थात् मलिन-अपवित्र होने पर कोई चिकित्सक उसका इलाज नहीं कर सकते। मन को दुर्घटना से बचाने के लिए, पवित्र बनाने के लिए संयम ही इलाज है।

आत्मानुशासन में कहा है कि मीठा समझकर हम भोजन करते हैं किन्तु वह अधिक मीठा हमें खा जाता है, रोगग्रस्त कर देता है। अर्थात् असंयम हमें पतन की ओर ढकेल देता है। अतः मन पर संयम का अंकुश आवश्यक है।

एक अमेरिकी युवक हेनरी फोर्ड एक बार हीरे जवाहरात लेकर दूसरे शहर गया। मार्ग में ट्रेन खराब हो जाने या अन्य किसी कारण से वहाँ रुक गई। सब यात्री भी रुक गए। टी.टी. ने सबसे टिकट माँगे। हेनरी फोर्ड से उसका टिकट माँगा तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया। टी.टी. ने उसे पुलिस के हवाले कर दिया। वह रातभर भूखा-प्यासा कक्ष में बंद रहा। प्रातः उसे मजिस्ट्रेट के पास ले जाया गया। मजिस्ट्रेट ने पूछा तो उसने अपना टिकट तुरंत मजिस्ट्रेट को दे दिया। मजिस्ट्रेट ने पूछा जब तुम्हारे पास टिकट था तो तुमने टी.टी. को टिकट क्यों नहीं दिखाया। तब हेनरी फोर्ड ने उत्तर दिया कि मेरे पास कीमती माल है, इसकी सुरक्षा आवश्यक थी, इसके साथ-साथ मेरी जान का भी खतरा था, इसके लिए आसपास सबसे सुरक्षित स्थान पुलिस स्टेशन ही था। मैंने एक दिन-रात यहाँ रुककर, भूखा-प्यासा रहकर जान-माल की रक्षा की।

जिस प्रकार हेनरी ने स्वयं को नियंत्रित कर अपने हीरे जवाहरात की रक्षा की उसी प्रकार आत्मा रूपी रत्न की रक्षा के लिए संयम, मन पर नियंत्रण आवश्यक है। यदि भक्ष्याभक्ष्य का विचार न रख शराब आदि व्यसनों में रत रहे तो नरकगति में पहुँचोगे।

जब हम स्वयं की हिंसा नहीं चाहते तो दूसरों की कैसे करना चाहते हैं? जब हम सुरक्षित रहना चाहते हैं तो दूसरों को भी सुरक्षित रहने दो, दूसरों की भी सुरक्षा करो। कई बार तो जो लोग स्वयं त्याग करने में असमर्थ होते हैं वे दूसरों के त्याग की निंदा करते हैं, उन्हें डिस्ट्रैक्ट करते हैं। अपनी कमजोरी छिपाने के लिए कम से कम उनके त्याग की निंदा मत कीजिए और त्याग करने वाले भी अपने सिद्धांतों व विश्वास पर अटल रहें। जिसका मन उज्ज्वल होगा, पवित्र होगा उसी का जीवन श्रेष्ठ होगा। **''उन्नतं मानसं यस्य, भाग्यं तस्य समुन्नतम्''** चाहे कुछ भी हो जाए अपने आदर्शों को, संस्कृति को, सिद्धान्तों को न छोड़े।

बहुत प्रयत्नों से सात पीढ़ियों तक परिश्रम के साथ घराने की प्रतिष्ठा व नाम ऊँचा किया जाता है, किंतु उसको नष्ट करने में सात मिनट भी नहीं लगते। मद्य, माँसादि दुर्व्यसनों में पड़कर उसी घराने के उत्तराधिकारी सात मिनट में उसकी प्रतिष्ठा खत्म कर देते हैं।

ग्रंथकार पाँच प्रकार के अभक्ष्यों से दूर रहने का यहाँ निर्देश दे रहे हैं जिससे मानव आत्मशांति प्राप्त कर सके। अमानवीय व्यवहार से कोई भी मानव आत्मशांति को प्राप्त नहीं कर सकता। जब एक प्राणी की 'आह' व्यक्ति के जीवन को पतन के गर्त में डाल सकती है तब सैकड़ों प्राणियों के मन से निकली आह उसकी शान्ति में कारण कैसे बन सकती है। Give & take Rule के अनुसार जैसा दोगे, वैसा पाओगे, शांति प्रदान करने वालों को ही शांति की प्राप्ति संभव है। कहा भी है–

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सन्तु सर्वे निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

संपूर्ण विश्व के अखिल जीव-जगत् सुखी रहें। संपूर्ण जीव स्वस्थ निरोगी रहें, सब जीव शुभ, मंगल, कुशल, शान्तिमय जीवन यापन करें, कोई भी कभी भी किसी प्रकार का दुःख अनुभव न करें।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः।
दोषाप्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवंतु लोकः॥

संपूर्ण विश्व मंगलमय पवित्र हो, जीवगण दूसरों के उपकार में रत रहें। द्वेष, ईर्ष्या, कलह, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, रोगमारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि दोष विलय को प्राप्त होवें। सदा सर्वदा सर्वत्र सर्व प्रकार के सुख सर्व जीव जगत् अनुभव करें।

यह है हमारे देश की संस्कृति जहाँ सब जीवों की रक्षा की बात कही जाती है। उन्हें मारना और उससे भी निकृष्ट मारकर खाना, यह न संस्कृति है, न संस्कार,

न धर्म। प्रत्येक जैन श्रावक नित्य प्रति पूजा करने के पश्चात् भावना भाता है कि सर्व जीव सुखी रहें, वह कहता है–

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्यतपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांति भगवाञ्जिनेंद्रः॥

हे भगवन् जिनेन्द्र! धर्म के उपासक, उपासकों के रक्षक, सामान्य मुनि, विशेष तपस्वी, देश, राष्ट्र, ग्राम, नगर, राजादि सबको सुख–शांति प्रदान करें।

जिसमें किसी को शारीरिक, मानसिक कष्ट न हो वही रामराज्य है, यही सर्वोदय तीर्थ है। आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी ने जैन शासन को 'सर्वोदय तीर्थ' कहा है–

''सर्वापदामन्तकरं निरन्त सर्वोदयतीर्थमिदं तदैव''

जिस धर्म के माध्यम से सर्व आपद शान्त हो जाएँ वह सर्वोदय तीर्थ है और हे भगवन् महावीरस्वामी! वह आपका ही धर्म है। दया, अहिंसा, करुणा आदि सर्वोदय है। जहाँ ये नहीं वहाँ शान्ति भी नहीं हो सकती।

कौटिल्य ने कहा–''उस धर्म को छोड़ दीजिए जहाँ दया नहीं, अनुशासन नहीं।'' जहाँ दया है, वहीं धर्म है। गुरुनानक ने लिखा है–

जो औरन के सिर काटे अपना रहे कटाय।
धीरे-धीरे नानका बदला कहीं न जाए॥

यदि दूसरों को कष्ट देना चाहते हो तो स्वयं को कष्ट मिलेगा ही।

यदि शांति चाहिए तो अहिंसावान् बनो। अहिंसा, जीवदया ही महाधर्म है, उसी से आत्मा में शांति हो सकती है और राष्ट्र में भी शांति उसी से संभव है। अहिंसा प्राणिमात्र का आत्मधर्म भी है। यह वस्तुस्वरूप होने से सभी को प्रिय है। आचार्य श्री वादीभसिंह स्वामी ने स्याद्वादसिद्धि में कहा भी है–

कुतः सर्वांग सौम्येऽपि केनचित् कश्चिद् ह्यते।
मह्यते कोऽपि पक्ष्यादिर्भक्षकैरपि रक्षितः॥1/5॥

क्या कारण है कि सर्वांग सुंदर होने पर भी कोई किसी के द्वारा ताड़न-वध-बन्धनादि को प्राप्त होता है और कोई शुक-सारिकादि पक्षी हिंसक व्यक्तियों से भी रक्षित एवं बड़े प्रेम से पाले-पोसे जाते हैं अर्थात् मानव सर्वथा हिंसक नहीं है। पशुवध जीवी व्याध और कसाई भी अपने परिवार की हिंसा नहीं करते। वे गृह-पशुओं वा पालित पशुओं को भी नहीं मारते। अतएव यह सहज सिद्ध है कि अहिंसा का बीज उनमें मूल रूप में विद्यमान है। **'यथा व्याघ्री हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभिर्न न पीडयेत्'** सिंही हिंसक होकर भी अपने शिशु-सिंहों को मुँह से उठाकर ले जाते समय दंष्ट्रा से पीड़ा नहीं पहुँचाती।

सब मानवों से, संपूर्ण कीट-पतंगे, पशु आदि से, विश्व के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अणु महत् परमाणु पुद्गलों से असीम करुणामय अहिंसक व्यवहार करना अहिंसाधर्म का आरंभिक पाठ है। तीर्थंकरों व उनके अनुयायियों ने अहिंसा को चारित्र रूप देकर मानवजाति का महान् उपकार किया है। अहिंसामूलक आचारवान् ऋषि, मुनि, संतों ने मानव को हिंसक पशुवृत्ति से ऊपर उठाकर मानवता की दयामयी मणिशिला पर प्रतिष्ठित किया है। **''अहिंसैव जगन्माता''** अहिंसा, माँ की गोद के समान समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाली है। यह अहिंसा, दया की मधुरता ही बैरभाव की कड़वाहट को मिटाने वाली होती है, और बैरभाव रहित हृदय में ही शान्ति की शीतल नदी प्रवाहित होती है। शान्ति की इस जलधार में अवगाहन करने वाला विश्व ही परमसुख का अनुभव कर सकता है।

राष्ट्र को कल-कारखानों, श्रेष्ठ राजमार्ग, गगनचुंबी इमारत या भड़कीले वस्त्रों से निर्माण पथ पर अग्रसर नहीं माना जाता है, उसका मूलधन तो श्रेष्ठ मानव है। और जिस मानव में जीव रक्षा का भाव है, दया-अहिंसा-करुणा का भाव है वही श्रेष्ठ व दैवीय है। आज विश्वत्राण के लिए जैन धर्म का

उपदेश सर्वाधिक सशक्त है। इंदौर के दार्शनिक सत्यदेव विद्यालंकार ने जैनों को चेतावनी देते हुए कहा भी है–**''जैनों! सावधान हो जाओ। मात्र एक जैनधर्म ही ऐसा धर्म है जिसमें राष्ट्रधर्म बनने की योग्यता है।''**

वीतराग परमदेव को अपना मार्गदर्शक स्वीकारने से युद्ध, हिंसा, भय, परपीड़न आदि विश्व को संत्रस्त करने वाली आकुलताओं का प्रशमन सहज हो जाएगा। भगवान् महावीर का लगभग ढाई हजार वर्ष पुराना वह स्वर, जिसका समाघोष उन्होंने विश्व-मानव के लिए किया था, आज भी उतना ही प्राणवन्त है जितना उनके अपने समय में था।

वह समाघोष है **''मित्ती मे सव्वभूदेसु''** मैं संपूर्ण विश्व का मित्र हूँ, मेरा कोई बैरी नहीं है। यह घोषणा पुनः जन-जन के हृदय-पटल पर उत्कीर्ण करने योग्य है। स्मरण रखिए, यह वीरशासन की वीर-वाणी है, महावीर स्वामी का सिंहनाद है; परन्तु नितान्त उत्पीड़न-रहित तथा शान्ति प्रदान करने वाला।

व्यक्ति और संसार दोनों की शान्ति के लिए कुलनिर्माता, सद्गुणी लोगों की बहुलता आवश्यक है।

संपूर्ण विश्व में शांति की स्थापना के लिए अहिंसा धर्म ही समर्थ है और जीवरक्षा, अहिंसा ही महाधर्म है। जैसे जड़ के बिना वृक्ष की स्थिति संभव नहीं उसी प्रकार जीव-रक्षा, अहिंसा, दया के बिना धर्म रूपी वृक्ष की स्थिति भी संभव नहीं है। अतः जीव रक्षा रूप धर्म पालन करते हुए विवेकीजन स्व-पर हित के लिए अभक्ष्य का परित्याग कर सुखी होवें।

आत्मशुद्धि का हेतु

होज्ज चउविहा सुद्धी, भोयण-कज्जेसु सवर-संतीए।
सगसुद्धीए हेदू, दव्व-खेत्त-काल-भावाणं॥34॥

अर्थ–स्व-पर शान्ति के लिए भोजन (निर्माणादि) कार्यों में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार प्रकार की शुद्धि होनी चाहिए, यह आत्मशुद्धि का हेतु है।

There should be four types of purity i.e. substance, area, time and feelings, at the time of having or preparing food for the peace of self and others. This is the cause of purification of soul.

व्याख्यान–मानव के लिए सात्विक भोजन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। भोजन में सात्विकता मात्र उसके सात्विक होने पर ही नहीं आती अपितु उसे रखने, बनाने, खाने का तरीका, किस समय खा रहे हैं इत्यादि सभी घटक भोजन को सात्विक बनाते हैं। भोजन की सात्विकता शरीर को स्वस्थ व मन को सात्विक व शांत बनाती है। जैसा भोजन होता है वैसा व्यक्ति का परिणाम होता है। परिणामों की विशुद्धि बहुत हद तक भोजन पर निर्भर करती है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मानव को सर्वथा प्रभावित करते हैं। जैसे-व्यक्ति यदि माला देखे तो उसे जप करने का मन कर जाता है, पुस्तक हो तो पढ़ने का, मोबाइल हो तो उसे ही प्रयोग करने का इत्यादि। जैसा द्रव्य होता है मनुष्य का मन वैसा ही बन जाता है। कभी किसी वस्तु-व्यक्ति को देख प्रेम उत्पन्न होता है तो किसी को देख क्रोध आता है।

इसी प्रकार क्षेत्र भी व्यक्ति के परिणामों को प्रभावित करता है। घर पर हों तो अलग प्रकार के भाव होते हैं, दुकान पर हों तो दुकानदारी रूप परिणाम, मंदिर में हो तो शांत परिणाम, तीर्थक्षेत्र में हों तो भक्ति आदि रूप परिणाम होते हैं। काल

का भी प्रभाव पड़ता है। सुबह-सुबह मन शांत, ताजगीपूर्ण होता है तब परिणाम अलग होते हैं, रात्रि में भोगी के भोगरूप परिणाम या दिनादि में उस अनुरूप परिणाम होते हैं। या विवाहादि के काल में उसी प्रकार के भाव होते हैं, चिंतन या विचार होते हैं।

आपने बड़े-बुजुर्गों से सुना होगा, यदि क्रोध आए तो दूसरे रूम में चले जाओ, कहीं घूम आओ अर्थात् क्षेत्र परिवर्तन से मन प्रभावित होता ही है। या कई बार कहते हैं कि अभी जवाब मत दो, बाद में दे देना, निर्णय बाद में ले लेना। अथवा वर्षाकाल, शीतकाल, ग्रीष्मकालादि में भी परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं।

भाव भी व्यक्ति या परिस्थिति को प्रभावित करते हैं। एक बार राजा वन भ्रमण के लिए निकले। सुबह का समय था, मौसम बहुत अच्छा था। मंत्री से चर्चा करते-करते वे वन में बहुत अन्दर तक चले गए। जब सूरज तेज हुआ तो उन्होंने कहा कि बातों में ज्ञात ही नहीं हुआ, हम कितनी दूर तक चले आए, अब महल की ओर लौटना चाहिए। लौटते समय वे उस घने जंगल में भटक गए। सूरज ऊपर चढ़ चुका था। सूर्य की तीव्र किरणों ने राजा के कंठ को अवरुद्ध सा कर दिया था। बहुत खोजने पर भी कहीं जल नजर नहीं आ रहा था। राजा के प्राण मानो कंठ में ही आ गए थे।

तभी सामने एक झोपड़ी दिखाई दी। वे दोनों शीघ्रता से उस ओर बढ़े। वहाँ एक वृद्धा अम्मा रहती थीं। उस कुटिया के पास जाकर वे जोर से बोले—माँ हम भटक गए हैं, बहुत जोर से प्यास लगी है। उनकी करुण पुकार सुनकर वृद्धा ने उन्हें बैठाया और अपने बाग से अनार लाकर उसका रस निकाला व दोनों को दे दिया। अनार का रस अत्यंत स्वादिष्ट, मीठा, ठंडा व ताजा था। भूख-प्यास व्यक्ति के स्वाद को और बढ़ा देती है। जैसे ही वह राजा के कंठ में गया राजा बड़ा तृप्त हुआ। उस राजा ने वृद्धा माँ से पूछा "माँ! इसे कहाँ से लायी हो?" वृद्धा ने कहा "राजन्! मेरी कुटिया के पीछे अनार का बाग है, बस एक अनार जल्दी

से ले आयी।'' ''अरे! इतना सारा रस क्या एक अनार का है?'' राजा ने आश्चर्य से पूछा। वृद्धा ने कहा– सब प्रभु की कृपा है।

राजा व मंत्री महल लौट आए। राजा ने मंत्री से कहा मंत्रिवर! यदि एक अनार में इतना रस निकलता है तो अब तो उस पर अधिक कर लगा देना चाहिए और ऐसा कह टैक्स लगाने का आदेश दे दिया, क्योंकि राजा के भाव बदल गए थे, लोभ आ गया था।

कुछ समय पश्चात् राजा उसी वन में गया व वृद्धा के पास पहुँचा। राजा ने कहा माँ! जो रस पहले पिलाया था, वो रस पिलाओ। ऐसा कहने पर वह अनार का रस लेकर आयी। किन्तु इस बार राजा ने देखा कि वृद्धा ने एक अनार में जितना रस पहले निकाला था आज पाँच-छह अनार में भी उतना रस नहीं निकला है। राजा ने वह पिया किन्तु वह पहले जैसा मीठा भी नहीं था। राजा ने इसका कारण पूछा। वृद्धा करुण स्वर में बोली बेटा! जबसे राजा ने इस पर tax लगाया है तबसे इस पेड़ ने रस व फल देना कम कर दिए हैं। लगता है राजा की नीयत खराब हो गयी है, उसका लोभ जागृत हो गया है। वृद्धा यह नहीं जानती थी कि यही राजा है। राजा सुनता रहा, उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि मेरे भावों का प्रभाव पेड़-पौधों पर भी पड़ता है। पुनः राजा ने क्षमा मांगी व कर माफ किया।

यह किस राजा या वृद्धा की बात है ये तो हम नहीं जानते किन्तु इसका तथ्य पूर्ण सत्य है। व्यक्ति की भावना का प्रभाव सामने वाले पर शीघ्रता से पड़ता है। हमारे विचार, भाव मनुष्य को तो ठीक पौधों व पानी आदि को भी प्रभावित करते हैं। वैज्ञानिक क्लीव बैक्सटर ने एक पौधे को पोलीग्राफ मशीन से जोड़ दिया और उन्होंने उस पौधे की पत्तियों को जलाने का विचार किया। उन्होंने पत्ती को जलाने के लिए लाइटर निकाला ही था कि पोलीग्राफ मशीन की सुईयों ने तीव्रता से गति करना प्रारंभ कर दिया जिसका साफ संकेत था कि पौधा भयग्रस्त होकर थर्राने लगा है। यद्यपि अभी लाइटर जलाया भी नहीं था फिर भी पौधे ने बैक्सटर के विचार समझ लिए और वह डर के कारण काँपने लगा।

इसी प्रकार पानी पर भी अनेक प्रयोग किए गए। पानी के पास अच्छे शब्द बोलने पर उसके molecules सुंदर पाए गए व बुरे शब्द बोलने पर molecules अच्छे नहीं थे। जापान के वैज्ञानिक डॉ. मसारू इमोटो ने पानी को अलग-अलग रख इस प्रकार के कई प्रयोग किए थे।

एतावता भोजन करना, बनना आदि में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव का प्रभाव पड़ता है। भोजन के शुद्ध होने के लिए इनकी शुद्धि भी आवश्यक है ,तभी भोजन पूर्णतया शुद्ध माना जा सकता है। भोजन की शुद्धि स्वपर शांति का निमित्त व आत्मशुद्धि का भी हेतु है। भोजन निर्माण व भोजन करने के लिए व्यक्ति के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि किस प्रकार के होने चाहिए व कौन से द्रव्यादि अयोग्य हैं उनका कथन ग्रंथकार आगे स्वयं कर रहे हैं।

द्रव्य शुद्धि

समज्जायिअ-भोयणं, वत्थ-वत्थु-भायणाणं सुद्धी य।
उवयरणाण सुद्धी वि, खज्जत्थाणं दव्वसुद्धी॥35॥

अर्थ–मर्यादा सहित भोजन, वस्त्र, वस्तु और बर्तनों की शुद्धि, उपकरणों की शुद्धि, खाद्य पदार्थों की शुद्धि भी द्रव्य शुद्धि कहलाती है।

Purity of food, clothes, things, utensils, equipment and edible items is called purity of substances.

व्याख्यान–यहाँ ग्रंथकार भोजन की द्रव्य शुद्धि का कथन करते हुए कहते हैं कि सर्वप्रथम तो भोजन मर्यादित होना चाहिए। जैसे दवाइयों आदि पर एक्पाइरी डेट लिखी आती है और उस डेट के निकल जाने पर वे अग्राह्य होती हैं उसी प्रकार प्रत्येक खाद्य पदार्थ की भी मर्यादा (एक्सपाइरी डेट) होती है उसके बाद वह अखाद्य या अभक्ष्य हो जाते हैं। किसी ने आज दिन में आटा गूंथा, जितना प्रयोग करना था उसे कर लिया व बचा आटा फ्रिज में रख दिया। आमतौर पर महिलाएँ ऐसा करती ही हैं। गुंथे हुए आटे में कुछ घंटे पश्चात् सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे वह दोबारा सुबह का शाम या शाम का सुबह प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वैज्ञानिकों के अनुसार आटे को गूंथकर फ्रिज में रखने से फ्रिज की हानिकारक किरणें उसमें प्रवेश करती हैं और उसे खराब कर देती हैं। उससे बनी रोटियाँ कई बीमारियों का कारण बनती हैं। भोजन बनाकर फ्रिज में रखना व बाद में सेवन करना सात्विक भोजन के अन्तर्गत नहीं आता। पकी हुई दाल, सब्जी आदि फ्रिज में रखने से उसके पोषक तत्त्व तो नष्ट होते ही हैं साथ में यह बीमारी का कारण भी बनता है। फूडपॉइजनिंग, पाचन तंत्र में कमी, गैसादि की परेशानी होना तो आम बात है। यह पेट की बीमारियों को जन्म देता है।

फ्रिज में रखा पानी तो व्यक्ति के लिए स्लो पॉइजन ही समझना चाहिए। इससे व्यक्ति की आँतें सिकुड़ जाती हैं। यह लंबे समय के कब्ज में भी कारण है, जिससे पूरा तंत्र गड़बड़ा जाता है और अन्य कई बीमारियाँ जन्म लेती हैं। ठंडे पानी से शरीर की कोशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं और ठीक से काम नहीं कर पातीं। इसका असर मेटाबॉलिज्म व सेहत पर सीधा पड़ता है। यह धड़कनों को भी कम कर सकता है। इससे गले, फेफड़े व पाचन तंत्र के रोग होना तो बहुत आम है।

अतः सात्विक भोजन वही है जो मर्यादित हो। भोजन निर्माण करने वाला भी शुद्ध वस्त्र पहने हुए हो। वर्तमान में फैली Pandemic Corona ने सबको बता दिया कि किस तरह Virus कपड़ों से चिपकते हैं। जब व्यक्ति मार्किट आदि में जाता है तब हर प्रकार के व्यक्ति, वस्तु आदि के संपर्क में आता है। ऑटो, मैट्रो आदि से यात्रा करता है, वहाँ तो श्वांस लेने का भी स्थान नहीं रहता, इतने लोगों के संपर्क से कितने प्रकार के वाइरस उसके साथ आ जाते हैं। व्यक्ति टॉयलेट आदि भी जाता है तो वहाँ के बैक्टीरिया उसके कपड़ों से चिपक जाते हैं। वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि "एक व्यस्क व्यक्ति एक दिन में 17 लाख खरब जीवाणु शौच (मल) से बाहर करता है।" जब वह शौच क्रिया से लौटता है तो वे शरीर, वस्त्रादि में चिपक जाते हैं। यदि वह बिना स्नान या वस्त्र बदले भोजन करता है तो वे सब उसके मुख में चले जाते हैं। अतः भोजन बनाना या करना हो तो वस्त्र शुद्ध हों, जिससे उन viruses से होने वाली शारीरिक व मानसिक बीमारियों से बचा जा सके।

भोजन निर्माण में प्रयुक्त व खाने वाली सभी वस्तुएँ शुद्ध होनी चाहिए। खाद्य पदार्थ कैमिकल-फ्री ऑर्गेनिक होने चाहिए। यदि खाद्य सामग्री मिलावटी, निम्न स्तर की होगी तो उसका शरीर पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। आटे में घुन, मसालों में अन्य निम्नस्तरीय वस्तुओं की मिलावट, घी में चर्बी आदि मिली होगी तो वह आरोग्य देने की जगह बीमारियाँ देगी। भोजन बनाने वाले को देख-शोधकर

बनाना चाहिए। विशेषकर पत्ती वाली सब्जियों, दाल, चावल, फल-शाकादि को भली प्रकार धोकर, साफ कर पुनः उन्हें बनाना चाहिए। पत्ती वाली सब्जियों में तो उसी प्रकार के, उसी रंग के जीवों की संभावना रहती है अतः अप्रमादी होकर उन्हें तैयार करना चाहिए। इसी प्रकार भोजन करने वाले भी सावधानी से शोधकर भोजन करें।

जिन बर्तनों में भोजन किया जा रहा है या पकाया जा रहा है वे भी भलीभाँति साफ होने चाहिए। जिन डिब्बों, टंकियों में समान रखा जाए वे भी स्वच्छ होने चाहिए। रसोई में उपयुक्त उपकरण चक्की, गैस, मिक्सी आदि सभी स्वच्छ होने चाहिए। कई बार महिलाएँ एक बर्तन में दूधादि गर्म किया, उस बर्तन को ऐसे ही छोड़ दिया कि कुछ देर बाद फिर काम में आएगा, दूधादि उसमें सूख गया, ढका भी नहीं रखा था, पुनः उसमें अन्य वस्तुएँ गर्म कर लीं। कई बार तो सुबह से शाम तक एक फ्राइपैन व चाय की पत्ती में दस चाय पका लेते हैं। बर्तन को उपयोग में लेने से पहले उसे देख लें। मिक्सी में नीचे कुछ जम रहा था, ध्यान नहीं दिया, उसी में कुछ पीस दिया इत्यादि अविवेक की क्रियाओं से सूक्ष्म जीवों का भी घात होता है और स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है।

प्रकरणवश बता दें कि बर्तनों को अधिक समय तक सिंकादि में रखने से बहुत से सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे पाप का बंध होता है। जीव हिंसा न हो इससे बेहतर है अपने माध्यम से जीवोत्पत्ति ही न हो। अतः बर्तन को शीघ्रातिशीघ्र साफ करके रखें, वो भी इस प्रकार कि उनमें पानी न भरा रहे।

भोजन बनाने व करने से पूर्व अपने हाथ-पैर अच्छे से धोएँ। जैसा कि महामारी के समय बताया जा रहा है कि कम से कम 20 Sec. हाथ धोएँ। भोजन बनाने या करने से पूर्व इसी प्रकार हाथ साफ करने चाहिए, जिससे हाथों की गंदगी भोजन में mix हों शरीर में पहुँचकर रोगोत्पन्न न करे।

इस प्रकार भोजन निर्माता, ग्राहक, उनमें प्रयुक्त खाद्य सामग्री व बर्तन वा अन्य सभी उपकरण शुद्ध होना आवश्यक है।

आरोग्य लाभ के लिए एल्यूमीनियम या नॉनस्टिक के बर्तनों का प्रयोग न करें क्योंकि ये कैंसर जैसी बीमारी को सर्वाधिक उत्पन्न करते हैं। लोहे की कढ़ाई आदि का प्रयोग करें जिससे भोजन के साथ लोह तत्त्व भी शरीर में पहुँचेगा।

इस प्रकार द्रव्य शुद्धि का ध्यान रखकर ही आहार निर्माण व ग्रहण रूप क्रिया करनी चाहिए।

क्षेत्र शुद्धि

इमा खलु खेत्तसुद्धी, जलठाणं होज्जुक्कुंभो सुद्धो।
चक्की अण्णट्ठाणं, पागसाला पुण्णसुद्धा वि॥36॥

अर्थ–जल का स्थान उद्‌कुंभ या पडेली शुद्ध होना चाहिए। चक्की व अन्न का स्थान शुद्ध होना चाहिए तथा पाकशाला (रसोई) भी पूर्ण शुद्ध होना चाहिए। यह ही क्षेत्र शुद्धि है।

The place where water, quern and grains are placed should be neat and clean. Kitchen should also be neat and clean, this is called the purity of area.

व्याख्यान–क्षेत्र अर्थात् स्थान। जिस क्षेत्र पर जैसी वर्गणाएँ होती हैं वहाँ रहने वालों के परिणाम भी वैसे ही होते हैं। एक उदाहरण श्रुति में आता है–श्रवण कुमार अपने अंधे माता-पिता को काँवर में बैठाकर तीर्थयात्रा कराने चल दिए। यात्रा कराते-कराते जब नदी के किनारे माता-पिता को नीचे उतारा तब उनके परिणाम बिगड़ने लगे। वहाँ उन्होंने माता-पिता को अपशब्द बोल यात्रा का किराया माँगा। पिता ने पूछा बेटा कहाँ है? उसने स्थान बताया। उन्होंने पुनः कहा बेटा! आपने हम पर इतना उपकार किया है, थोड़ा उपकार और कर दे, हमें नदी के उस पार छोड़ दे। बेटे ने जैसे ही नदी पार की, वैसे ही पश्चाताप के आँसू बहने लगे। बेटे ने कहा–पिता जी! मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ है, क्षमा कीजिए और बताइए मेरे ऐसे परिणाम क्यों हुए? उन्होंने बताया कि कुछ समय पूर्व एक युवक ने यहाँ अपने माता-पिता की हत्या की थी, उसका प्रभाव आज भी उस क्षेत्र पर है। क्षेत्र का प्रभाव प्राणियों पर तो पड़ता ही है और वहाँ स्थित जड़ पदार्थों पर भी पड़ता है।

जिस स्थान पर भोजन बनाया जा रहा हो या खाया जा रहा हो वह स्थान शुद्ध होना चाहिए। सर्वप्रथम कहा कि जल रखने का स्थान शुद्ध, साफ, स्वच्छ होना चाहिए। जल रखते समय आसपास जल गिरना संभव है। वहाँ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति को रोकने के लिए उसे तुरंत साफ करना आवश्यक है। मयूरजग, टंकी आदि जिसमें भी पानी भरकर रखते हैं, उसे उठाकर, उस स्थान को पुनः पुनः साफ करें अन्यथा वहाँ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होगी, जिससे हिंसा का महान् दोष भी लगेगा और स्वास्थ्य भी प्रतिकूल होगा।

आजकल तो स्लैप के पास ही सिंक लग गई है। कुछ विवेकीजनों की रसोई का वह स्थान स्वच्छ व काम नहीं करते समय सूखा रहता है किन्तु कुछ का तो वह स्थान गंदा, गीला पड़ा रहता है। जलादि से धोने के बाद सूखे कपड़े से कोने-कोने तक पोंछकर उसे स्वच्छ रखें।

पुनः कहा अन्न का स्थान, चक्की आदि का स्थान शुद्ध होना चाहिए। डिब्बों में भरकर महिलाएँ आटा, शक्कर, दाल, चावल, मसाले, विभिन्न खाद्य पदार्थ रखती हैं वे जहाँ भी रखे हों वह अलमारी या स्लैप एकदम साफ होनी चाहिए। ऐसा नहीं कि अलमारी खोलते ही कॉकरोच निकल पड़े, धूल-कूड़ा-कचरा पड़ा हो। वह स्थान इतना स्वच्छ होना चाहिए कि वहाँ अंगुली लगाने पर भी हाथ पर धूल न आए।

जहाँ मिक्सी, चक्की, माइक्रोवेव आदि रखते हों उन्हें भी हटाकर उस स्थान को कम से कम दिन में एक बार तो अवश्य साफ करना चाहिए। गंदगी में बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं जो रोगों को जन्म देते हैं और घर में रसोई ही एक मात्र वह स्थान है जहाँ से आया पदार्थ सीधे शरीर में पहुँचकर अपना प्रभाव दिखाता है। अतः रसोई का कोना- कोना साफ होना चाहिए। रसोई में कभी भी चप्पल-जूते आदि पहनकर प्रवेश नहीं करना चाहिए, वे रसोई की शुद्धता को भंग कर देते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि अगर रसोई की चप्पल या खड़ाऊँ अलग रख लें तो। अलग रखने पर क्या चप्पलों में गंदगी नहीं होगी। अलग रखने से भी चप्पल तो

चप्पल ही हैं। जो व्यक्ति अपने घर को मंदिर बनाना चाहते हैं वे अपनी रसोई को मंदिर बना लें, घर स्वतः मंदिर बन जाएगा।

एक व्यक्ति ने हमें बताया था कि उनकी माँ रसोई ऐसे साफ रखतीं थीं जैसे O.T. (Operation Theatre) और शायद वह भी इतना साफ न रह पाता हो। स्कूल से आए बच्चों या बाहर से आए किसी व्यक्ति को रसोई में प्रवेश नहीं करने देती थीं, स्वयं भी शुद्ध वस्त्र पहनकर ही जातीं थीं और अन्य को भी इसी प्रकार रसोई में जाने की अनुमति थी। वास्तव में जिस घर की रसोई, खानपान स्वच्छ होगा वहाँ संस्कार व स्वास्थ्य दोनों ही उत्तम होंगे।

रसोई में स्वाभाविक अर्थात् सूर्य का प्रकाश व प्राकृतिक हवा अवश्य होना चाहिए। जहाँ दिन में भी अंधेरा हो, सीलन, बदबू इत्यादि हो वहाँ अनेक जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। उन जीव-जन्तुओं का भोजन में गिरना, छिपकली, चूहे आदि का खाद्य पदार्थों से स्पर्श होना बहुत संभव है अतः अपनी रसोई के लिए आप सदैव जागरूक रहें, कुछ मिनटों के लिए भी कोई सामान बिना ढका न छोड़ें।

गुरुजी कहते हैं– **''खानपान शुद्ध होगा तो खानदान भी शुद्ध होगा।'' ''जैसी खाएँ रोटी, वैसी होगी बेटी।''** रसोई से घर के सभी लोगों का संचालन होता है क्योंकि जैसा अन्न उनके अंदर पहुँचता है, वे वैसा ही सोचते हैं और उसी अनुरूप कार्य करते हैं अतः संपूर्ण परिवार की उन्नति व समृद्धि के लिए रसोईघर को साफ-सुथरा रखें। प्रमाद में सुबह का इधर-उधर बिखरा छोड़कर कि दिन में कर लेंगे, ऐसे रसोई से बाहर न निकलें अन्यथा जीवोत्पत्ति संभव है।

इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर बैठकर भोजन किया जा रहा हो वह स्थान भी स्वच्छ होना चाहिए। स्वच्छता देखने से, साफ स्थान पर बैठने से मन भी अच्छा-स्वच्छ होता है और अच्छे मन से किया गया भोजन अमृततुल्य फलदायक होता है।

काल शुद्धि

तिव्व विज्जुद-पडणम्मि, अग्गिदाहे णो भूमि-कंपणे वि।
रायाइ-पुरिसाणं च, मिच्चुयाले असुहयालम्मि॥37॥

आइच्चगहणम्मि तह, दिसादहणे सोगे असुद्धीए।
मेहुणयाले कया वि, णेव रक्खस-रुद्ध-पहरम्मि॥38॥

अक्कुदयस्सत्थस्स य, बिघडिगं सया परिहरेज्ज भव्वा।
रत्तीए मज्झदिणे, पूयणे ण भक्खेज्ज पचेज्ज॥39॥

अर्थ–बिजली गिरने पर, अग्नि दाह के समय में, भूकंप आने पर, राजा आदि महापुरुषों की मृत्यु होने पर, अशुभ काल में, सूर्य ग्रहण काल में, दिशा दहन, शोक, अशुद्धि, मैथुनकाल में, राक्षस व रौद्र पहर में, मध्यदिन (संधिकाल), रात्रि में व पूजन करते समय न भोजन करना चाहिए और न ही उसको बनाना चाहिए। भव्यजनों को सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त से पूर्व दो-दो घड़ी छोड़ देना चाहिए।

Food should neither be taken nor prepared when lightening strikes, during a fire, earthquake, on the death of a king or other great person. During an inauspicious time, solar eclipse, burning the direction (when there is too much fire around one) during mourning, impure time, sexual intercourse, during the demonic and fierce period, during sandhikal (mid day dawn and dusk) at night and during prayers. Potential souls should give up the food before 48 minutes of sunset and takes food after 48 minutes of sunrise.

व्याख्यान–काल का अर्थ है समय। भोजन में जिस प्रकार द्रव्य व क्षेत्रशुद्धि आवश्यक है वैसे ही कालशुद्धि भी अत्यंतावश्यक है। काल मानव शरीर वा मस्तिष्क को पूर्णतया प्रभावित करता है। इसी कारण प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में मन जितना शांत रहता है, स्मरण शक्ति जितनी तेज होती है, जैसे विचार

होते हैं वैसे अन्य समय में नहीं होते। ग्रंथकार यहाँ भोजन के अयोग्य काल का कथन कर रहे हैं। जब आकाश से बिजली अपने आसपास गिरी हो तब व्यक्ति भोजन न करे क्योंकि उस समय अंतरंग में भय का संचार होता है, उन्हीं भावों युक्त भोजन शरीर के लिए आरोग्य का कारण नहीं होगा। यदि आसपास (पड़ोसादि में) आग लगी हो तो स्वपर सुरक्षा, लोकव्यवहार आदि कारणों से उस समय भोजन नहीं करना चाहिए। भूकंप आ रहा हो तो उतने क्षणों के लिए तो भोजन करते हुए भी रुककर मन में परमात्मा का नाम स्मरण करना चाहिए।

राजा आदि महापुरुषों की मृत्यु होने पर जिस समय समाचार प्राप्त होगा उस समय मन में शोक संभव है, असुरक्षा आदि के भाव भी हो सकते हैं अतः उतने समय भोजनादि ग्रहण नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति में किसी स्वजन की मृत्यु हो जाने पर उस घर में चूल्हा तक नहीं जलता। कई दिन तक अन्य रिश्तेदार आदि के यहाँ से ही भोजन आता है। क्योंकि ऐसा काल भोजन निर्माण के लिए भी अशुभ है। किन्तु स्वदेह स्थिति के लिए इतने दिनों तक भोजन नहीं छोड़ा जा सकता अतः मन को शोक सागर से बाहर निकाल भोजन करना चाहिए। या अन्य किसी अशुभ सूचना आदि प्राप्त होने रूप अशुभ काल में कुछ समय के लिए भोजन नहीं करना चाहिए।

सूर्य ग्रहण होने पर भी भोजन निर्माण व खाना अयुक्त ही है क्योंकि सूर्य ग्रहण के समय दिन भी रात के समान प्रतीत होता है, अंधकार छा जाता है, जिससे सूर्य की अल्ट्रावायलेट व इन्फ्रारेड किरणें पृथ्वी तक नहीं पहुँचतीं, जिससे सूर्य के प्रकाश के अभाव में होने वाले सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति संभव है अतः वह काल भी भोजन हेतु हेय है।

यदि दिशा दहन अर्थात् उल्का पिंडादि गिर रहे हों तब उतने समय के लिए भोजन छोड़ देना चाहिए। शोक के समय भी भोजन निर्माण व ग्रहण नहीं करना

चाहिए। स्त्रियाँ अशुद्धावस्था में सर्वश्रेष्ठ तो यह है कि उपवास रखें, वह uterus संबंधी कई बीमारियों से बचाता है। और शक्तिहीनता होने पर तीन दिन नीरस करें अथवा गरिष्ठ भोजन तो बिल्कुल ही ना लें।

मैथुनकाल में भी व्यक्ति को भोजनादि नहीं करना चाहिए। उस काल में कुछ भी खाना निषिद्ध है। रात्रि के चार पहर होते हैं–रौद्र, राक्षस, गंधर्व और मनोहर। वैसे तो चारों पहरों में ही भोजन करना निषिद्ध है किन्तु ग्रंथकार ने प्रारंभ के दो पहरों का कथन किया। क्योंकि जिसकी बहुलता होती है उसका कथन पहले किया जाता है। अतः इस कथन में कोई दोष नहीं है। रात्रि के इन दोनों पहरों में भोजन करने वालों की अधिकता है अतः ग्रंथकार ने इनका कथन किया और पुनः आगे रात्रि शब्द से सर्व पहरों में, संपूर्ण रात्रि में भोजन निर्माण व ग्रहण का निषेध किया है। धार्मिक, वैज्ञानिक आदि सभी कारणों से रात्रिभोजन सर्वथा निषिद्ध है।

रात्रि–दिन का प्रभाव इस पृथ्वी पर रहने वाले समस्त चेतन–अचेतन द्रव्यों पर नियम से पड़ता है। जैसे दिन में पेड़–पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया होती है उस क्रिया में कार्बोहाइड्रेट (ग्लूकोज और फ्रक्टोज) और ऑक्सीजन निर्माण होता है। रात्रि में पेड़–पौधों में एल्कोहल और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का निर्माण होता है। अतः सिद्ध है समय का प्रभाव प्रकृति पर अवश्यक पड़ता है।

जैसे व्यायाम करते समय ऊर्जा ऊष्मा में बदलती है, उस समय साधारण अवस्था की अपेक्षा ऑक्सीजन की अधिक आवश्यकता होती है, वैसे ही भोजन करते समय शारीरिक व्यायाम होता है, उसमें ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और भोजन करते समय उसे पचाने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता अधिक पड़ती है, इस प्रकार भोजन करते समय अन्य अवस्था की अपेक्षा चार गुनी ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ति दिन में भोजन करते समय ही होती है।

आयुर्वेदाचार्य कहते हैं–सूरज अस्त होने के बाद पित्त कमजोर हो जाता है, जिसके कारण भोजन पचता नहीं है। तब जो भोजन किया जाता है उसका खून नहीं बनता, कफ बनता है। नाभिकमल, जहाँ जाकर अन्न पड़ता है वह सूर्यास्त के बाद सिकुड़ जाता है और सूर्योदय होने पर खिल जाता है। हमारे शरीर में पाचन के लिए तीन पाइप हैं। जब ग्रास नीचे जाता है तो वे पाइप पिचकारी मारते हैं, उनमें से जो द्रव निकलता है वह पाचन में सहायक होता है। वे पाइप सूर्योदय के आधा घंटे बाद खुलते हैं और सूर्यास्त के आधा घंटे पहले बंद हो जाते हैं। पाचन के लिए हमारे गले से कुछ द्रव की बूंदें निकलती हैं, धीरे-धीरे चबाकर खाने से वे बूंदें पर्याप्त मात्रा में निकलती हैं जिससे भोजन जल्दी पच जाता है।

रात्रिभोजन त्याग आरोग्यवर्द्धक है। तभी आज डॉक्टर्स, डाइटीशियन्स लोगों को ओबेसिटी, डाइजेशन प्रॉब्लम, गैस, एसिडिटी, हर्ट प्रॉब्लम आदि से छुटकारा पाने के लिए दिन में ही भोजन करना सजैस्ट करते हैं। आजकल तो विदेशों में लोग डाइट चार्ट फॉलो करते हुए दिन में ही भोजन करते हैं।

एक बार एक व्यक्ति ने गुरुजी को आहार दिया। आहार देने पर कुछ समय के लिए उसने रात्रिभोजन व जमीकंद का त्याग किया। कुछ समय बाद उन व्यक्ति ने बताया कि मुझे मोटापे और एसिडिटी की बहुत प्रॉब्लम थी, आचार्य श्री को आहार देना, उनसे नियम लेना तो मेरे लिए वरदान सिद्ध हो गया, मेरा पेट भी कम हो गया और अब मैं अपने को पहले से ज्यादा स्वस्थ व लाइट महसूस कर रहा हूँ।

सूर्य के प्रभाव को हमारे आचार्यों ने, भगवंतों ने सहस्रों वर्ष पूर्व ही कह दिया था किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक भी आज उसकी शक्ति व प्रभाव को बताते हैं। सर नारमल लाकयर एवं विलियम रैम्जे ने अपने अनुसंधानों के आधार पर रंगीन सूर्य किरणों में हीलियम तत्त्व की खोज सबसे पहले की थी। उसके बाद अनेक वैज्ञानिकों ने वर्ण क्रममापी स्पेक्ट्रोस्कोप की सहायता से अब तक अनेक तत्त्व खोज निकाले। विशेषज्ञों का कहना है कि सूर्य के प्रकाश के पीले रंग में पारा,

आसमानी में एल्युमीनियम, हरे में सीसा, लाल में लोहा, नीले में तांबा, नारंगी में सोना व बैंगनी में चाँदी का समावेश है। पीले रंग की किरणें तिल्ली, लीवर, फेफड़े एवं पाचन प्रणाली के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं।

हरा रंग पीयूष ग्रन्थि को सर्वाधिक प्रभावित करता है इसलिए वमन (vomiting) को रोकता है, मानसिक तनावों को दूर करता है और माँसपेशियों को सुदृढ़ बनाता है। आसमानी रंग चयापचय (मेटाबॉलिज्म) की प्रक्रिया को बढ़ाने में सहायक होता है, यह शरीर की अतिरिक्त गर्मी को कम करता है। नीला रंग भक्ति, प्रेम, अनुराग आदि शुभ भावनाओं को जागृत करता है, घ्राण, कर्ण व चक्षुओं को स्वस्थ बनाए रखने में सहकारी है। यह पैराथायराइड ग्रन्थि को भी प्रभावित करता है। बैंगनी रंग सोडियम और पोटेशियम के संतुलन को बनाए रखता है। यह जीवन शक्ति बढ़ाने वाले ल्यूकोसाइट्स नामक रक्तकणों के निर्माण में सहयोगी है। यह मस्तिष्क की दुर्बलता में टॉनिक का कार्य करता है व मन का केन्द्रीकरण करता है।

वैज्ञानिक डब्ल्यू रिटर ने सन् 1801 में खोज की थी कि ये अल्ट्रावायलेट और इन्फ्रारेड किरणें रासायनिक परिवर्तन के लिए अत्यंत सक्रिय रहती हैं इसलिए इन्हें क्रियाशील किरणें भी कहा जाता है। ये प्रकाश, विद्युत् प्रभाव उत्पन्न करती हैं, गैसों को आयनित करती हैं और कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। यही कारण है कि दिन में सूर्य-किरणों की उपस्थिति में कोई जीवाणु उत्पन्न नहीं होते, कीट-पतंगे और मच्छर आदि भी बाहर नहीं निकलते परंतु जहाँ सूर्य किरणें नहीं पहुँचतीं वहाँ सूक्ष्म जीव, फफूँद और कीड़े-मकोड़े आदि उत्पन्न होते हैं। सूर्य-प्रकाश की अनुपस्थिति में भोजन बनाते या खाते समय असंख्यात सूक्ष्म जीव उस भोजन में मिल जाते हैं। उन सूक्ष्म जीवों की रक्षा व स्वयं के आरोग्य लाभ हेतु दिन में ही भोजन करने का निर्देश दिया। अल्ट्रावायलेट व इन्फ्रारेड ये दोनों किरणें सूर्योदय के 48 मिनट बाद प्रभावशाली होती हैं और सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व ही पृथ्वी पर प्रायः प्रभावहीन हो जाती हैं। इसी कारण आचार्यों ने सूर्योदय के 2 घडी अर्थात् 48 मिनट पश्चात् व सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व ही भोजन करने का निर्देश दिया। महाव्रतियों के

लिए 3 घड़ी, अणुव्रतियों के लिए 2 घड़ी व गृहस्थों के लिए 1 घड़ी का निर्देश है। यहाँ ग्रंथकार का कथन अणुव्रतियों की अपेक्षा से है।

कुछ लोग कहते हैं कि पहले तो रात में प्रकाश नहीं होता था अब तो खूब प्रकाश रहता है, अब रात्रिभोजन में कोई दोष नहीं। उन अत्यंत वैज्ञानिक बुद्धि वाले लोगों से हम कहना चाहते हैं कि यदि ऐसी ही बात है तो सूर्य के अस्त होते ही जो कमल बंद हो जाता है उसे अपने कृत्रिम प्रकाश से खिला दें। किन्तु ये संभव नहीं। सूर्य के प्रकाश व कृत्रिम प्रकाश की कहीं कोई समानता नहीं है। जब उस कमल को सूर्य प्रभावित कर सकता है तो मानवजाति को, उसके शरीरादि को क्यों नहीं?

सूर्यप्रकाश और विद्युत आदि प्रकाश में जो विशेष अंतर है वह यह है कि दिन में सूर्य का प्रकाश एक लाख लक्स के बराबर होता है और बादल छाये रहने पर भी दस हजार लक्स तो होता ही है। जबकि घरों में रात्रि के समय कृत्रिम प्रकाश सामान्यतः 200 से 500 लक्स तक होता है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि प्रकाश से हमारी ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जैसे अंधेरे में पिनियल ग्रन्थि में से सूर्यास्त होने पर अंधेरा होते ही मैलाटोनिन नामक द्रव्य निकलकर रक्त प्रवाह में मिलता है, जिससे शरीर सोने के लिए तैयार होता है। रक्तचाप एवं शरीर का ताप कम होता है, पित्त शांत एवं वायु में वृद्धि होती है। उन्हीं रासायनिक परिवर्तनों के कारण जीव रात्रि में अचेत व दिन में सचेत रहते हैं क्योंकि दिन निकलते ही मैलाटोनिन द्रव्य का स्राव बंद हो जाता है, शयन से उसकी मात्रा कम हो जाती है। यदि कोई कृत्रिम प्रकाश द्वारा इस द्रव को धोखा देना चाहे तो असंभव है क्योंकि इसको प्रभावित करने के लिए कम से कम 1000 लक्स प्रकाश की आवश्यकता होती है। जबकि कृत्रिम प्रकाश 200 से 500 लक्स तक ही उपलब्ध होता है।

रात्रिभोजन स्वास्थ्य के लिए तो हानिकारक होता ही है साथ ही दुर्गति का भी कारण है। आचार्य भगवन् श्री रविषेण स्वामी ने पद्मपुराण में कहा है–लोक में यह कार्य तो बिल्कुल ही त्यागने योग्य है कि दिनभर तो भूख से अपनी आत्मा

को पीड़ा पहुँचाते हैं और रात्रि को भोजन कर संचित पुण्य को तत्काल नष्ट कर देते हैं। रात्रि में भोजन करना अधर्म है। जो लोग रात्रिभोजन करते हैं उनके हृदय पापकर्म से अत्यंत कठोर हैं। जिसके नेत्र अंधकार के पटल से आच्छादित हैं और बुद्धि पाप से लिप्त है ऐसे पापी प्राणी रात के समय मक्खी, कीड़े तथा बाल आदि हानिकारक पदार्थ खा जाते हैं। जो रात्रि में भोजन करता है वह कुत्ते, चूहे, बिल्ली आदि माँसाहारी जीवों के साथ भोजन करता है अर्थात् इन्हीं पर्यायों को धारण करता है। अथवा अधिक कहने से क्या, जो रात में भोजन करता है वह सब अपवित्र पदार्थ खाता है।

सूर्य के अदृश हो जाने पर जो लंपटी-पापी मनुष्य भोजन करता है वह दुर्गति को नहीं समझता। सूर्यास्त हो जाने पर जो भोजन करते हैं उन्हें विद्वानों ने मनुष्यता से बंधे हुए पशु कहा है। जो मनुष्य रात्रि में भोजन करता है वह परभव में अल्पायु, निर्धन, रोगी व दुःखी होता है। रात्रि में भोजन करने वाला मिथ्यादृष्टि पुरुष शूकर, भेड़िया, बिलाव, हंस तथा कौआ आदि योनियों में दीर्घकाल तक उत्पन्न होता रहता है। जो दुर्बुद्धि रात्रि में भोजन करता है वह हजारों उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक कुयोनियों में दुःख उठाता रहता है।

जो दयालु मनुष्य रात्रि में भोजन नहीं करते वे पापहीन मनुष्य स्वर्ग में विमानों के अधिपति होकर उत्कृष्ट भोग प्राप्त करते हैं। वहाँ से च्युत होकर तथा उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर चक्रवर्ती आदि के विभव से प्राप्त होने वाले सुख का उपभोग करते हैं। शुभ चेष्टाओं के धारक पुरुष सौधर्मादि स्वर्गों में मन में विचार आते ही उपस्थित होने वाले उत्कृष्ट भोगों तथा अणिमा-महिमा आदि आठ ऋद्धियों को प्राप्त होते हैं। दिन में भोजन करने से मनुष्य जगत् का हित करने वाले महामंत्री, राजा तथा सर्व लोकप्रिय व्यक्ति होते हैं।

धनवान्, गुणवान्, रूपवान्, दीर्घायुष्क, रत्नत्रय से युक्त तथा प्रधान पद पर आसीन व्यक्ति भी दिन में भोजन करने से ही होते हैं। जिनका तेज युद्ध में असह्य

है, जो नगर आदि के अधिपति हैं, विचित्र वाहनों से सहित हैं तथा सामन्तगण जिनका सत्कार करते हैं ऐसे पुरुष भी दिन में भोजन करने से ही होते हैं। इतना ही नहीं, भवनेंद्र, देवेंद्र, चक्रवर्ती और महालक्षणों से संपन्न व्यक्ति भी दिन में भोजन करने से ही होते हैं। जो रात्रिभोजन त्यागव्रत में उद्यत रहते हैं वे सूर्य के समान प्रभावान्, चंद्रमा के समान सौम्य और स्थायी भोगों से युक्त होते हैं।

आचार्य महाराज ने स्त्रियों के विषय में आगे कहा कि रात्रि में भोजन करने से स्त्रियाँ अनाथ, दुर्भाग्यशाली, माता- पिता-भाई से रहित, शोक और दारिद्र से युक्त होती हैं। जिनकी नाक चपटी है, जिनका देखना ग्लानि उत्पन्न करता है, जिनके नेत्र कीचड़ से युक्त हैं, जो अनेक दुष्ट लक्षणों से सहित हैं, जिनके शरीर से दुर्गन्ध आती रहती है, जिनके ओंठ कटे और मोटे हैं, कान खड़े हैं, शिर के बाल पीले तथा चटके हैं, दाँत तूबड़ी के बीज के समान हैं और शरीर सफेद है। जो कानी, शिथिल तथा कांतिहीन हैं, रूपरहित हैं, जिनका चर्म कठोर है, जो अनेक रोगों से युक्त तथा मलिन हैं, जिनके वस्त्र कटे हैं, जो गन्दा भोजन खाकर जीवित रहती हैं और जिन्हें दूसरे की नौकरी करनी पड़ती है, ऐसी स्त्रियाँ रात्रिभोजन के ही पाप से होती हैं जो दुःख के भार से निरंतर आक्रान्त रहती हैं। बाल अवस्था में ही जो विधवा हो जाती हैं, पानी-लकड़ी आदि ढो-ढोकर पेट भरती हैं, अपना पेट बड़ी कठिनाई से भर पाती हैं, सब लोग जिनका तिरस्कार करते हैं, जिनका चित्त वचन रूपी बसूला से नष्ट होता रहता है और जिनके शरीर में सैकड़ों घाव लगे रहते हैं, ऐसी स्त्रियाँ रात्रिभोजन के कारण ही होती हैं।

जो स्त्रियाँ शान्तचित्त, शील सहित, मुनिजनों का हित करने वाली और रात्रिभोजन से विरक्त रहती हैं वे स्वर्ग में यथेच्छ भोग प्राप्त करती हैं। सिर पर हाथ रखकर आज्ञा की प्रतीक्षा करने वाले परिवार के लोग उन्हें सदा घेरे रहते हैं। स्वर्ग से च्युत होकर वे वैभवशाली उच्चकुल में उत्पन्न होती हैं, शुभ लक्षणों से युक्त तथा समस्त गुणों से सहित होती हैं। रात्रिभोजन त्याग के प्रभाव से वे अनेक कलाओं में निपुण होती है। उनका शरीर, नेत्र और मन स्नेह उत्पन्न करने वाला

होता है, अपने वचनों से मानो वे अमृत छोड़ती हैं, समस्त लोगों को आनंदित करती हैं, विद्याधरों के अधिपति, नारायण, बलदेव और चक्रवर्ती भी उनमें उत्कण्ठित रहते हैं। जिनके शरीर की कान्ति बिजली तथा लालकमल के समान मनोहारी है, जिनके सुंदर कुंडल सदा हिलते रहते हैं तथा राजाओं के साथ जिनके विवाह संबंध होते हैं ऐसी स्त्रियाँ दिन में भोजन करने से ही होती हैं। दिन में भोजन करने से स्त्रियाँ श्रीकांता, सुप्रभा, सुभद्रा और लक्ष्मी के समान कान्ति युक्त होती हैं। इसलिए नर हो चाहे नारी, दोनों को अपना चित्त नियम में स्थिरकर अनेक दु:खों से सहित जो रात्रिभोजन है उसका त्याग करना चाहिए। रात्रि में बने भोजन को दिन में करने से भी यहाँ दोष है अत: वह भी सदा त्याज्य है।

संधिकाल परमात्मा के स्मरण, ध्यानादि का श्रेष्ठ काल है अत: आचार्य भगवन् ने उस काल में भोजन करने का निषेध किया।

इसी प्रकार प्रभु परमात्मा, गुरु आदि की पूजन करते हुए भी भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसलिए कहा भी है कि श्रावक को कुल्ला करके, मुख शुद्धि करके ही मंदिर में प्रवेश करना चाहिए, झूठे या बासी मुख नहीं करना चाहिए। स्तुति आदि पढ़ते हुए भोजन बनाना तो चाहिए किन्तु प्रभु-परमात्मा के समक्ष पूजन करते हुए नहीं। यह बात गृह-चैत्यालय वालों के लिए विशेष ध्यातव्य है क्योंकि मंदिर जाकर भोजन निर्माण की संभावना तो बनती नहीं किन्तु घर चैत्यालय में पूजन भी चल रही हो और भोजन भी पका रहे हों, ऐसी संभावना हो सकती है किन्तु ग्रंथकार इसका यहाँ निषेध करते हैं।

वैज्ञानिक, धार्मिक आदि कारणों को जानने के पश्चात् यह सिद्ध है कि कालशुद्धि दिन में भोजन से ही बन सकती है। अत: कालशुद्धि का विवेकीजनों को अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

भाव शुद्धि

अइदुविहाइ पसंगे, अइसुहयर-अइदुहयर-यालम्मि य।
हस्से अरदि-रदीसुं, जुगुस्सायाले वि उज्झेज्ज॥40॥

अर्थ—अति दुविधा के प्रसंग में, अति सुखकर और अति दुःखकर काल में, हास्य में, अरति और रति में, जुगुप्साकाल में भी भोजन त्यागना चाहिए।

Food should be abandoned at the time of extreme dilemma, extreme happiness or sadness, at the time of laughter, sorrow, sexual desire and also at the time of disgust.

व्याख्यान—व्यक्ति की भावनाओं का प्रभाव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक सभी प्राणियों पर पड़ता है। इस प्रभाव को वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध कर चुके हैं। तभी तो यदि किसी सूखे वृक्ष के नीचे मुनिराज तपस्यादि करते हैं तो वृक्ष हरा-भरा हो जाता है, सूखे कुएँ में जल आ जाता है, आसपास व्यक्तियों के परिणाम स्वयं शांत हो जाते हैं।

एक समय दो व्यक्ति अपने व्यापार के उद्देश्य से किसी दूसरे नगर की ओर जा रहे थे। एक व्यक्ति तो अपने गाँव में बेचने के लिए दूध आदि लेने जा रहा था और दूसरा व्यक्ति पशुओं का चर्म/चमड़ा लेने जा रहा था। जाते हुए दोनों भोजन करने एक ही होटल पर रुक गए। होटल के मालिक ने दोनों से बातचीत कर उनके उद्देश्य को जान लिया व दूधादि के व्यापार हेतु जो व्यक्ति जा रहा था उसे होटल के अंदर स्थान दिया और इसके विपरीत दूसरे व्यक्ति को होटल के बाहर ही बैठाकर भोजन कराया।

दोनों भोजन कर आगे अपने-अपने मार्ग पर चल दिए। सामान खरीदने के पश्चात् वे दोनों अपने गाँव लौटते हुए भोजन हेतु उसी होटल पर रुके। अबकी बार होटल के मालिक ने चर्मादि लाए व्यक्ति को होटल के अंदर व पहले व्यक्ति

को बाहर बैठा दिया। भोजन संपन्न हुआ। पहला व्यक्ति होटल के मालिक के पास पहुँचकर बोला–भैया! सुबह तुमने मुझे अंदर व इसे बाहर बैठाया था तो मैं समझ गया था कि मैं दूधादि का व्यापारी हूँ, शुद्ध हूँ इसलिए मुझे अंदर बैठाया और पशु के चर्मादि के व्यापार करने से वह अशुद्ध था इसलिए उसे बाहर बैठाया किन्तु अब जो तुमने किया वह मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया, उसे अंदर और मुझे बाहर बैठाया।

होटल के मालिक ने कहा ''साहब मैंने आपके व्यापार से नहीं, आपकी भावनाओं के अनुसार स्थान दिया है। मतलब, जब आप दूधादि लेने जा रहे थे तब आपके विचार होंगे कि वहाँ खूब पशुधन हो, पशु स्वस्थ हों, उन्हें कोई रोग आदि न हो जिससे आपको दूधादि आसानी से व सस्ता मिल जाए और जो चर्मादि लेने जा रहा था वह सोच रहा होगा कि वहाँ खूब पशु मृत्यु को प्राप्त हों जिससे चर्म सस्ता हो और मैं अधिक खरीद सकूँ।'' दोनों ने सिर हिलाते हुए कहा हाँ बिल्कुल ऐसा ही था। मालिक ने कहा किंतु अब ऐसा नहीं है। अब आप दूधादि खरीदकर लाए हो तो अधिक धनार्जन हेतु लोभ से विचार आया कि वहाँ पशु बीमार पड़ जाएँ, गायादि दूध न दें पाएँ आदि जिससे मेरा माल महँगा बिक सके। जबकि दूसरा व्यक्ति अपना माल बेचने के लिए सोच रहा होगा कि गाँव में सब पशु स्वस्थ रहें, कोई भी मृत्यु को प्राप्त न हो। दोनों ने आश्चर्य से मालिक को इस भाव से देखा कि वह उनके मन की बात कैसे जान रहा था।

मालिक ने पुनः कहा–भैया! जाते हुए आपकी (पहला व्यक्ति) भावना अच्छी थी इसलिए आपको अंदर बैठाया और आते हुए आपकी (दूसरा व्यक्ति) भावना अच्छी थी इसलिए आपको अंदर बैठाया। क्योंकि सब प्रदूषणों से बड़ा होता है वैचारिक प्रदूषण। अपने होटल की शुद्धता बनाए रखने के लिए मैंने ऐसा किया।

इस प्रकार व्यक्ति के विचार सबको प्रभावित करते हैं। भोजन का बड़ा विज्ञान है। जिस भावना के साथ भोजन किया जाता है वह भोजन उसी अनुरूप फल देता है। यदि सात्विक भोजन भी तामसिक सोच के साथ किया जाए तो वह

भोजन सात्विक नहीं रहता। व्यक्ति जैसा सोचते हुए भोजन करता है, वह भोजन उसी प्रकार का बन जाता है।

आपने पुस्तक में पढ़ा कि माँसाहार या तामसिक आदि भोजन करने वाले इतनी बीमारियों से ग्रसित होते हैं किन्तु आप कहेंगे कि ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने कभी मद्य, माँसादि को छुआ तक नहीं फिर उन्हें ये बीमारियाँ कैसे? तो पहली बात तो यह है कि इनका डायरेक्ट सेवन न भी किया हो किन्तु बाजार के खाद्य पदार्थ व दवाईयों आदि के माध्यम से इन्डायरेक्ट सेवन संभव है। दूसरी बात यह–कई बार व्यक्ति शाकाहारी, सात्विक भोजन को भी माँसाहार बनाकर करता है। टी.वी. आदि देखते हुए या न्यूज पेपर आदि पढ़ते हुए जैसा देख रहे हैं, पढ़ रहे हैं वैसा ही भोजन के साथ अंदर चला जाता है। टी.वी. में लड़ाई, फाइटिंग आदि देखी या न्यूज देखी जिसे सुनकर मन क्रोधित हो गया था, कोई सीन देखकर क्रोधादि की भावना उमड़ रही है या न्यूज पेपर में एक्सीडेंट, लूटपाट आदि के विषय में पढ़ लिया वह वर्गणाएँ भोजन के साथ शरीर में चली जाती हैं पुनः भोजन वैसा ही प्रभाव दिखाता है जिन भावों के साथ अंदर गया। विचार, सात्विक भोजन को भी तामसिक बनाने में समर्थ हैं।

अतः कभी भी टी.वी., मोबाइल आदि देखते हुए भोजन नहीं बनाना चाहिए, न खाना चाहिए। भोजन बनाने वाले के जैसे भाव होते हैं वैसे ही भोजन में आ जाते हैं और जब वही भोजन पारिवारिक जन करते हैं तो उसी अनुरूप उनके भी

परिणाम हो जाते हैं। पहले महिलाएँ भजन, स्तुति, स्तोत्र आदि पढ़ते हुए भोजन बनाती थीं जिससे वे ही शुद्ध वर्गणाएँ भोजन में पहुँच उसे और अधिक सात्विक व स्वादिष्ट बना देती थीं। जिससे घर में सभी के परिणाम प्रायः निर्मल बने रहते थे। आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भजन, स्तोत्र, णमोकार मंत्रादि पढ़कर भोजन बनाना तो दूर, अब तो होम मेड ही भोजन बनाती हैं।

घर में माँ भोजन के माध्यम से जो संस्कार अपने बच्चे को दे सकती है क्या मेड से वे संस्कार मिल सकते हैं? बिल्कुल नहीं। मेड भोजन बनाते समय सोचती है एक पराठा कम खाए तो ठीक है, कम बनाना पड़ेगा। जबकि माँ कहती है अभी कुछ नहीं खाया, बेटा! एक और खा लो। क्या आज की जनरेशन अपनी माँ के इस लाड़ की अधिकारी नहीं है? माँ के, घर की गृहिणी के हाथ का भोजन तो स्वतः ही आरोग्यवर्द्धक होता है, प्रेम व स्नेह से मिश्रित होता है। अतः महिलाएँ भोजन तो स्वयं बनाएँ, वो भी अच्छी भावना से, प्रेम व वात्सल्य से। एक महीने भी यदि आपने यह प्रयोग कर लिया तो घर के लोगों के व्यवहार में अंतर आप स्वयं ही देख सकेंगी। अतः सुसंस्कारों व अच्छे स्वास्थ्य के लिए घर की गृहिणी स्वयं भोजन बनाएँ।

दूसरी बात यह है कि टी.वी., मोबाइल आदि चलाकर बच्चों को भोजन न कराएँ, न करने दें। कई बार तो माँ स्वयं कहती हैं अरे! हमारा बालक टी.वी. के सामने बैठकर रोता नहीं, You-tube देखते हुए जल्दी भोजन कर लेता है। आप ऐसा करके अपनी संतान के भविष्य से खेल रही हैं। आप उसे समझाएँ कि वह

जल्दी भोजन कर लेगा तब आप उसे टी.वी. आदि दिखा देंगी। हाँ, बच्चों को समझाने से पूर्व यदि आपकी आदत सीरियल आदि देखते हुए भोजन करने की है तो पहले आप स्वयं पर नियंत्रण करें। बड़ों को नियंत्रण में देख बच्चे स्वयं नियंत्रण में हो जाएँगे।

यहाँ आचार्य महाराज उन भाव या परिणामों का कथन कर रहे हैं जिन परिणामों में भोजन बनाना और करना दोनों ही उचित नहीं। यदि व्यक्ति अति दुविधा या तनाव में हो तो भोजन बनाना या करना नहीं चाहिए। तनाव की स्थिति में भोजन बनाने से जो उस भोजन को करेंगे उन सब व्यक्तियों को भी तनाव का अनुभव होगा, वे भी अकारण ही दुविधा में पड़ जाएँगे। अतः अति दुविधा, अति सुख या हर्ष में भी भोजन ग्रहण न करें। आप सोच रहे होंगे यहाँ हर्ष में भोजन निर्माण या ग्रहण का निषेध क्यों है? हर्ष में, सुख में भोजन करना तो श्रेष्ठ है किन्तु अति हर चीज की बुरी होती है। एक बार ऐसा प्रसंग सुनने में आया कि भोजन करते-करते व्यक्ति को कोई समाचार मिला, वह अत्यंत प्रसन्न हुआ, जोर से हँसी आई और भोजन का कुछ अंश उसकी श्वांस नली में अटक गया, तुरंत उसे हॉस्पिटल ले जाया गया, बड़ी मुश्किल से जान बची। भोजन बना रहे हैं तो नमक की जगह शक्कर, शक्कर के स्थान पर नमक डाल दिया, अति हर्ष के कारण बार-बार सामान हाथ से छूट रहा है अतः उस समय थोड़ा रुक जाना चाहिए।

इसी प्रकार अति दुःख के समय भी भोजन न बनाएँ क्योंकि इससे खाने वाले के मन में उदासीनता आती है। हँसी के समय, रति (प्रेम), अरति (द्वेष) या ग्लानि करते हुए, उन भावों से न तो भोजन बनाना चाहिए और न ही ग्रहण करना चाहिए।

कषायोदय में भोजन निषिद्ध

उग्ग-कसायस्सुदये, णो जदा होदि रुद्दभावो तदा।
संकिलेस-परिणामे, वेरे कलहासुहभावेसु।।41।।

माणकसायस्सुदये, भावो होदि परवमाणस्स जदा।
ता खलु असुद्धभावा, सज्जणा परिहरेज्ज सव्वा।।42।।

मायाचारस्सुदये, जदा हवंति छल-कवड-परिणामा।
तेसु भावेसु करेज्ज, भोयणं पचणं णो कया वि।।43।।

लोहकसायस्सुदये, तिव्वासत्तीइ होंति परिणामा।
तिव्वासत्ती कुव्वदि, अमिय-अदणं वि विसोव्व सया।।44।। (चउक्कं)

अर्थ–उग्र कषाय के उदय में जब रुद्र भाव होता है तब संक्लेश परिणाम, बैर व कलह आदि अशुभ भावों में भोजन नहीं करना चाहिए। मान कषाय के उदय में जब दूसरों का अपमान करने का भाव होता है तब उन अशुद्ध भावों को सर्व सज्जनों को छोड़ देना चाहिए। मायाचार के उदय में जब छल-कपट के परिणाम होते हैं तब उन भावों में कभी भी भोजन निर्माण व ग्रहण नहीं करना चाहिए। लोभ कषाय के उदयकाल में तीव्र आसक्ति के परिणाम होते हैं। तीव्र आसक्ति सदा अमृत भोजन को भी विष के समान कर देती है।

Food should not be taken when there is cruel temperament due to the rise of intense astringent or should not be taken in bad feelings like sorrow, enmity and strife etc. If there is feeling of insulting others due to the rise of pride, then all noble men should avoid all impure feelings. When there is feeling of crookedness in the rise of deceit, then one should never prepare or have food. There are feelings of intense attachment in the rise of greed. Intense attachment always makes even the nectar food like poison.

व्याख्यान–यदि मनुष्य के भाव कषाय के आवेश से युक्त होते हैं तब उस समय अमृत तुल्य भोजन भी विष के समान हो जाता है। व्यक्ति की भावना का प्रभाव शरीर में स्थित ग्रंथियों पर होता है। जैसे भाव होते हैं उसी अनुसार ग्रंथियों से रसायन निकलते हैं। अच्छे भाव होते हैं तो ग्रन्थियों से स्रवित होने वाले रसायन शांतिदायक व आरोग्यवर्द्धक होते हैं। और भाव यदि बुरे हों तो ग्रन्थियों से स्रवित होने वाला रसायन दुःखदायक व रोगकारक होता है। एक बार हम होम्योपैथिक दवाई की कोई बहुत प्राचीन पुस्तक पढ़ रहे थे। उसमें सर्वप्रथम रोग के कारणों का विवेचन था। उसमें पहला पॉइन्ट यह था कि जो व्यक्ति प्रायः बुरा सोचता है, अन्य के विषय में नेगेटिव सोचता है, किसी के अहित की सोचता है वह बीमार पड़ जाता है, कई रोग आकर उसे घेर लेते हैं और उसका कारण है उस बुरा सोचने से ग्रन्थियों से जो हार्मोन्स स्रवित होते हैं, रसायन स्रवित होता है वह विषमय होता है।

यहाँ ग्रंथकार भावों का कथन करते हुए कहते हैं कि जब व्यक्ति में तीव्र कषाय भाव जागृत हो तब न तो वह भोजन बनाए और न ही करे। क्योंकि यदि इन्हीं क्रोध, मान, माया या लोभ की भावना से भोजन बनाया जाता है तो वही भाव उस भोजन को ग्रहण करने वाले में पहुँचते हैं जो उसके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को असंतुलित कर देते हैं। यदि व्यक्ति के भाव क्रोध, संक्लिष्ट, संक्लेशता, बैर, कलह, मान, छल-कपट, लोभ, वस्तु के प्रति तीव्र आसक्ति से युक्त हैं तो ऐसे में व्यक्ति खाद्य पदार्थों का निर्माण या भक्षण न करे क्योंकि ऐसे भावों युक्त भोजन सात्विक भी हो तब भी विषकारक ही होता है।

एक महिला अपने घर में अकेली थी। उसका लगभग एक वर्ष का बच्चा था। परिवार के अन्य सदस्य बाहर गए हुए थे। किसी बदमाश ने मौका पाकर उसके साथ अत्याचार करना चाहा। उस महिला ने अपने बचाव के लिए आवाज लगाई किन्तु कोई नहीं आया तब उसने बदले की आग से झुलसते हुए क्रोध का जहर दाँतों में भरकर काटना प्रारंभ कर दिया। वह अपने अथक प्रयासों से बच गई और बदमाश व्यक्ति भाग गया।

जब महिला अपना बचाव कर रही थी तब उसका भूखा शिशु जोर-जोर से रो रहा था। बदमाश के भाग जाने पर उसने उसे स्तनपान कराना प्रारंभ कर दिया। थोड़ी देर बाद बच्चे का बदन हरा, नीला पड़ने लगा। माँ बेटेको अस्पताल ले गई। डॉक्टर ने पूरा परीक्षण कर बताया कि बेटे को पिलाए गए दूध में पॉयजन था, वही इसके शरीर में फैल रहा है। डॉक्टर की बात सुनकर घबराते हुए माँ बोली—दूध मैंने अपने स्तन का पिलाया था, फिर जहर कहाँ से आ गया।

डॉक्टर ने पुनः पूछताछ करना प्रारंभ किया कि आप उसके पूर्व या उस समय क्या कर रहीं थीं? तब उसने चोर बदमाश वाली पूरी घटना सुनाई। डॉक्टर ने कहा हमारे जैसे परिणाम होते हैं; वैसे रसायन हमारी ग्रंथियों में निर्मित होते हैं और वैसे रसायन ग्रंथियों से निकलकर शरीर में फैलते हैं। आप बच्चे को दूध पिलाने के वक्त क्रोध से युक्त होकर बदला लेने के लिए जहर उगल रहीं थीं और वही जहर दुग्धग्रंथियों में मिश्रित हो गया है जिसके कारण उसका शिशु बीमार हो गया, तब महिला को अपनी गलती का अहसास हुआ था।

यह प्रसंग तो क्रोध का है किन्तु कषाय चाहे कोई भी हो मान हो या लोभ अथवा मायाचारी हो सबका प्रभाव पड़ता है। किसी के अपमान का भाव लेकर बनाए गए भोजन को जो करता है वह उसी अनुरूप परिणाम (भाव) को प्राप्त करता है। छल, कपट आदि के भावों से युक्त व्यक्ति के द्वारा निर्मित भोजन, उसे खाने वाले में ऐसे ही छल-कपट के भाव पैदा करेगा और यही परिणाम तीव्रासक्ति का होगा। अतः ग्रन्थकार यहाँ स्पष्ट कह रहे हैं कि छद्मस्थ या संसारी होने के कारण इन कषाय भावों का उत्पन्न होना संभव है किन्तु उस समय में भोजन के प्रति सजग रहें, न बनाए न खाएँ। कुछ क्षणों में मन को शांत करें पुनः चिंतन की धारा सकारात्मक करते हुए अपना कार्य आरंभ करें।

वेदोदय में भोजन निषिद्ध

मेहुणसण्णा-उदये, तेदुदयम्मि वा होंति परिणामा।
संकिलेसजुत्ता जा, तेहि ण भुंजेज्ज सज्जणेहि॥45॥

पेसुण्ण - भावुदयम्मि, मच्छर - संकिलिट्ठ - परिणामेसुं।
कया वि णो खादेज्ज य, जह भावो होदि तह खज्जं॥46॥

अर्थ—मैथुन संज्ञा के उदय में अथवा वेद के उदय में जो संक्लेश युक्त परिणाम होते हैं उन भावों से भोजन नहीं करना चाहिए। पैशून्य भाव के उदय में, मात्सर्य और संक्लेशयुक्त परिणामों में कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसा भाव होता है, वैसा ही खाद्य पदार्थ होता है।

Food should not be eaten with the feelings of anxiety which is in the rise of intercourse sensation. Food should never be taken, when there are feelings of backbiting, envy and anxiety because as there are feelings, so the food becomes.

व्याख्यान—मन में जब मैथुनसंज्ञा अर्थात् वासना के विषयसेवन के परिणाम उत्पन्न हो रहे हों, कामेच्छा जागृत हो रही हो और वह भी इतनी तीव्रता से कि स्वयं के परिणाम संक्लेशित हो रहे हों तब भोजन निर्माण नहीं करना चाहिए। ऐसे परिण ाामों के साथ भोजन बनाने से उसे करने वाले पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उससे दुश्चिंताएँ उत्पन्न होती हैं। मन में दुष्परिणाम आते हैं और इस तरह के विचार से भोजन करने से मानसिक स्थिति कमजोर होती है, उसका दिमाग पर दुष्प्रभाव पड़ता है अथवा जब पैशून्य अर्थात् चुगली के परिणाम या शिकायत का भाव मन में आ रहा हो उस समय भी भोजन नहीं बनाना चाहिए। ईर्ष्या या संक्लेशित परिणामों के साथ भी भोजन नहीं बनाना चाहिए क्योंकि इससे भोजन

करने वालों में भी इन्हीं भावों की उत्पत्ति होती है, जो रोग का कारण बनते हैं। जिन भावों से व्यक्ति को भोजन कराया जाता है, बनाया जाता है उसका सीधा प्रभाव पड़ता है। जब स्वतः ही व्यक्ति के भाव एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तब भोजन में जो भाव मिल गए हैं, वर्गणाएँ पहुँची हों वो कैसे प्रभावित नहीं करेंगी।

एक बार एक वृद्धा अपने सामान की पोटली लेकर दूसरे ग्राम की ओर जा रही थी। गर्मी का समय था। वह वन से गुजर रही थी। तभी वृद्धा को घोड़े के टाप की आवाज सुनाई दी, उसने पीछे मुड़कर देखा तो एक युवक घोड़े पर सवार हुए चला आ रहा था। वृद्धा उस भारी पोटली के वजन से थक गयी थी। उसने उस युवक को आवाज दी 'ए बेटा! जरा सुनना' वह युवक उन वृद्धा की ओर आया व उसे बुलाने का कारण पूछा। 'बेटा! मैं बहुत थक गई हूँ, तुम तो घोड़े पर हो, मेरी यह सामान की पोटली जरा आगे वाले गाँव में छोड़ दोगे।' युवक कुछ चिड़चिड़ाता हुआ बोला "अरे, मेरे पास समय नहीं है, इस प्रकार कहता हुआ कुछ कदम आगे चला और तभी सोचा "मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, उस वृद्धा से पोटली ले लेता, इसे क्या पता मैं कौन हूँ, जब ये गाँव पहुँचेगी तब तक तो मैं कितने गाँव पार कर चुका होऊँगा। देख तो लूँ इसकी पोटली में कितना माल है, आसानी से मिल रहा है तो क्यों छोड़ूँ।"

इतने में ही वृद्धा के मन में भी विचार आया "अरे! मेरी तो बुद्धि ही खराब हो गई थी। मैं इस अनजान को अपनी पोटली देने को कैसे तैयार हो गई थी। यदि यह मेरी पोटली लेकर भाग जाता तो मेरी बेटी का विवाह कैसे होता, उसके लिए जो आभूषण बनवाएँ हैं, वे भी इसमें रखें हैं।

तभी वह युवक लौटकर वृद्धा के पास आया, बोला– माँ! लाओ पोटली मुझे दे दो, मैं आगे गाँव में छोड़ दूँगा। वृद्धा ने कहा–नहीं बेटा, मैं ले जाऊँगी।

युवक ने पुनः जोर देते हुए कहा 'आप थक जाओगी, लाओ मुझे दे दो।' वृद्धा ने कहा–नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, मैं धीरे-धीरे ले जाऊँगी। युवक ने कहा, माँ! अभी कुछ क्षण पहले तो आप कह रही थीं कि मैं आपकी पोटली ले जाऊँ, अब आपको क्या हो गया? वृद्धा ने कहा–नहीं, बेटा! कुछ नहीं। युवक बोला–कुछ तो हुआ है। अब आप अपनी पोटली मुझे क्यों नहीं दे रहीं, कोई आपसे कुछ कह गया क्या? वृद्धा ने कहा बेटा! "जो तुझसे कह गया वो मुझसे भी कह गया।"

जब युवक के मन में बेईमानी का भाव आया तो उस भाव ने वृद्धा को भी प्रभावित किया और उसने अपना सामान सुरक्षित कर लिया। व्यक्ति की वर्गणाओं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। हथेली में से वैसी ही वर्गणाएँ निकलती हैं जैसा सोच रहे होते हैं और हाथों से वे ही वर्गणाएँ भोजन में मिक्स हो जाती हैं जो सामने वाले को शारीरिक व मानसिक दोनों रूप से प्रभावित करती हैं। कुभावों का दुष्प्रभाव भी व्यक्ति पर पड़ता है, व्यक्ति के जैसे भाव होते हैं वैसा ही भोजन हो जाता है। अतः मैथुनादि के परिणामों में भोजन बनाने या करने की भूल न करें।

सर्व अशुभ परिणामों में भोजन निषिद्ध

रुदण - कंदण - घादाण, बंधण - मारण - वह-परिणामेसुं।
उव्वेलण - संतावण - कस्सण - घस्सण-विअणाणं च।।47।।

अस्सु - पडणे तावे य, उव्वेग - धम्म - णिंदा - परिणामे।
मोखरिय - कुंठासुं पि, उच्चाडणम्मि वसीकरणे।।48।।

तिव्वसोग - परिणामे, असुहजोजणाए मंतयालम्मि।
अइ - पच्छातावम्मि य, अवसादे दुहचिंतणम्मि वि।।49।।

इच्चाइ - असुहभावा, जदा जदा होंति भव्वजीवाणं।
ण कया वि करेज्ज तदा, पचणं भक्खणं धम्मिणो य।।50।।

अर्थ—रुदन, क्रंदन, अजीवघात, उद्वेलन, संतापन, कर्षण, वेदना, बंध, मारण, वध के परिणामों में, अश्रुपतन के समय, संताप में, उद्वेग व धर्म निंदा के परिणामों में, मौखर्य और कुंठा की अवस्था में, उच्चाटन व वशीकरण में, तीव्र शोक परिणाम, अशुभ योजना के षड़यंत्र काल में, अति पश्चाताप, अवसाद व दुःख चिंतन इत्यादि अशुभ भाव जब-जब जीव के होते हैं तब-तब धर्मात्माओं को भोजन निर्माण कार्य और भक्षण कभी भी नहीं करना चाहिए।

Virtuous people should never prepare and take food when there are impure (bad) feelings like weeping, violence, pain, torment, traction and bondage. They should never cook or eat food in anger, agitation, in feelings of criticising the religion, in state of mockery and frustration, during uprooting and hypnotism, conspiracy of inauspicious planning, intense grief, extreme repentance, depression and sad thought etc.

व्याख्यान–ग्रंथकार ने अन्य शुद्धियों का कथन जितनी गाथाओं में किया है उससे अधिक गाथाओं में भावशुद्धि का कथन किया है। जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म है जो हर चीज का सूक्ष्मता से विश्लेषण करता है। दृष्टिगोचर पदार्थों का तो प्रभाव मानव द्वारा देखने में आता है किन्तु भाव या परिणाम जो दिखाई नहीं देते वे और अधिक तीव्रता से व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। देश में बैठा एक व्यक्ति जब विदेश में बैठे व्यक्ति का स्मरण करता है, उसे फोन करता है तब कई बार ऐसा होता है कि सामने वाला कहता है मैं बस आपको फोन करने ही वाला था। भावनाओं का ऐसा प्रभाव अक्सर अनुभव में आता है।

एक बार एक राजा, मंत्री के साथ नगर भ्रमण के लिए निकला। घूमते-घूमते वे एक सेठ की दुकान के सामने से निकले। वह सेठ चंदन का व्यापारी था। सेठ की दृष्टि राजा से और राजा की दृष्टि सेठ से मिली। राजा कुछ क्षण पश्चात् मंत्री से बोले कि इस सेठ को कल मृत्युदंड देना है। महलों में पहुँचकर राजा ने पुनः पूछा, क्या उस सेठ के प्राणदंड की व्यवस्था हो गई। मंत्री बहुत बुद्धिमान व विवेकी था, उसने कहा–महाराज! क्षमा करें, किन्तु उसका अपराध क्या है? राजा ने कहा–हमारे आदेश का पालन किया जाए। राजा के आज्ञापूर्ण वचन सुन मंत्री चुप रह गया किन्तु मन में निरंतर चिंतन चल रहा था कि राजा के माध्यम से अन्याय होना उचित नहीं है।

यह सोचकर मंत्री उन सेठ के पास पहुँचा और उसके व्यापार आदि की कुशलता के विषय में बातचीत कर पूछा कि ''जब राजा का रथ इस मार्ग से गुजरा तब आप क्या सोच रहे थे?'' आशा के परे यह वचन सुन सेठ अचंभित हो गया और घबराते हुए बोला ''कुछ भी तो नहीं।'' मंत्री ने कहा–घबराओ नहीं, सत्य बताओ क्या सोच रहे थे, अन्यथा दंड के लिए तैयार हो जाओ। तभी उस सेठ ने हाथ जोड़ लिए बोला–मंत्री जी! क्षमा कर दो, मुझे अभयदान दो। मंत्री ने कहा स्पष्ट कहो, जो कहना है। सेठ ने कहना प्रारंभ किया, ''मंत्री जी! मैं चंदन का व्यापारी हूँ। बहुत लंबे समय से मेरा व्यापार नहीं चल रहा। गोदाम

चंदन की लकड़ी से भरा हुआ है। आज इस पापी मन में राजा को देख विचार आया कि यदि राजा की मृत्यु हो जाए तो मेरी सारी लकड़ियाँ बिक जाएँगी। मुझे क्षमा करें।''

मंत्री सारी बात समझ गए। वे राजा के पास पहुँचे और बोले—राजन्! बहुत लंबे समय से नगर में महायज्ञ का आयोजन नहीं हुआ। राज्य की सुख-शांति-समृद्धि व प्रजा के हित के लिए यदि महानुष्ठान किया जाए तो बहुत अच्छा होगा। इस अनुष्ठान के बाद ही उस सेठ को भी आपके कथनानुसार मृत्युदंड दिया जाएगा। राजा को मंत्री का प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा।

मंत्री ने उस सेठ का पूरा चंदन खरीद लिया। योजनानुसार बहुत बड़ा अनुष्ठान संपन्न हुआ। अब मंत्री पुनः सेठ के पास गया। सेठ बहुत प्रसन्न था, कहने लगा ''मंत्रिवर! हमारे राजा युगों-युगों तक जिएँ, उनको भगवान् दीर्घायु दे, मेरी भी उम्र उन्हें लग जाए। उनके समान राजा इस पृथ्वी पर कोई नहीं है जो प्रजा के हित के लिए इतने अनुष्ठान आदि कराए।'' यह सब देख मंत्री संतुष्ट हो राजा के पास पहुँचा और पूछा ''राजन्! उस दिन जिस सेठ के प्राणदंड की बात कही थी, उसका क्या करना है?'' राजा ने थोड़ा सोचा और बोले—''मंत्रिवर! उस सेठ का क्या अपराध था, ना जाने मेरे मन में निर्दोष को दंड देने का अन्यायपूर्ण विचार कहाँ से आया। मेरी संपूर्ण प्रजा खुश रहे।'' यह होता है वर्गणाओं का प्रभाव।

पूज्य गुरुदेव कहते हैं यदि किसी शत्रु को भी अपना मित्र बनाना चाहते हो तो बस अच्छा सोचना प्रारंभ कर दो। आपकी वर्गणाओं के प्रभाव से उसके भी बैर रूप परिणाम नष्ट हो जाएँगे।

वर्गणाओं के इन्हीं प्रभावों के कारण ग्रन्थकार निर्देश दे रहे हैं कि व्यक्ति कुभावों या बुरे परिणामों से युक्त होने पर भोजन बनाए भी नहीं और स्वयं करे भी नहीं। रोते समय, क्रंदन करते हुए, जीवघात करते हुए या हिंसादि भावों से युक्त होने पर, अत्यधिक संतापित होते हुए, कर्षण या अधिक पीड़ा-वेदना होने पर, बांधने, मारने या वध परिणामों से भोजन बनाने से उस भोजन का खाने वाले पर अत्यंत दुष्प्रभाव पड़ता है।

आँखों से आँसू गिर रहे हों, संताप हो रहा हो, मन दु:खी हो, कषायों का उद्वेग हो रहा हो, देव, गुरु धर्मादि के निंदा रूप निंदनीय परिणाम हो रहे हैं तब भी भोजन बनाना और खाना नहीं चाहिए। अधिक बोलते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिए। शास्त्रों में जो सप्त मौन स्थान कहे हैं उनमें एक स्थान भोजन करते हुए है। मौनपूर्वक भोजन करने से श्रुत की विनय होती है, ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है। अधिक बोलते हुए भोजन बनाने से मुख से थूकादि निकलकर गिर सकता है अथवा आवश्यकता से अधिक बोलने से सारगर्भित शब्द तो निकलते नहीं हैं, कुछ नहीं बोलने योग्य शब्द भी मुख से निकलते हैं जो भोजन बनाने के समय उचित नहीं है।

उच्चाटन, वशीकरण आदि के समय या मन में कुंठा होने पर, तीव्र शोक के परिणामों में, अशुभ योजना या षड्यंत्र बनाते समय भोजन न बनाएँ, अन्यथा उस भोजन को करने वाले की प्रवृत्ति षड़्यंत्रकारी और अनैतिक बनती है। अति पश्चाताप या संक्लेशता युक्त पछताते हुए, अवसाद अर्थात् तनाव या depression में, दु:खों के चिंतन आदि अशुभ परिणामों के समय भोजन बनाना व करना भी अनुचित है। मस्तिष्क से हो रहे विकिरण वातावरण में संप्रेषित तो होते ही हैं साथ ही भोजन में भी संप्रेषित हो व्यक्ति को प्रभावित करते हैं।

एक महिला किसी के यहाँ भोजन बनाने जाती थी। जिस मालिक के यहाँ वह भोजन बनाती थी वह एक मनोरोग से पीड़ित हो गया। वह मनोचिकित्सक के पास गया और बोला कि ''मुझे नींद आती है तो रात को एक सपना देखता हूँ कि मैं बर्बाद हो गया हूँ, मेरे पास अपना घर भी नहीं है और मैं दर-दर की ठोकरें खाता फिर रहा हूँ। अब यह बात मुझे दिन में भी प्रभावित करने लगी है।'' मनोचिकित्सक बहुत प्रयासों के बाद भी उसकी बीमारी का निदान नहीं कर पाया तो मनोचिकित्सक ने उस व्यक्ति से उसकी पारिवारिक स्थिति के विषय में जानना चाहा।

उस व्यक्ति ने बताया कि उसके परिवार में सभी लोग बाहर नौकरी करते हैं, वह अकेला ही घर पर रहता है। एक महिला उसके यहाँ भोजन बनाने आती है। उस महिला से जब मनोचिकित्सक ने पूछताछ की तो वह बोली कि अभी कुछ समय पहले मेरा मकान नगर निगम के लोगों ने तोड़ दिया है। मैं बर्बाद हो गई हूँ, दर-दर की ठोकरें खाती फिर रही हूँ। मकान की चिंता मुझे सता रही है और नींद भी नहीं आती है। उस महिला के विचार भोजन द्वारा मालिक तक इस हद तक संप्रेषित हो गए कि वह मनोरोगी हो गया।

अतः ग्रन्थकार यहाँ कह रहे हैं कि व्यक्ति किसी भी अशुभ परिणाम के साथ भोजन न बनाए और न ही ग्रहण करे। अशुभ परिणामों के साथ बना भोजन या किया गया भोजन सात्विकता की श्रेणी में नहीं आता। अशुभ परिणाम भोजन की सात्विकता को नष्ट कर देते हैं, जो शरीर में रोगोत्पत्ति का कारण बनता है। अतः महिलाएँ जब भी भोजन बनाएँ भजन, स्तोत्र आदि बोलते हुए, जापादि करते हुए बनाएँ और यदि स्तोत्रादि याद न हों तो सी.डी. आदि चलाकर छोड़ दें। प्रसंगवश बता दें कि भोजन बनाते या खाते समय अपने मोबाइल को भी हाथ न लगाएँ। मोबाइल आपके साथ हर जगह पहुँचता है, कुछ लोग

तो टॉयलेट में भी साथ लेकर जाते हैं, जहाँ से virus उस पर चिपक जाते हैं या दिन में कितनी बार गंदे हाथों से mobile को छूते हैं, और मोबाइल साफ तो होता नहीं अतः भोजन बनाते समय मोबाइल से भी दूर रहें।

भोजन बनाने वाली महिला प्रसन्न व विशुद्ध मन से भोजन बनाए और करने वाले भी इसी प्रकार प्रसन्नता से भोजन करें। पूज्य गुरुदेव कई बार संघ में कहते हैं कि जब भी आहार लेने चौके में जाओ तब चाहे नीरस हो या सरस, जो अंजुलि में आए यह सोचकर लो कि मैं अमृत का आहार ले रहा हूँ। ऐसे भोजन के पश्चात् औषधि की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्योंकि जिन भावों से भोजन किया जाता है वैसे ही एन्जाइम्स उत्पन्न होते हैं और वही रोगकारक व रोगशामक भी होते हैं।

अतः टी.वी., मोबाइलादि देखते हुए, मैगजीन आदि पढ़ते हुए न भोजन बनाएँ, न करें। सात्विक भोजन को सात्विक बनाए रखने के लिए परिणामों में सात्विकता आवश्यक है। अतः भावों की शुद्धि भी परमावश्यक है।

अशुद्ध कल्पना से भोजन अशुद्ध

जइ होज्ज सुद्धमदणं, किण्णु जीव-कप्पणं कुव्वदि तम्मि।
तं भोयणं असुद्धं, धम्मी कया वि णो भक्खेज्ज॥51॥

णर-पसु-देवाकिदीण, देवि-णारि-णेरइय-रक्खसाणं।
भोयणं वि णो करेज्ज, तं पावस्स कारणं होदि॥52॥

अर्थ–भोजन शुद्ध हो किन्तु यदि उस भोजन में जीवादि की कल्पना की जाती है तो वह अशुद्ध भोजन धर्मात्मा को कभी नहीं करना चाहिए। नर, पशु, देव, देवी, नारी, नारकी व राक्षस आदि की आकृति का भोजन कभी नहीं करना चाहिए। वह भोजन पाप का कारण होता है।

If any living creature is imagined even in pure food then a meritorious person should never have that impure food. One should never take that food which is in the shape of a human, animals, god, goddess, woman and dwellers of hell etc. that causes sin.

व्याख्यान–खान-पान का प्रदूषण व्यक्ति के विचारों को प्रदूषित करता है। विचारों का प्रदूषण हर प्रदूषण से अधिक खतरनाक होता है। वायु आदि प्रदूषण तो मात्र व्यक्ति के शरीर को प्रभावित करता है किन्तु विचारों का प्रदूषण शरीर, मन, मस्तिष्क, सभ्यता आदि सभी को प्रभावित करता है। बाह्य प्रदूषण तन को रोगी बनाता है किन्तु अंतरंग का प्रदूषण संस्कृति व संस्कारों को ही रोगी बनाकर रख देता है। संस्कृति-सभ्यता-संस्कारों की सुरक्षा के लिए खानपान पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है।

कई बार ऐसा होता है कि जो खाद्य पदार्थ बना है उसमें उपयुक्त पदार्थादि सब सात्विक हैं किन्तु कभी तो भोज्य पदार्थों में अशुद्ध पदार्थों की कल्पना हो जाती है और कभी करा दी जाती है। यदि किसी पदार्थ को देखकर कुछ गलत

भाव मन में आए, कुछ गलत कल्पना हो जाए, माँसादि का पिंड आदि लगे तो वह सात्विक होने पर भी त्याज्य है। आजकल विवाह, जन्मदिन आदि की पार्टियों में कुछ ऐसे व्यंजन बनवाते हैं जिनसे माँसाहार का आभास हो, जबकि वे पूर्ण शाकाहारी हैं। यदि शाकाहार में भी माँसाहार की संकल्पना कर उसे ग्रहण किया जा रहा है तो वह उसी अनुरूप पाप फल देगा।

आटे के मुर्गे की कहानी तो आपने सुनी ही होगी। जब राजा यशोधर को उनकी माँ चंद्रमती, देवी के सामने बलि देने के लिए प्रेरित करती है तब वे जीववध को न स्वीकारते हुए मना करते हैं कि राजा तो सबका रक्षक होता है और यदि रक्षक ही भक्षक बन जाए तो उनका रक्षक कौन होगा? माँ के खूब समझाने पर भी जब वह नहीं माना तो माँ ने कहा ''पुत्र! यदि तुम सचेतन जीव का बलिदान नहीं देना चाहते तो न सही, अचेतन जीव का ही बलिदान कर दो, जिससे वह प्रहार की वेदना का अनुभव न करे।''

यह सुनकर महाराज अपनी आँख बंद कर चुप रह जाते हैं। तब माता 'मौनं सम्मति लक्षणं' सूत्र के अनुसार पुत्र की स्वीकृति समझकर प्रसन्न हो जाती है और कहती है– हे पुत्र! एक आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि देने से न तो हिंसा होगी और न ही पाप लगेगा और देवी प्रसन्न हो जाएगी।

माता ने लेपकार को बुलवाकर आटे का सुंदर, जीवंत दिखाई देने वाला मुर्गा बनवाकर तैयार कर लिया। पुनः देवी के मंदिर पहुँचकर उसकी बलि कर दी जाती है। उसी समय चंद्रमती उस पर कुंकुम घोला हुआ जल छोड़ती है और उसे बहता हुआ रुधिर मानकर देवी को संतुष्ट करती है। पुनः माँ के कहने पर महाराज यशोधर और सभी लोग उस आट के मुर्गे को माँस पिंड समझकर भक्षण करते हैं। माता स्वयं भी उसे खाती है।

वह आटे का मुर्गा मात्र था, उसमें जीव नहीं था और महाराज यशोधर का तो जीवहिंसा का भाव भी नहीं था, वे प्राणिवध नहीं चाहते थे। फिर भी कल्पना

मात्र से मृत्यु को प्राप्त कर राजा यशोधर एक मयूरी के गर्भ में पहुँचता है व माँ चंद्रमती एक कुत्ती के गर्भ में पहुँचती है। इतना ही नहीं इस संकल्पी हिंसा के प्रभाव से उन्होंने लंबे समय तक कुगतियों में भ्रमण किया।

संकल्पी हिंसा का भी पूर्ण दोष लगता है। अतः ग्रन्थकार ने यहाँ कहा कि शुद्ध वस्तु में कभी गंदी, अभक्ष्य पदार्थों की कल्पना नहीं करनी चाहिए। खाद्य पदार्थों में यदि पशु, पक्षी, नर, नारी, देव, देवी, नारकी आदि की आकृति दी जाती है तो वह दूर से ही त्याज्य है। केक आदि को विभिन्न जीवों की आकृति में बनाया जाता है और यदि शाकाहारी भी उसका भक्षण करे तो उसे माँसाहार का दोष लगता है। आज बच्चों की कुछ Candies ऐसी आती हैं जिसमे पशु, पक्षी, आदमी आदि की आकृति होती है, chewingum आती है जिस shape में चाहो वह बनाकर देता है, फिर खेल-खेल में बच्चे कहते हैं पैर खा लिए, अब हाथ खा लिया, अब सिर खाएँगे इत्यादि। यह भाषा शाकाहारी या अहिंसक की नहीं हो सकती। इस प्रकार कहने से उन्हें घोर पाप का बंध होता है।

आजकल कुछ ऐसे पदार्थ बनते हैं जो होते तो शाकाहार हैं किन्तु माँसाहार की कल्पना उनमें करा दी जाती है। यहाँ पर उन्हीं के कुछ उदाहरण देते हैं—मावे को भूनकर हल्का पीला रंग लगाकर पीला कर लेते हैं तथा गोल करके चारों ओर मावे की सफेद पर्त चढ़ाकर तथा तलकर चाशनी में पका लेते हैं और इन्हें नाम दिया

जाता है–'शाकाहारी अंडे', जिसे खाते समय अंडे का आभास होता है। अथवा उबले आलू, पनीर चूरा आदि मिलाकर मसाला आदि डालकर तैयार करते हैं। इसे स्टार्च की बनी पतली सींक पर अथवा लोहे की सलाखों पर भून लेते हैं तथा सींक कबाब कहकर लोग खाते हैं। या इसी प्रकार मसाला तैयार कर आईसक्रीम स्टिक्स पर मोटी पर्त बना देते हैं व पकाकर ग्रेवी में डुबाकर वनस्पति मुर्गा व उसकी टाँग बना देते हैं और भोजन करते समय भी यही कहते हैं एक टाँग और लीजिए।

विवाह आदि में खीरे, टमाटर आदि से मगरमच्छ, कछुए, मछली आदि बनाते हैं। उन पशु की आकृतियों की सलाद को खाते हैं। या बर्थडे आदि पर केक बनाते हैं, कई बार पशुओं आदि की आकृति बनाते हैं। दीपावली पर चीनी के खिलौने बनाते हैं जिन्हें हाथी, घोड़े, चिड़िया, तोते आदि की आकृति में बनाते हैं। लोग इन्हें पूजा के बाद बाँटते और खाते हैं। इन सभी में संकल्पी हिंसा का पूर्ण दोष लगता है। यह अनेक कुगतियों में भ्रमण का कारण है।

अतः कोई भी ऐसे खाद्य पदार्थ जिसे देखकर आपके मन में गलत कल्पना आ जाए, अशुभ विचार आ जाए अथवा मनुष्य, पशु आदि के आकार का हो तो वह सर्वथा अभक्ष्य है, ऐसा भोजन करने से तीव्र पाप का बंध होता है।

अशुभ भाव युक्त वस्तु त्याज्य

जइ होदि असुह-भावो सुहवत्थू वि होदि असुहरूवो य।
तं वत्थुं उज्झेज्जा, कुभावेहि वत्थुं होदि तह।।53।।

अर्थ–यदि अशुभ भाव होता है तो शुभ वस्तु भी अशुभ रूप होती है। अतः उस वस्तु को त्याग देना चाहिए क्योंकि कुभावों द्वारा वस्तु भी उसी के समान होती है।

Auspicious thing also becomes inauspicious due to inauspicious feelings. That thing should definitely be discarded because the thing also become like that due to bad feelings.

व्याख्यान–वर्गणाओं के प्रभाव को व्यक्ति कई बार अनुभव करता है। मंदिर, तीर्थक्षेत्र आदि स्थानों पर जाता है तो मन अत्यंत शांत हो जाता है और यदि गंदे स्थानों पर जाता है तो मन वैसा ही हो जाता है। विज्ञान के अन्वेषण के परिणाम बताते हैं कि शुभचिंतक के द्वारा अच्छा सोचे जाने पर, यदि रोगी है तो उसके आरोग्य के विषय में भावना भाने से उसकी W.B.C. वृद्धिंगत हो जाती हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति कई बीमारियों से बच जाता है। और किसी का अच्छा सोचने से सोचने वाले का तो अच्छा होता ही है।

यदि कोई व्यक्ति अच्छी भावनाओं के साथ रूखा-सूखा भोजन भी देता है तो वह भी अमृत तुल्य होता है किन्तु यदि बुरी भावनाओं से भोजन दिया जाता है, पकवान तो उत्तम हों किन्तु देने वाला अपशब्द या अशुभ भावों से दे रहा हो तो वे पकवान भी विष तुल्य फल दे सकते हैं अतः अशुभ भावों के द्वारा दिया गया भोजन कदापि ग्रहण न करें। अशुभ परिणामों से वह वस्तु भी अशुभ

हो जाती है, अभक्ष्य हो जाती है। यही कारण है कि माँ के हाथ का भोजन सर्वोत्तम स्वीकार किया गया है। जिस प्रेम, वात्सल्य, स्नेह व ममता से माँ अपने बच्चे को भोजन कराती है संभवतः अन्य कोई और नहीं करा सकता। माँ की प्रशस्त, संस्कारित भावनाएँ भोजन के साथ शिशु में पहुँचती हैं, जो उसके लिए आरोग्यवर्द्धक होती हैं।

क्योंकि अशुभ भावों के सम्मिश्रण से भोजन भी अशुभ रूप हो जाता है अतः सदैव त्याज्य है।

भावशुद्धि आवश्यक

भोयण-कत्तू दायी, असुहभावं कुव्वदि तम्हि याले।
असुहभावेहिं होदि, वत्थुं अवि सव्वदा असुहं॥54॥

अर्थ–भोजन करने वाला और कराने वाला उस भेजन करने या बनाने के समय में अशुभ भाव करता है तो अशुभ भावों के द्वारा वस्तु भी सदा अशुभ रूप होती है।

If the eater and food-server has bad feelings while taking or serving food then food also becomes impure because of bad feelings.

व्याख्यान–भोजन कराने, बनाने और खाने वाले के भावों में शुद्धता हो तो सात्विक भोजन की सात्विकता बनी रहती है। शुभ भावनाएँ भोजन को और अधिक स्वादिष्ट व असरदार बना देती हैं। मान-सम्मान व प्रेमपूर्वक परोसा गया भोजन ही ग्राह्य होता है। जबकि अपमान पूर्वक परोसा गया व्यंजन भी कदापि ग्राह्य नहीं है। तुलसीदासजी ने कहा भी है–

आव नहीं आदर नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी वहाँ न जाइये कंचन बरसे नेह॥

आदर-सम्मान के साथ जहाँ बुलाया जाए, वस्तु प्रदान की जाए वह तो ठीक है किन्तु इसके विपरीत यदि कहीं सोना भी बरस रहा हो और वहाँ अपमान होता है तो वहाँ नहीं जाना ही श्रेष्ठ है। इसी प्रकार यदि भोजन परोसने या बनाने वाले के भाव शुद्ध होंगे तब तो वह भोजन अमृत तुल्य है अन्यथा उसे विष तुल्य ही जानना चाहिए। अन्य भी कहा है–

मान सहित विष खायके, शंभु भए जगदीश।
बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो शीश।।

अशुभ भाव सात्विक भोजन को भी अभक्ष्य, असात्विक या अग्राह्य बना देते हैं। अतः ऐसे भावों से भोजन न बनाएँ और भोजन करने वाला भी प्रसन्नता व शांत मन के साथ भोजन ग्रहण करे।

जैसा भाव वैसा द्रव्य

भयेण देदि भोयणं, भयजुत्तो कुव्वदि भोयणं जो वि।
भयुप्पण्णो होदि जह, भावो हु तह दिस्सदि दव्वं॥55॥

अर्थ–जो व्यक्ति भय से अर्थात् भयभीत होकर भोजन देता है या करता है, भययुक्त भोजन कराता है तो उससे भी भयोत्पन्न होता है। अत: जैसा भाव होता है वैसा ही द्रव्य दिखता है।

A person who eats or gives the food out of fear also becomes fearful. Therefore, as there is feeling so the thing is seen.

व्याख्यान–भावों का जैसा संमिश्रण भोजन में होता है वैसा ही प्रभाव भोजन में देखने को मिलता है। यहाँ ग्रन्थकार एक भाव 'भय' को लेकर कह रहे हैं कि यदि व्यक्ति भय युक्त भावों से भोजन करता है तो उसके अंतरंग में भय का संचार और अधिक होता है और यदि भययुक्त व्यक्ति द्वारा भोजन परोसा जाए तो वह भोजन करने वाला व्यक्ति भी अकारण भयभीत हो जाता है।

यहाँ 'भय' तो उपलक्षण मात्र है। अर्थात् किसी ने कहा **'दधि-काकेभ्यो रक्षताम्'** दही की कौओं से रक्षा करो। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य पक्षी आदि से नहीं करनी। जैसे यहाँ कौआ उपलक्षण मात्र है वैसे ही गाथा में भय भाव उपलक्षण मात्र है। अर्थात् भय, शोक, बैर, द्वेष आदि जितने भी अशुभ भाव हों उन सब भावों से युक्त होने पर भी भोजन निर्माण व ग्रहण करना नहीं चाहिए।

भावों का संप्रेषण चेतन-अचेतन सब पदार्थों को प्रभावित करता है। मन का वह भाव जितना प्रबल, पावरफुल होता है उतना ही अपना कार्य करने में समर्थ होता है। एक बार विदेशी बादशाह ने अपनी राजसभा में सभासदों से प्रश्न किया-'भारत के बादशाह ज्यादा क्यों जीते हैं?' मंत्री आदि ने अनेक प्रकार से उत्तर देकर संतुष्ट करने का प्रयास किया किंतु संतुष्टिजनक उत्तर नहीं दे सके।

अंत में निर्णय हुआ कि भारत जाकर वहाँ के बादशाह से ही इसका उत्तर पूछा जाए। निर्णयानुसार बादशाह ने 500 सुभटों को भारत के एक बादशाह के पास उत्तर प्राप्त करने के लिए भेज दिया।

सुभटों ने आकर यथायोग्य सम्मानपूर्वक बादशाह के सामने अपना प्रश्न रखा। बादशाह ने उन्हें पहले विश्राम आदि करने को कहा। पुनः सुभट लौटकर आए और वही प्रश्न पूछा, किंतु राजा ने फिर टाल दिया। दो-चार बार टालने के बाद बादशाह ने कहा–जहाँ आप लोग रुके हैं उस मकान के सामने एक बरगद का वृक्ष है। जिस दिन वह जलकर भस्म हो जाएगा, उस दिन मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दूँगा। यह बात सुनकर उन्हें तनाव हो गया कि अब कितने लंबे समय तक अपने देश नहीं जा सकेंगे, परिवारजनों से नहीं मिल सकेंगे। अब तो हमें मृत्यु पर्यंत भारत में ही रहना पड़ेगा क्योंकि यह हरा-भरा इतना बड़ा वृक्ष कभी जल नहीं सकता, वृक्ष के जले बिना बादशाह हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं देगा और उसके बिना हम अपने देश नहीं लौट सकते।

अब इस तनाव के कारण रात-दिन जब भी वे उस वृक्ष को देखते तो सोचते कि ''हे भगवान्! यह वृक्ष कब जलेगा?'' आखिर उन 500 सुभटों की दुर्भावनाओं के कारण 6 महीने में ही वह वृक्ष जलकर भस्म हो गया। वृक्ष को जला देख सुभट खुशी से बादशाह के पास पहुँचे। बादशाह ने कहा–''यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। भारत की प्रजा अपने बादशाह के प्रति हमेशा सद्भावनाएँ रखती है, उसके अधिक से अधिक जीने की कामनाएँ करती है। उसका भी कारण यह है कि भारत का बादशाह अपनी प्रजा का पिता के समान पालन-पोषण करता है। वह स्वयं दुःख सहन कर लेता है लेकिन प्रजा के दुःख को वह नहीं देख सकता।

लोक में भावों के अनुसार प्रभाव देखा जाता है। यदि 'पेड़ जल जाए' ऐसी भावना तीव्रता से की तो वह जल गया। जब जैसा भाव होता है, वैसा ही द्रव्य हो जाता है और इस नियम से अच्छे भावों से भोजन अच्छा व स्वास्थ्यवर्द्धक होता है और बुरे भावों से वह बुरा व स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

दुर्भावयुक्त भोजन रोगादि दायक

दुब्भावेहिं करेदि, करावेदि अणुमण्णेदि जो जीवो।
ताणं कुफलं वि होदि, दुब्भाव-दुह-रोय-रूवेण॥56॥

अर्थ–यदि जो जीव दुर्भावों के द्वारा भोजन करता है, कराता है, अनुमोदन करता है तो उनका कुफल भी दुर्भाव, दुःख और रोग के रूप से होता है।

If a person takes, gives or approves the food with bad feelings then their bad results also come in the form of bad emotions, sorrow and diseases.

व्याख्यान–कर्त्ता अर्थात् भोजन को बनाने वाला, दाता अर्थात् भोजन परोसने वाला और भोक्ता अर्थात् भोजन करने वाला। इन सभी की भावनाएँ शुभ व शुद्ध होनी चाहिए। इतना ही नहीं भोजन करने-कराने वाले के साथ जो करने-कराने वाले की अनुमोदना करने वाला है उसके भावों की शुद्धता भी आवश्यक है। दुर्भावनाएँ भोजन को विष के समान बना देती हैं। दुर्भावनाओं से युक्त वह भोजन व्यक्ति में दुर्भाव, दुःख और रोग का कारण बनता है।

व्यक्ति का 35% धन शरीर को निरोगी बनाने में खर्च होता है, कुछ का इससे कम या ज्यादा भी हो सकता है। गुरुवर श्री कहते हैं यदि व्यक्ति अच्छी भावनाओं से भोजन करे या कराए तो 35% तो बहुत बड़ी बात है 3-5% भी उसे औषधि पर खर्च नहीं करना पड़ेगा। किन्तु शुद्धि का ध्यान रखो, मात्र द्रव्य की शुद्धि नहीं, भावों की शुद्धि भी अत्यंतावश्यक है। यदि खानपान की अशुद्धि दूर हो जाए तो सब अशुद्धि निकल जाएँगी। पारिवारिक-सामाजिक माहौल भी परिशुद्ध हो जाएगा।

अशुद्ध स्त्री संगति त्याज्य

असुद्धित्थि-संगेणं, सुद्धवत्थुं वि दिस्सदि असुद्धं च।
पुण्णपुरिसो जइ गहदि, तस्स वि होदि असुद्धभावो॥57॥

अर्थ–अशुद्ध स्त्री की संगति से शुद्ध वस्तु भी अशुभ दिखती है और पुण्यात्मा पुरुष भी यदि उस वस्तु को ग्रहण करता है तो उस पुण्यात्मा का भी अशुद्ध भाव हो जाता है।

Even a pure thing becomes impure by associating with menstruating woman. And if a virtuous man takes that thing then his feelings may also be impure.

व्याख्यान–स्त्री मासिक धर्म के समय अत्यंत अशुद्ध व अस्पृश्य मानी जाती है। त्रिदिवसों को शास्त्रों में एक प्रकार का सूतक ही कहा गया है–

आर्तवं सौतिकं चैव, मात्र्यवं तत्सुसंगमम्।
अशौचं कथितं देवैः, द्विजानां सुव्रतात्मनाम्॥

जिनेंद्र भगवान् ने व्रत पालने वाले त्रिवर्णों को चार प्रकार का सूतक बतलाया है। पहला आर्तव अर्थात् मासिक धर्म से होने वाला, दूसरा सौतिक–प्रसूति से होने वाला, तीसरा मार्त्यव– मृत्यु से होने वाला और चौथा इन तीनों के संसर्ग से होने वाला होता है।

मासिकधर्म युक्त स्त्री की परछाई अचार, पापड़ादि पर पड़ते ही वे खराब हो जाते हैं। टाइफाइड आदि वाले के पास ऐसी स्त्री पहुँच जाए तो उसका टाइफाइड बिगड़ जाता है और अधिक curable हो जाता है। वह स्त्री पेड–पौधों के पास जाए तो मुरझा जाते हैं। इसका कारण ऐसी स्त्री के शरीर से उत्पन्न जहर ही है।

अमेरिका के प्रोफेसर 'शीक' ने यह प्रमाणित किया है कि ऐसे समय में नारी के शरीर में ऐसा कोई प्रबल विष होता है कि वह जिस बगीचे में चली जाती है उस बगीचे के फूल-पत्ते आदि सूख जाते हैं, पौधे मुरझा जाते हैं, फल सड़ जाते हैं, वृक्ष में कई बार तो कीड़े भी लग जाते हैं। इस विष के संसर्ग में आई हुई चीजों को भी विष के समान समझकर त्याग कर देना चाहिए।

फ्रांस में ऐसे समय में स्त्रियों को शक्कर की फैक्ट्री में प्रवेश नहीं दिया जाता क्योंकि उनके प्रवेश से शक्कर काली पड़ जाती है। दक्षिण फ्रांस में भी रेशम की फैक्ट्री में इन दिनों में स्त्रियों को वहाँ खड़े रहने नहीं दिया जाता है क्योंकि उनकी उपस्थिति मात्र ही रेशम की सोफ्टनेस कम कर देती है। जर्मनी में शराबादि मादक पदार्थों के गोदाम में ऐसी स्त्री का प्रवेश निषेध है क्योंकि उसके प्रवेश से वे पदार्थ खट्टे व खराब हो जाते हैं। लेबनान में किसान लोग ऐसे समय में स्त्रियों को खेत पर नहीं बैठने देते और न ही मजदूरी आदि पर जाने देते हैं।

विश्वभर इसे स्वीकार करता है, लगभग सभी धर्मों में इसे स्वीकार किया है। जैसा कि बताया कि वर्गणाओं का संप्रेषण होता है, उपस्थिति मात्र से खाद्य पदार्थ खराब हो जाते हैं तब स्पर्शित भोजन तो कदापि ग्राह्य नहीं। उसके संस्पर्श से भोजन भी विषैला हो जाता है व उसे ग्रहण करने वाले में कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बुद्धिक्षीण व स्मृति कमजोर हो जाती है। ऐसी स्त्रियों का प्रभाव पशुओं पर भी पड़ता है, कुछ पशुओं की तो हृदयगति अचानक बंद हो जाती है। यह सब परीक्षण किए गए हैं।

अतः अशुद्ध अवस्था में स्त्रियों को कोई गृहकार्य नहीं करना चाहिए। कहा भी है—

गृहकार्यं न सा कुर्याद्, गानं नृत्यं च वादनम्।
सीवनं रन्धनं हास्यं, पेषणं जलगालनम्॥
विदधाति न षट्कर्म, ध्यायन्ती श्री जिनं हृदि।
गुरुदेवजनैः सार्धं, कुर्यान्नैव च भाषणम्॥

अशुद्धावस्था में तीन दिन तक स्त्री को गृहकार्य नहीं करना चाहिए। गाना, नाचना, वाद्य बजाना, वस्त्रादि सीना, चाय, नाश्ता एवं रसोई आदि बनाना, हास्य करना, पीसना एवं जल आदि छानना ऐसे अन्य और भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए। षट्कर्मों में से कोई भी धर्म-कर्म उसे नहीं करना चाहिए। उस समय केवल अपने हृदय में जिनेंद्र भगवान का स्मरण करते रहना चाहिए तथा गुरु एवं अन्य जनों के साथ किसी प्रकार की भी बातचीत नहीं करनी चाहिए। **''दिनत्रयं त्यक्त्वा शुद्धा स्याद् गृहकर्मणि''** स्त्री तीन दिन बाद अर्थात् चतुर्थ दिवस ही गृहकार्यों के योग्य होती है। त्रिदिवस तक उसे पूर्णतया मर्यादा का पालन करना चाहिए व गृह वस्तुओं का संस्पर्श नहीं करना चाहिए। ऐसा भोजनादि जहाँ होता है वहाँ बीमारियाँ तो पनपती ही हैं और धन, संस्कार आदि भी हीनता को प्राप्त होते हैं।

कई बार बच्चियाँ प्रश्न करती हैं कि यह समय जो मासभर में आता है, इसमें हमारी क्या गलती है? हमें इस प्रकार अलग क्यों कर दिया जाता है? तो बता दें इसमें गलती की बात नहीं है। कुछ चीजें स्वाभाविक होती हैं और स्वभाव में कोई तर्क नहीं होता। हम पूछें अग्नि गर्म क्यों होती है, अभव्य मोक्ष क्यों नहीं जाता उसकी क्या गलती है तो यह भी स्वभाव है। प्रकृति के विरुद्ध जाना उचित नहीं है। कहा भी है–

जा तन की झांई पड़े अँधो होत भुजंग।
तुलसी बाकी कौन गति जो नित नारी संग॥

यदि अशुद्धि के समय में स्त्री की परछाई सर्प के ऊपर पड़ जाए तो सर्प अंधा हो जाता है तब ऐसे समय जो उसके हाथ का बना भोजन खाए, उसके साथ रहे तब वह स्वस्थ कैसे रह सकता है, उसकी बुद्धि उच्च कैसे हो सकती है।

जो स्त्रियाँ अशुद्धावस्था में अशौच का पालन नहीं करती, सभी को छूती हैं या भोजन बनाकर सभी को खिला देती हैं वे इस लोक में स्वास्थ्य हानि के साथ-साथ धार्मिक परंपरा की हानि करती हैं तथा पाप का संचय करके अगले भव की भी हानि कर लेती हैं। अतः अशुद्ध स्त्रियाँ भोजन न बनाएँ और न ही परोसें। ऐसी स्त्री के हाथ का भोजन करने से शरीर रोगों का घर बनता है, विचारों में अपवित्रता, वासना, तामसिकता एवं विकार उत्पन्न होता है, घर में धनादि की हीनता होती है व व्यक्ति समय से पूर्व ही स्वमृत्यु से मिलने की तैयारी कर लेता है।

ग्रंथकार ने पुण्यात्मा शब्द पर जोर देते हुए कहा है कि व्यक्ति स्वयं को कितना भी पुण्यवान् माने किन्तु इससे प्रभावित हुए बिना वह भी नहीं रहता तब सामान्य व्यक्तियों की तो बात ही दूर है। अतः अशुद्ध स्त्री से संस्पर्शित भोजन, जलादि सदैव त्याज्य है।

आहार में शुद्धि

सुद्धाहारम्मि होज्ज, सया सुद्धी मण-वयण-कायाणं।
खेत्त-भाव-यालाणं, किदाइ-तिसुद्धी वि णियमेण॥58॥

अर्थ–आहार में निश्चय ही सदा मन, वचन, काय की शुद्धि या क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि एवं कृत, कारित, अनुमोदना रूप तीन शुद्धि नियम से होनी चाहिए।

In food there should always be purity of mind, of speech, of body or purity of place, time and emotion and also in the form of doing, cause and approval.

व्याख्यान–आहार या भोजन देने वाले व करने वाले दोनों के मन, वचन व काय शुद्ध होने चाहिए। ग्रंथकार स्वयं इन शुद्धियों का विवेचन आगे करेंगे अतः यहाँ संक्षेप में कहते हैं–सर्वप्रथम कहा मन शुद्धि अर्थात् मन में कोई अशुभ, अशुद्ध या खोटे परिणाम न हों। वचन शुद्धि अर्थात् प्रेमपूर्वक, मिष्ट शब्दों का ही प्रयोग करना यह वचन शुद्धि है एवं कायशुद्धि अर्थात् पैर-हाथ-मुखादि अच्छे से धोकर शुद्ध वस्त्र पहनना कायशुद्धि है।

पुनः कहा क्षेत्र, काल व भाव। यहाँ ग्रंथकार ने द्रव्य शुद्धि का कथन नहीं किया। वैसे तो द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव शुद्धियों का कथन पूर्व गाथाओं में किया जा चुका है किन्तु यहाँ द्रव्य का अलग से कथन इसलिए नहीं किया क्योंकि यहाँ द्रव्य शुद्ध ही स्वीकार किया गया है। ग्रन्थकार ने प्रथम शब्द ही लिखा-'सुद्धाहारम्मि' अर्थात् शुद्ध आहार। तब शुद्ध द्रव्य या आहार का ही विषय है तो पुनः उसे लिखना निरर्थक होता। आचार्य श्री कह रहे हैं कि शुद्धाहार में भी क्षेत्रादि की शुद्धि होना आवश्यक है।

क्षेत्र भी व्यक्ति को प्रभावित करता है। मार्किट से गुजरने पर वस्तुओं को देख आसक्ति के परिणाम आते हैं तो मंदिरादि जाकर साधुओं को देख त्याग के परिणाम उत्पन्न होते हैं। अच्छे स्थान पर भोजन करने से मन अच्छा व प्रफुल्लित होता है जबकि क्षेत्र की अशुद्धता माना स्लॉटर हाउस के पास कोई भोजन करने बैठे तो कर ही नहीं पाएगा, परिणामों में विकृति होगी और कदाचित् किसी ने खाने का प्रयास भी किया तो अशुभ फलदायक ही होगा। क्षेत्र के निमित्त से संस्कारों में परिवर्तन हो जाता है। एक घटना आती है–

महाभारत का युद्ध प्रारंभ होना था। श्रीकृष्ण ने सोचा युद्ध के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जहाँ एक-दूसरे के प्रति मोह परिणाम जागृत न हों, क्योंकि युद्ध भाई-भाई के बीच होना है। ऐसे स्थान को खोजने के लिए वे कई नगरों, गाँवों, वनों में घूमें किन्तु अभी तक ऐसा स्थान नहीं मिला था जो भाई-भाई के युद्ध के लिए उपयुक्त हो। खोजते-खोजते वो एक खेत पर पहुँचे जहाँ एक किसान (जाट) रहट चला रहा था। दोपहर का समय था तभी उसकी पत्नी भोजन लेकर आयी। जाटनी के आते ही वह किसान काम छोड़ भोजन करने लगा। वह थका हुआ था। भोजन करने के बाद वह वृक्ष की छाया में थोड़ी देर लेट गया। ठंडी हवा के स्पर्श से उसे नींद आ गई। इधर वह स्त्री रहट चलाने लगी। पानी का वेग अधिक बढ़ गया और वह बाँध को तोड़ क्यारियों में भरने लगा। उस स्त्री ने बिना कुछ सोचे समझे तुरंत अपने बालक को झोले में से निकालकर बांध में लगा दिया व पुनः अपने काम में जुट गई।

कुछ समय पश्चात् किसान उठा। उसने अपने हल को संभाला। उधर स्त्री ने बालक को बांध में से निकाला, तब तक वह बालक मर चुका था। बालक को मरा देख उस स्त्री ने गड्ढा खोदकर बालक को गाड़ दिया। यह सब देखकर उन्होंने यह निश्चय किया कि यह भूमि युद्ध के योग्य है क्योंकि यहाँ एक माँ में भी बच्चे के प्रति मातृत्व भाव नहीं है, ममता नहीं है तो यहाँ भाई-भाई के प्रति प्रेम भी नहीं उमड़ सकता। यह उस क्षेत्र का प्रभाव था।

क्षेत्र का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है अतः जहाँ भोजन करना हो वह क्षेत्र शुद्ध हो, साफ व स्वच्छ हो। कहीं गंदगी, कूड़ा-करकट पड़ा है, जीव मरे पड़े हैं ऐसे स्थान पर भोजन नहीं करना चाहिए

काल अर्थात् समय। समय का भी व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव पड़ता है? अष्टमी-चतुर्दशी के दिन लोग मुख्यता से उपवास रखते हैं, हरे फल-सब्जी आदि का त्याग करते हैं क्योंकि इन दिनों में समुद्र में पानी की वृद्धि होती है, मनुष्यों में भी इसका प्रभाव पड़ता है। उसके अंदर चोरी, क्रोध, कामवासनादि के परिणाम उत्पन्न होते हैं अतः परिणाम शांति के लिए व पापों से बचने के लिए उपवास, व्रतादि करते हैं।

संध्याकालों में पढ़ाई के लिए मना किया जाता है और कम से कम tough subjects जिनसे मस्तिष्क पर अधिक जोर पड़ता हो वह तो बिल्कुल नहीं पढ़ना चाहिए। इससे स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है व मानसिक रोगों की संभावना रहती है। हर कार्य के लिए उचित समय होता है उसी प्रकार भोजन के लिए भी समय होता है, उस उचित काल में ही भोजन किया जाना चाहिए। भोजन कब किया जाना चाहिए कब नहीं इसका कथन पूर्व में किया जा चुका है।

पुनः कहा भावशुद्धि। भावशुद्धि के विषय में भी पूर्व गाथाओं के माध्यम से जाना जा चुका है।

मन, वचन, काय व क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि कहने के पश्चात् यहाँ कृत, कारित व अनुमोदना की शुद्धि का भी कथन करते हैं। कृत यानि करना, कारित यानि कराना व अनुमोदना यानि करते हुए की त्रियोग से सहमति प्रकट करना। आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी के अनुसार–**''कृत् वचनं स्वातन्त्र्य प्रतिपत्यर्थम्''** अर्थात् कर्ता की कार्य विषयक स्वतंत्रता दिखलाने के लिए कृत वचन दिया है। **''कारिताभिधानं परप्रयोगापेक्षम्''** कार्य में दूसरे के प्रयोग की अपेक्षा दिखलाने के लिए 'कारित' शब्द रखा है। **'अनुमत शब्द : प्रयोजकस्य मानस-परिणाम प्रदर्शनार्थः।**[1] करने वाले के मानस परिणामों की स्वीकृति अनुमत या

1. राजवार्तिक।

अनुमोदना है। स्वयं तो वह कार्य नहीं करना किन्तु दूसरे के द्वारा किए जाने पर उसका प्रसन्न होना यह अनुमोदना ही है। अतः जो कार्य कर रहा है वह कर्ता शुद्धावस्था में हो, उसने स्वच्छता का पूर्णतया ध्यान रखा हो, हाथ-पैरादि साफ हों, वस्त्र भी स्वच्छ हों। जो लोग होटलादि पर भोजन करते हैं उनके तो कोई भी शुद्धि संभव नहीं है अतः होटलादि का भोजन तो सदैव ही त्याज्य है। जो कार्य करा रहा हो, मानो कोई निर्देश भी दे रहा हो या करते हुए की अनुमोदना भी कर रहा हो तो ऐसे व्यक्ति की शुद्धता भी आवश्यक है क्योंकि वह भी व्यक्ति को प्रभावित करती है। अतः भोजन बनाते, परोसते व करते समय इन शुद्धियों का ध्यान रखना परमावश्यक है।

शुद्ध मन

णिम्मलभावजुत्तो य, आरोग्ग-सुह-संति-वड्ढगो मणो।
सत्ति-दया-भत्तीहि, पुण्णजुदो होदि सुद्धमणो॥59॥

अर्थ–निर्मल भाव से युक्त, आरोग्य-सुख-शांति वर्द्धक, शक्ति, दया, भक्ति व पुण्य से युक्त मन शुद्धमन होता है।

A mind which is filled with pure emotions, enhancer of health, pleasure and peace and endowed with strength, kindness, devotion and virtuous deeds is pure.

व्याख्यान–विचारों की शुभताशुभता का प्रभाव भोजन पर अवश्य पड़ता है। अत: ग्रन्थकार यहाँ मन के शुद्ध होने का कथन करते हैं। शुद्ध मन कौन सा माना जाता है उसके लिए कहते हैं वह निर्मल भावों से युक्त हो। यदि मन में किसी के अहित का विचार आ रहा है कि इसका बुरा हो जाए, ये फेल हो जाए, उसका loss हो जाए, इसके साथ कोई दुर्घटना घट जाए इत्यादि तो वह मन अशुभ कारक है **'मन एव मनुष्याणां, कारणं बंधमोक्षयो:'** मनुष्य का मन ही बंध व मोक्ष का कारण है। वचन व काय तो विश्राम भी कर लें किन्तु मन अहर्निश चलता रहता है। मन की गति बहुत तीव्र है, यह क्षणभर में ही तीनों लोक की यात्रा कर लेता है। जितना पुण्य व पाप व्यक्ति मन से कर लेता है उतना अन्य योग से नहीं। मन से शुभ सोचकर असीम पुण्य का बंध भी कर सकता है तो अशुभ सोचकर असीम पाप का बंध भी कर सकता है।

एक समय भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण विपुलाचल पर्वत पर आया हुआ था। समवसरण में मुख्य श्रोता मगध के राजा श्रेणिक अपनी प्रजा के साथ प्रभु दर्शन को जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक श्वेतवाहन नामक मुनिराज को ध्यानस्थ देखा। उनकी सौम्य-शांत मुद्रा को देख उनका हृदय भक्ति से गद्गद् हो गया। उनके दर्शन कर वे समवसरण में पहुँचे एवं प्रदक्षिणादि दे उन्होंने पूछा

‘भगवन्! मैंने मार्ग में एक मुनिराज के दर्शन किए, वे ध्यान में संलग्न थे। मैं जानना चाहता हूँ कि यदि अभी उन्हें आयु का बंध हो गया तो कौन सी आयु का बंध होगा।’ गणधर देव ने कहा यदि अभी उन्हें आयु का बंध हो गया तो वे सप्तम नरक जाएँगे, अब पंचम नरक, अब प्रथम नरक, अरे! अब तिर्यंच गति, अब मनुष्य गति, अब प्रथम स्वर्ग जाएँगे, अब अष्टम स्वर्ग, अब सोलहवें स्वर्ग जाएँगे। अरे! यदि अब बंध हुआ हो अनुदिश में जन्म लेंगे। इतने में ही राजा श्रेणिक ने आकाशमार्ग से गमन करते कुछ देवों को देखा, पूछा प्रभु! ये सब कहाँ जा रहे हैं? वे बोले–अभी तुम जिन मुनिराज के विषय में पूछ रहे थे उन्हें केवलज्ञान हो गया है, सब वहीं जा रहे हैं।

यह सुनकर राजा अत्यंत अचंभित हुआ। कहने लगा “प्रभु! मैं कुछ समझ नहीं पाया।” अभी कुछ समय पहले जिनकी आयु के विषय में ऐसा कह रहे थे उन्हें केवलज्ञान भी हो गया, ऐसा क्या कारण रहा? तब उन्होंने बताया कि जिस समय आप उनके दर्शन कर आगे बढ़े तो पीछे दो सैनिक उनके विषय में चर्चा करने लगे। एक सैनिक ने कहा–धन्य हैं, सब कुछ त्यागकर, दिगंबर वेष धारण कर यहाँ विशुद्ध ध्यान में लीन हैं। यह सुन दूसरा सैनिक बोला “अरे! क्या फायदा है इस सबका? छोटी आयु में ही पुत्र को राज्य सौंप दिया। अब शत्रु देश का राजा उसे बार–बार परेशान कर रहा है।

ये शब्द श्वेतवाहन मुनिराज के कर्णगोचर हो गया, उनके चिंतन की धारा तुरंत मुड़ गई। वे सोचने लगे–अच्छा, जिस शत्रु को मैंने कई बार पराजित किया, आज मेरी अनुपस्थिति में मेरे पुत्र को परेशान कर रहा है और तीव्र क्रोध उत्पन्न हो गया। ध्यान में ही युद्ध क्षेत्र में पहुँच गए। चक्रव्यूह आदि की रचना हो गई, शत्रुओं का संहार करने लगे। राजा से लड़ाई करते–करते जब पराजित से होने लगे तब अत्यंत क्रोध में सिर से मुकुट उठाकर फेंकने के लिए ज्यों ही सिर पर हाथ गया तो देखा सिर पर न तो केश हैं और न ही मुकुट। विचारने लगे ‘अरे! यह क्या, मैं तो मुनिराज हूँ। यह मैं कैसा चिंतन करने लगा, वास्तव में मोह बड़ा बलवान

है। जिन कर्मों के कारण व्यक्ति अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है उन कर्मों को नष्ट करना ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है।' इत्यादि विचारकर परिणामों को और निर्मल बनाया और इतने अधिक निर्मल व शुद्ध परिणाम किए कि क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो शुक्लध्यान के बल से चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया।

ओह! मन की गति बड़ी विचित्र है। कुछ क्षण पूर्व मन से उत्पन्न जिन विचारों के कारण नरकायु का बंध संभव था, कुछ क्षण बाद उसी मन से उत्पन्न शुभ व शुद्ध परिणामों से केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया।

अतः कहा है–

जलेन जनितं पंकं, जलेन परिशुद्ध्यति।
चित्तेन जनितं कर्मं, चित्तेन परिशुद्ध्यति॥

अर्थात् जल से ही कीचड़ उत्पन्न होती है और जल से ही वह साफ होती है। इसी प्रकार चित्त से ही कर्म उत्पन्न होते हैं और चित्त से ही नष्ट भी होते हैं।

मन के विचार शीघ्रता से बदलते हैं। अतः शुद्ध मन वही है जहाँ परिणामों की निर्मलता, सरलता व सहजता हो। गुरुजी ने 'सहज' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा था कि जहाँ स–सीता सा समर्पण, ह–हनुमान की भक्ति और ज–जनक सी आध्यात्मिक वृत्ति हो वहाँ सहजता होती है, वही व्यक्ति सहज होता है।

छल–कपट आदि रूप परिणाम भोजन बनाते, परोसते व खाते समय न हों। मन में भक्ति, दया, करुणा, अहिंसा व पुण्य रूप परिणाम हों। भक्ति रूप परिणामों से युक्त होने पर वह भक्त कभी उस अभक्ष्य का सेवन नहीं कर पाएगा जो उसके इष्ट देव, प्रभु ने कभी न किया हो। क्योंकि सच्चा भक्त अपने आराध्य का अनुचर होता है। दयादि रूप परिणाम होने पर जीवघात संबंधित कोई पदार्थ न बनाएगा और न खाएगा।

व्यक्ति का पेट नगर-निगम के कचड़े का डिब्बा नहीं जो चाहा सो डाल दिया। बल्कि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है या यूँ कहें प्रत्येक आत्मा शक्ति रूप से परमात्मा है। वह जब भी कुछ खाए तब ही उसे सोचना चाहिए कि वह परमात्मा को वह सामग्री अर्पित कर रहा है।

भोजन बनाते समय मन पुण्य में रत हो। जिससे उस भोजन को करने वाले के मन में भी पुण्य की भावना जाग्रत होगी और पुण्य ही व्यक्ति को दुःखों से बचाता है, और अरिहंत पद तक का कारण भी होता है। आचार्यों ने लिखा है **'पुण्यफला अरिहंता'**। अतः पुण्य से युक्त मन शुद्ध माना जाता है एवं आरोग्य, सुख व शांति की वृद्धि करने वाला मन विशुद्ध माना जाता है। मन शुद्ध हो तो नीरस भोजन में भी स्वाद आ जाता है। गुरुजी ने बताया कि एक बार उनका चातुर्मास ग्रीनपार्क दिल्ली में चल रहा था। उनका आहार किसी श्रावक के यहाँ हुआ। उन्होंने ठंडाई दी तो गुरुजी को वह मीठी लगी। गुरुजी का मीठे का त्याग था। उन्होंने पूछा इसमें क्या है? पुत्रवधू ने बोला महाराज जी इसमें बस बादामादि दो-चार चीजें हैं और कुछ नहीं। उस घर के बाबाजी ने कहा महाराज जी! इसमें और कुछ भी डला है? गुरुजी ने पूछा क्या है? पुत्रवधू ने कहा "महाराज जी! पापा तो ऐसे ही कह रहे हैं इसमें कुछ भी नहीं है।" वे बोले "महाराज जी! इसमें भावनाओं की मिठास घुली है, इसी से मीठा लग रहा है।"

वास्तविकता यही है मन की निर्मलता, शुद्धता, वात्सल्य भोजन को आरोग्यवर्द्धक स्वादिष्ट व परिणामों की निर्मलता में कारण बना देता है।

शुद्ध वचन

हिय-मिय-पिय-सुह-वयणं, णंदिट्ठसिद्धीए य हेदू जं।
भय-दुह-रोय-णासगं, तं सुद्ध-वयणं णादव्वं॥60॥

अर्थ–जो हित, मित, प्रिय और शुभ वचन हैं वे आनंद और इष्ट सिद्धि का हेतु हैं, भय, दुःख और रोष के नाशक हैं, उनको शुद्ध वचन जानना चाहिए।

Words which are beneficial, limited, pleasant and auspicious, which bring happiness and fulfillment of desires and which are the destroyer of fear, sorrow and anger, should be known as pure words.

व्याख्यान–व्यक्ति के वचन अर्थात् शब्द भी प्राणीमात्र को प्रभावित करते हैं। शब्द जोड़ने का भी काम करते हैं और तोड़ने का भी। ये फैविकॉल के समान जोड़ते भी हैं और बम के समान विस्फोटक भी होते हैं। आचार्यों ने कहा है कि पानी को कपड़े से छानकर पीना चाहिए और उसी प्रकार वाणी को भी त्रियोग से छानकर के बोलना चाहिए। वाणी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। वह उसके संस्कारादि का परिचय देती है। किसी ने कहा भी है ''यदि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में पता लगाना हो तो यह देखो कि वह छोटे लोगों से कैसे बात करता है।''

वृद्ध लोग पहले कहते थे–''गुड़ न दो, गुड़ जैसी बात तो कर लो।'' व्यक्ति के द्वारा कहे गए चार अच्छे शब्द सामने वाले को वह तृप्ति देते हैं जो शायद अमृत समान भोजन भी न दे पाए। भोजन की मिठास जीवनभर याद रहे न रहे किन्तु वाणी की मिठास सदैव मन प्रफुल्लित करती है। मीठी वाणी तो वशीकरण के समान है। तभी तो कहा है–

''कोयल काको देत है, कागो काको लेत।
मीठी वाणी बोलकर, जग अपनो कर लेत॥''

मात्र अपनी वाणी के कारण ही कोयल लोक में सबको प्रिय होती है, सम्मान को प्राप्त करती है और इसके विपरीत कौआ अपमान व तिरस्कार प्राप्त करता है।

''वाणी में भी अजीब शक्ति होती है, कड़वा बोलने वाले का शहद भी नहीं बिकता और मीठा बोलने वाले की मिर्ची भी बिक जाती है।'' यदि प्रिय शब्द बोले जाते हैं तो उसे जग भी अपना सा प्रतीत होता है।

एक बार एक राजा वन भ्रमण हेतु गया। साथ के अन्य लोगों से राजा बिछड़ गया, मात्र एक सेवक ही उसके साथ रह गया। राजा ने सेवक से कहा मुझे बहुत प्यास लगी है, क्या आसपास कहीं पानी है। राजा की आज्ञा पाकर सेवक पानी के लिए कुछ आगे बढ़ा तो उसे वहाँ एक कुटिया दिखाई दी, जिसके बाहर एक वृद्धा बैठी हुई थी। सेवक उस ओर गया और बोला 'ए बुढ़िया, थोड़ा सा पानी दे दे।' यह सुनकर वृद्धा कुछ नहीं बोली। सेवक बोला–बुढ़िया, सुनती नहीं है क्या, बहरी है? 'पानी दे दे।' वृद्धा ने कहा, मेरे पास पानी नहीं है। सेवक ने पुनः कहा–अरी बुढ़िया! तू मुझे पानी के लिए मना कर रही है, तू जानती नहीं मैं कौन हूँ? मैं राजा का आदमी हूँ। वृद्धा ने कहा–मैंने एक बार कह दिया मेरा पास जल नहीं है।''

वह सेवक लौटकर राजा के पास गया और राजा को सारी बात बता दी। यह सुन राजा स्वयं वृद्धा के पास गया और बोला "माँ! हमें बहुत प्यास लगी है, यदि आप थोड़ा सा जल दे दें तो अति कृपा होगी।'' वृद्धा ने तुरंत राजा को पानी दे दिया। राजा ने पानी पिया और पूछा माँ! आपने हमें तो पानी दे दिया किन्तु हमारे सेवक को नहीं दिया, इसका क्या कारण है? तब वृद्धा ने कहा–महाराज! आपके सेवक की वाणी अत्यंत कठोर व अशोभनीय थी, इसलिए मैंने उसे पानी नहीं

दिया, मुझे क्षमा करें। राजा ने कहा माँ! आपने ठीक किया, व्यक्ति बड़ा हो या छोटा किंतु बोली में मिठास, विनम्रता व शिष्टता सबके ही होना चाहिए।

कई बार लोग कहते हैं कि हमने गुस्से में ऐसा बोल दिया, वैसे हम बोलते नहीं या मूड खराब हो गया था इसलिए योग्य शब्दों का चयन नहीं कर पाए। तब इसके विषय में किसी ने कहा है–

मधुर वाणी बोलना एक महंगा शौक है,
जो हर किसी के बस की बात नहीं।

''अपने खराब मूड के समय भी बुरे शब्द न बोलें, क्योंकि खराब मूड को बदलने के बहुत मौके मिलेंगे पर शब्दों को बदलने के नहीं।''

यहाँ ग्रंथकार भोजन वा आहार का कथन करते हुए कहते हैं कि भोजन बनाते, खिलाते या खाते समय वचन शुद्ध होने चाहिए। यदि कोई व्यक्ति भोजन बनाते समय अपशब्द का प्रयोग करता है तो वह भोजन भी श्रेष्ठ, सात्विक नहीं होता। भोजन में स्वाद मात्र भोज्य सामग्री से नहीं अपितु अन्य घटक भी उसे प्रभावित करते हैं। यदि भोजन कराने वाला प्रेमपूर्वक इष्ट–मिष्ट–शिष्ट शब्दों का प्रयोग कर भोजन कराता है तो करने व कराने वाले दोनों को आनंद आता है। भोजन करने वाला भी अच्छे प्रकार से भोजन कर पाता है।

गुरुवर श्री कहते हैं कि व्यक्ति को रोटी पर घी लगाकर दें या नहीं किन्तु नाम के साथ जी लगाकर अवश्य दे देना। वचनों में तो इतनी शक्ति है कि माँसाहारी शेर को भी अमरचंद दीवान ने जलेबी का भोजन करा दिया।

आपने स्वयं अनुभव किया होगा, यदि भोजन के समय कोई कटु बोल दे तो भोजन किया ही नहीं जाता और कदाचित् कर भी लिया तो शारीरिक व मानसिक स्थिति पर कुप्रभाव डालता है। अतः भोजन कराते समय स्नेहपूर्वक ही बोलें। हित–मित–प्रिय व शुभ वचनों का ही प्रयोग करें। हित–मित व प्रिय वचनों को

परिभाषित करते हुए ग्रंथकार ने अपने ही ग्रन्थ 'वयण-पमाणत्तं' में लिखा है-

मुक्खकारणं जं तं, लहेदुं सस्सदसीलं अप्पस्स।
विणासिदुं भवभमणं, कम्मक्खयिदुं हिदं सक्कं॥

जो आत्मा के शाश्वत स्वभाव को प्राप्त करने में मुख्य कारण है, भवभ्रमण के विनाश व कर्मक्षय में समर्थ है वह हित है।

एयसद्दो समत्थो, जदि पगासणाए भावाणं तो।
वदेज्ज णो बेसद्दा, सा मिदरीदी भणिदा॥

यदि भावों का प्रकटीकरण करने में एक शब्द ही समर्थ है तो दो शब्द नहीं बोलने चाहिए। वह मित रीति कही गई है।

जेहि वयणेहि होदि, सवरचित्त सीयलो पियवयणाणि।
सुहाणंद-कारणं च, जाणि ताणि हु पावक्खयस्स॥

जिन वचनों के द्वारा स्वपर का चित्त शीतल होता है, जो सुख, आनंद और पाप क्षय का कारण हैं वे प्रिय वचन हैं।

यदि मुख से इनसे विपरीत या अशुभ वचन निकलते हैं तो ये आपके अशुभ भावों को भी दर्शाते हैं और ऐसा भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ही होता है।

शिष्ट, मिष्ट, इष्ट, हित, मित, प्रिय वचन व्यक्ति में आनंद उत्पन्न करते हैं और उसके इष्ट को भी सिद्ध करने में समर्थ हैं। जो वचन आनंद व इष्ट सिद्धि के कारण के साथ-साथ भय, दु:ख या रोष का अंत करने वाले हैं उन्हें शुद्ध वचन जानना चाहिए। भोजन कराने वाला यदि कभी अशुभ या अपशब्द बोल दे तो अक्सर भोजन करने वाला भूखा ही रह जाता है। अत: कम से कम भोजन के समय अहितकारक, अनिष्टकारक शब्दों का प्रयोग न करें। ग्रंथकार ने भोजन के समय भोजन निर्माण करने वाले, खाने वाले इत्यादि के लिए वचन शुद्धि आवश्यक कही है।

शुद्ध देह

किच्चा देह-ण्हाणं, धारेज्ज सुद्ध-वत्थ-भूसणाणि य।
कुल-जादि-पिंड-सुचीइ, पुण्णंगजुदं सुद्धदेहं॥61॥

अर्थ–शरीर का स्नान कर शुद्ध वस्त्र और आभूषण धारण करना चाहिए। कुल, जाति, पिंड शुद्धि व पूर्णांग से युक्त शुद्ध देह है।

One should put on neat and clean clothes and ornaments after taking a bath. A body consisting of the purity of caste, family and all the limbs, is pure.

व्याख्यान–मन, वचन की शुद्धि के पश्चात् अब ग्रंथकार देह शुद्धि का कथन यहाँ करते हैं। भोजन बनाने, खिलाने व करने वाले सभी की देह शुद्धि भी आवश्यक है। अन्यथा उस पर चिपके कीटाणु भोजन के साथ शरीर में प्रवेश कर उसे रोगी बना देते हैं। आज व्यक्ति होटल आदि में भोजन करता है, कई बार तो भोजन बनाने वाले के कुल व जाति से अनजान उनके द्वारा निर्मित भोजन कर लेते हैं जो सुसंस्कारों को प्रभावित कर देता है।

किस कुल या जाति के लोगों के द्वारा निर्मित भोजन ग्राह्य है, उसका विवेक रखकर ही भोजन करना श्रेयस्कर है। पिंड शुद्धि से यहाँ तात्पर्य द्रव्य से ग्रहण कर लेना चाहिए। दिगंबर साधुओं की तो आहारचर्या में सहज ही सब शुद्धियाँ समाहित होती हैं। श्रावक 'मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है' इस रूप शुद्धि बोलकर आहारदान में प्रवृत्त होता है क्योंकि इसके बिना वह आहारदान के योग्य नहीं है।

मुनिराज को आहार देने के योग्य वही है जिसकी ये तीनों प्रकार की शुद्धियाँ हों। दाता का कुल व उसकी जाति शुद्ध होनी चाहिए। इंटरकास्ट मैरिज या अन्य

ऐसा कोई कार्य कुल, वंश में न हुआ हो जिससे वह कलंकित हुआ हो इत्यादि रूप कुल व जाति शुद्ध होना चाहिए। स्त्री का यदि दूसरा विवाह हुआ हो तो शीलभ्रष्ट होने से वह आहार देने योग्य नहीं होती। भ्रूणहत्या जैसा कुकृत्य करने वाली स्त्रियाँ भी आहारदान के अयोग्य हैं। दाता के अंग पूर्ण होने चाहिए। अंगहीन व्यक्ति आहारदान की अनुमोदना तो कर सकता है किन्तु दे नहीं सकता।

आहारशुद्धि को पिंडशुद्धि कहते हैं। उद्गम, उत्पादन, अशन, संयोजना, प्रमाण, अंगार, धूम, कारण इन दोषों से रहित भोजन ग्रहण करना वह आठ प्रकार की पिंड (द्रव्य) शुद्धि है। कहा भी है–

उग्गम-उप्पादण-एसणं च संजोजणं पमाणं च।
इंगाल धूम कारणं अट्ठविहा पिंडसुद्धी दु॥421॥ –मू.आ.

आठ दोषों से रहित आठ प्रकार की पिंड शुद्धि होती है।

1. **उद्गम दोष**–दाता के निमित्त से जो आहार में दोष उत्पन्न होता है वह उद्गम दोष है।

2. **उत्पादन दोष**–साधु के निमित्त से आहार में जो दोष उत्पन्न होता है वह उत्पादन दोष है।

3. **एषणा दोष**–आहार संबंधी दोष एषणा दोष है।

4. **संयोजना दोष**–किसी वस्तु का मिलाना मात्र ही संयोजना दोष है।

5. **प्रमाण दोष**–प्रमाण का उल्लंघन करना प्रमाण दोष है।

6. **अंगार दोष**–जो अंगारों के समान है वह अंगार दोष है। लंपटता से आहार लेने वाला इस दोष से दूषित माना जाता है।

7. **धूमदोष**–जो धूम के समान है वह धूम दोष है। निंदा करके आहार लेने वाला धूमदोष से दूषित कहा जाता है।

8. कारण दोष–जो कारण के निमित्त से होता है वह कारण दोष है। विरुद्ध कारणों से बना आहार लेने वाला कारण से दूषित जानना चाहिए व विरुद्ध कारणों से आहार लेना कारण दोष है।

यह पिंडदोष द्रव्य और भाव के भेद से भी दो प्रकार का जानना चाहिए। कहा भी है–

सव्वो वि बि पडदोसो दव्वे भावे समासदो दुविहो।
दव्वगदो पुण दव्वे भावगदो अप्पपरिणामो।।488।।

द्रव्य व भाव पिंडदोष के दो भेद हैं। उद्गम आदि दोषों से सहित भी अधः कर्म से युक्त आहार द्रव्यगत पिंडदोष कहलाता है। भाव पिंडदोष अर्थात् आत्मा परिणाम से जो अशुद्ध है। भावशुद्धि तप, ज्ञान, दर्शनादि में कारण है।

आचार्य भगवन् श्री नेमिचंद स्वामी ने त्रिलोकसार में लिखा है–

दुब्भाव-असुचि-सूदग-पुप्फवई-जाइसंकरादीहिं।
कयदाणा वि कुवत्ते, जीवा कुणरेसु जायंते।।

जो दुर्भावना या खोटे भावों से आहारदान देते हैं, अपवित्र अवस्था में अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव इन चार शुद्धियों की अवहेलना करके आहारदान देते हैं, सूतक-पातक आदि में या स्त्री मासिकधर्म के समय यदि आहारदान देती है, जातिसंकर आदि दोषों से दूषित होते हुए भी आहारदान देते हैं और जो कुपात्रों को दान देते हैं, वे जीव मरकर कुमनुष्य होते हैं।

यदि काय में संक्रामक रोग हो या किसी रोग से infection की संभावना हो तो ऐसे समय में भी आहार नहीं देना चाहिए। स्त्रियाँ साधुओं को अशुद्धावस्था में आहार न दें।

एक नगर में बहुत वर्षों के बाद एक सन्त का आगमन हुआ था, उस नगर के श्रेष्ठी ने, जो संतों को भोजन देने में प्रसिद्ध था, संत को भोजन देने का विचार करते हुए जाकर सेठानी से अच्छा शुद्ध भोजन तैयार करने के लिए कहा। यह

सुनकर सेठानी ने कहा ''सेठजी! मैं आज भोजन नहीं बना सकती क्योंकि मैं एम. सी. में हूँ। सेठ ने कहा- ''पगली तू कुछ भी नहीं समझती है, कितने वर्षो के बाद तो अपने नगर में संत आये हैं और अपना घर संत भोजन के लिये हमेशा खुला ही रहता है। यदि अपने घर में आज संत का भोजन नही हुआ, संत को भोजन के लिए नहीं बुलाया तो लोग क्या कहेंगे, तुम तो जल्दी भोजन तैयार करो। मैं संत के पास जाता हूँ। तुम एम.सी. में हो इस बात को कोई जानता भी कहाँ है, जो तुम इस बात की चिंता करती हो कि मैं संत को भोजन नहीं करवा सकती।

सेठानी धर्मात्मा, पापभीरू और दुर्गति के दुःखों से परिचित थी, उसने सेठजी को बहुत समझाया लेकिन सेठजी ने उसकी एक भी बात नहीं सुनी। आखिर सेठानी को मजबूर होकर भोजन तैयार करके संत को देना पड़ा। संत भोजन करके चले गये लेकिन दो-चार दिन में ही सेठानी के शरीर में कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया, उसके शरीर में स्थान-स्थान पर सफेद दाग दिखाई देने लगे। कोई-कोई दाग तो घाव का रूप लेने लगा। किन्हीं-किन्हीं दागों से पानी झरने लगा, पूरे शरीर में से बदबू आने लगी। धीरे-धीरे शरीर गलने लगा और घर की लक्ष्मी शनैः-शनैः विदा होने लगी। सेठ-सेठानी चिंता में पड़ गये, वे बार-बार सोचने लगे, हमने ऐसा कौन सा पाप किया है जिसके फल से पहले तो इतनी निंदनीय दुःखदाई बीमारी हुई और ऊपर से धन सम्पत्ति भी समाप्त होती जा रही है।

एक दिन सेठानी को अचानक संत को भोजन देने की बात याद आई, उसने सेठजी से तुरंत कहा कि आपने मुझे एम.सी. के समय में जबरन संत को भोजन दिलवाया था उसका ही यह दुष्फल होना चाहिए। सेठजी को भी बात कुछ-कुछ समझ में आने लगी। दोनों विचार कर संत के पास गये और अपनी समस्या (कुष्ठ रोग एवं धन नष्ट होना) रखी। संत ने कहा–तुम लोग याद करो, तुमने अपने जीवन में किसी संत का अपमान, निंदा या तिरस्कार किया होगा अथवा किसी संत को अशुद्धि के समय भोजन दिया होगा। इसके अलावा और कोई ऐसा पाप

नहीं हो सकता जिसके फल से कुष्ठ रोग हो। संत की बात सुनकर सेठानी व सेठ ने अपनी गलती को स्वीकार करते हुए संत से प्रायश्चित के लिये निवेदन किया। संत ने उनको प्रायश्चित देकर शुद्ध किया। आप भी सावधान रहें। सेठानी ने मजबूरी में संत को भोजन दिया और सेठ ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए संत को भोजन दिया, उसका फल कुष्ठ की बीमारी और धन का नाश मिला। अतः आप भी कभी ऐसा काम नहीं करें।

इस प्रकार कुल, जाति एवं देह आदि की शुद्धि आवश्यक है। दिगंबर साधु तो इन तीन शुद्धियों पूर्वक आहार ग्रहण करते ही हैं किन्तु श्रावक को भी शुद्धिपूर्वक ही आहार ग्रहण करना चाहिए।

ग्रहणीय मर्यादित भोजन

मज्जाइल्ल-भोयणं, सव्व-पयारेण सव्वदा भक्खं।
तं वि गहेज्ज हु अप्पं, जेण पमाद-हेदू ण होदि॥62॥

अर्थ–वह मर्यादित भोजन सर्वदा सर्व प्रकार से भक्ष्य हो और उसे भी अल्पमात्रा में ही ग्रहण करना चाहिए जिससे वह प्रमाद का हेतु नहीं होता।

That food should always be edible in all ways and it should be consumed only in small quantity so that it does not become the cause of indolence.

व्याख्यान–मनुष्य को सर्वदा मर्यादित भोजन करना ही योग्य है। मर्यादित भोजन करने वाला ही मर्यादा का पालन कर सकता है। समाज के नियम, मर्यादा, अनुशासन, राज्य- व्यवस्था और कानून का पालन करना मानव का कर्त्तव्य है। जहाँ कानून और मर्यादा का पालन नहीं होता वहाँ सुख-शांति का साम्राज्य नहीं होता। मर्यादा का पालन करने वाला संघर्ष व अशान्ति से स्वयं ही बच जाता है। सीता ने तो एक बार मर्यादा रेखा पार की और उसका परिणाम जो हुआ, उससे कोई अनभिज्ञ नहीं है। किन्तु मानव तो बार-बार मर्यादा का उल्लंघन करता है। जो पदार्थ खाने के योग्य नहीं, जो मानव के लिए बने नहीं, जिह्वा लोलुपता के वश होकर वह बार-बार उनका सेवन करता है, तब क्या उसके आगामी दु:खों की कल्पना की जा सकती है? नहीं, क्योंकि कुगतियों में भ्रमण करने वाला नि:सीम दु:ख प्राप्त करता है।

श्रेष्ठ व्यक्ति श्रेष्ठ वस्तुओं का चुनाव ही करता है तब भोजन में श्रेष्ठ या अभक्ष्य का विवेक क्यों नहीं, और विवेक है तो श्रेष्ठ का चुनाव क्यों नहीं। यदि आपको अपनी गाड़ी में पेट्रोल डलवाना हो तो आप अच्छा शुद्ध पेट्रोल ही डलवाएँगे ताकि पेट्रोल के साथ मशीन या इंजन को हानि पहुँचाने वाले तत्त्व न

जाएँ। आजकल साल्वेंट पेट्रोल में मिलाया जा रहा है। वह मिलावटी पेट्रोल गाड़ी में जाते ही अपना कुप्रभाव दिखाना प्रारंभ कर देता है, वह इंजन को खराब कर देता है। चलते चलते बीच रास्ते में ही इंजन बैठ जाता है।

जब आप अपनी 5-10-15 लाख की गाड़ी में भी खराब क्वालिटी या मिलावटी सामान नहीं डालना चाहते और तो और अपनी बाइक, स्कूटी में ऐसा सामान नहीं डलवाना चाहते तो यह शरीर तो आपके लिए अनमोल है। जिस शरीर के माध्यम से व्यक्ति सर्व कार्य करने में समर्थ होता है, जो उसके धर्मध्यानादि में निमित्त है उसको रद्दी, घटिया, हानिकारक, पाप के कारण, बल-वीर्य नाशक, स्मरण शक्ति को मंद करने वाले, मनोभावों को मलिन करने वाले व रोगोत्पादक पदार्थों को क्यों देता है? भोजन को मुख में डालने से पूर्व विवेकपूर्वक विचार कर लें कि यह सर्व प्रकार से आपके योग्य तो है। सात्विक शुद्ध भोजन ही आरोग्यवर्धक व जीवनदायी हो सकता है।

वह भोजन भी अल्प ही करना चाहिए। सात्विक अधिक भोजन से भी पाचनतंत्र बिगड़ जाता है, जिसके कारण रोग उत्पन्न हो सकते हैं। अथवा अधिक भोजन प्रमाद का कारण होता है। जिसके कारण व्यक्ति अति उत्साहादि से कार्यों में संलग्न नहीं हो पाता। वैसे भी अल्प भोजन आरोग्य का कारण है। कहते भी हैं–

''जो लोग दबा-दबा कर खाते हैं,
वे ही लोग दवाखाने जाते हैं।''

अर्थात् अधिक खाने वाले लोगों को रोग घेर लेते हैं, फिर उन्हें डॉक्टर के पास जाना ही पड़ता है। अतः स्वादादि के लोभ में पेट से अधिक न खाएँ वरना उसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ सकता है।

एक बार एक पंडित दावत में गए। लोगों ने पंडितजी को रसगुल्ले खाने के लिए कहा। वे तो पहले ही उन्हें बहुत पसंद थे, उन्होंने पेट भर रसगुल्ले और खा लिए। अब एक व्यक्ति ने कहा पंडितजी! यदि दो रसगुल्ला खा लो तो दस रुपये

दूँगा। पंडितजी ने दस रुपये के लालच में दो रसगुल्ले खा लिए। उस व्यक्ति ने जेब से 50 रुपये निकालते हुए कहा पंडितजी! यदि दो और खा लो तो 50 रुपये दूँगा। पंडितजी के पेट में स्थान तो नहीं था किन्तु लालच में दो और खा लिए। व्यक्ति ने पुनः कहा–पंडितजी एक और खा लो तो 100 रुपये दूँगा। पंडितजी से न बैठा जा रहा था और न ही खड़े हो पा रहे थे, फिर भी लालच में रसगुल्ला खा लिया। व्यक्ति ने फिर कहा–पंडितजी बस एक और खा लो 500 रुपये दूँगा। बड़ी मुश्किल से लालच में उन्होंने एक और रसगुल्ला खाना चाहा किंतु पंडितजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया, वे जमीन पर गिर पड़े, सब लोग घबरा गए। वैद्यजी को बुलवाया गया। वैद्यजी ने पंडितजी को देखा और कहा–शायद कुछ अधिक खा लिया है, पंडितजी! आँखें खोलो, लो हाजमोला खा लो, बिल्कुल ठीक हो जाओगे। पंडितजी बोले–वैद्यजी! यदि पेट में जगह होती तो रसगुल्ला ही क्यों छोड़ता, उसे ही नहीं खा लेता।

इस प्रकार अधिक खाना भी व्यक्ति को रोगी बना देता है। आचार्यों ने खाने की मात्रा निर्धारित करते हुए कहा है–

अर्धाशनेन सव्यंजनेननुदरस्य तृतीयमुदकेन।
वायोः संचारणार्थं चतुर्थमवशेषयत् भिक्षुः॥

–मूलाचार/आचारवृत्ति/गाथा–49

भिक्षु के उदर का आधा भाग भोजन से भरे, तृतीय भाग जल से भरे और चतुर्थ भाग वायु के संचरणार्थ अवशेष रखे।

सर्वशुद्धि आवश्यक

दव्वणामं हु सुद्धं, तस्स णिप्फण्ण-विही होज्ज सुद्धा।
सुद्धं सव्वुवयरणं, शुद्धं अवि सहजोगिवत्थुं।।63।।

अर्थ–द्रव्य का नाम शुद्ध हो, उसकी निष्पन्न विधि शुद्ध हो, भोजन निर्माणादि के सभी उपकरण शुद्ध हों, उसमें सहयोगी वस्तु भी शुद्ध हो।

The name of the food item must be pure, the method of its preparation, all the equipment used for preparing the food and the ingredients used in it, must also be pure.

व्याख्यान–नाम का द्रव्य पर कुछ प्रभाव तो होता ही है तभी तो कहा जाता है कि माता-पिता अपने बच्चों के नाम श्रेष्ठ अर्थ वाले रखें। उस नाम वाले किंचित् गुण बच्चों में देखे गए हैं। यहाँ ग्रंथकार निर्देशित करते हैं कि जिस भोज्य पदार्थ को ग्रहण किया जाए वह भी शुभ नाम वाला हो। तभी पूर्व में आचार्यश्री ने अशुद्ध पदार्थों का निषेध किया क्योंकि उसको देखते ही कल्पना में वह आकृति आती है, फिर खाने वाले कहते हैं मैंने तो मोर खाया, मैंने तोता इत्यादि। इस प्रकार कहने से वह शुद्ध पदार्थ भी अशुद्ध ठहरता है।

जैसा नाम होता है वैसा ही भाव भी हो जाता है। कितना भी स्वादिष्ट व्यंजनादि बनाया जाए और पुनः उसे किसी माँसाहारी पदार्थ के नाम से संबोधित किया जाए तो स्वयं ही घृणा उत्पन्न होती है और किसी असंवेदनशील या अविवेकीजन ने उसको ग्रहण भी कर लिया तो उस अनुरूप भाव होने से वह पापास्रव का ही कारण है।

जैसे बिरयानी नाम माँसाहार में प्रसिद्ध है किन्तु आजकल कुछ लोग चावलादि को विशेष प्रकार से बनाकर बिरयानी कहते हैं जो सर्वथा अभक्ष्य है। द्रव्य के नाम के अनुसार भाव भी परिणत हो जाते हैं, फिर शरीर में उसी प्रकार के हार्मोन्स स्रवित होने लगते हैं। भावों की अशुद्धता का परिणाम आपने जाना कि आटे के मुर्गे की बलि भी कुगतियों में अनंत दु:ख भोगने का कारण बन गई जबकि किसी प्राणी की प्रत्यक्ष रूप से हिंसा नहीं हुई थी। अशुभ कल्पनाएँ अशुभ पापबंध का कारण होती हैं एवं अशुभ द्रव्य या नामादि से कल्पनाएँ भी अशुभ हो जाती हैं। अत: अशुद्ध द्रव्य तो सर्वदा त्याज्य है ही किन्तु अशुद्ध नाम वाला द्रव्य भी सदैव त्याज्य है।

पुन: कहा जिस विधि से भोजन बनाया जा रहा है वह विधि शुद्ध हो। खाद्य पदार्थ तो शुद्ध हो किन्तु उसके निर्माण में अनेक जीवों का घात हुआ हो या गंदे हाथों से भोजन निर्माण किया हो या उसकी निर्माण प्रणाली (cooking system) में कोई भी अशुद्धता हो तो वह भी खाने योग्य नहीं होता। कई बार hotel आदि में होता है कि भोजन तो शाकाहारी है किन्तु यदि कोई उसे बनाने का पूरा process देख ले तो शायद व्यक्ति उसे ग्रहण नहीं कर पाए।

एक बार एक व्यक्ति ने बताया कि वह एक बार किसी ढाबे पर भोजन के लिए रुका। भोजन बनाने वाले ने भट्टी से अपनी कढ़ाई आदि हटाई व दूसरी कढ़ाई रख दी। इस मध्य में ही जब कुछ क्षण के लिए उसकी भट्टी खाली हुई उसमें छिपकली गिर गयी। उस बनाने वाले ने भी यह देख लिया, उसके बाद भी दूसरी कढ़ाई उस पर रख दी। उस व्यक्ति ने बताया कि उन्होंने उस बनाने वाले से कहा कि ये तुम क्या कर रहे हो? इस पर कढ़ाई कैसे रख दी? वह व्यक्ति गुस्से में बोला अरे! भट्टी में तो गिरी है, कढ़ाई में थोड़े ही ना। उन्होंने कहा मैं तो वहाँ से तुरंत उठ आया और पुन: होटल आदि में भोजन करने का त्याग कर दिया।

ग्रंथकार ने पुनः कहा कि भोजन बनाने में जिन भी उपकरणों आदि का प्रयोग होता है वे भी शुद्ध हों। चाय वाले के यहाँ दो दिन से उसी बर्तन में चाय बन रही है, साफ भी नहीं किया, कितने सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति उसमें हो जाती है। अथवा बड़े-बड़े बर्तनों मे भोजन बन रहा है, साफ भी करा लिए किन्तु उन पर झूठन भी लगी है, अन्य गंदगी भी लगी है और फिर उसी में भोजन पका लिया। यह जीवहिंसा अनेक रोगों का कारण भी है।

एल्यूमीनियम व नॉनस्टिक के बर्तन जिन्हें बहुतायत में प्रयोग में लाया जाता है वे कैंसर जैसी घातक बीमारियों को जन्म देते हैं। पूर्व में लोहे की कढ़ाई आदि का प्रयोग किया जाता था जिससे खाद्य पदार्थ में लौह तत्त्व आ जाते थे, जो शरीर में पहुँचकर सेहतमंद होते या हीमोग्लोबिन अच्छा बनाते थे।

इन सबके साथ-साथ भोजन निर्माण में जिन भी पदार्थों की आवश्यकता हो, जितने भी सहयोगी पदार्थ प्रयुक्त हों उनकी शुद्धता का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। सर्व प्रकार से हुई शुद्धि ही भोजन को सात्विक व आरोग्यवर्द्धक बना सकती है और सर्व शुद्धियों से निर्मित शुद्ध सात्विक भोजन ही अहिंसक आहार है। यही अहिंसक आहार व्यक्ति की कषायों को मंद रखता है, उसका मन प्रसन्न, आनंदित व धर्मध्यान के अनुकूल बनाता है। शुद्ध भोजन से शुद्ध मन, शुद्ध मन से शुद्ध वचन व शुद्ध वचनों से देह की चेष्टाएँ भी शुद्ध होती हैं और यही सब बातें मिलकर एक अच्छे महान् व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। इस आधार पर 'अहिंसक आहार' व्यक्तित्व निर्माण की कुंजी भी कहा जा सकता है। शुद्ध भोजन से शरीर स्वस्थ, नीरोग, बलयुक्त रहता है। उससे बुद्धि का, चरित्र का एवं आध्यात्मिक विकास भी स्वतः ही होता है। अतः शुद्ध भोजन ही ग्राह्य है।

शुद्ध भोजन धर्म का हेतु

सुह-भोयणं धम्मस्स, अप्पसंतीइ सुहस्स कारणं च।
तव-वद-संजम-हेदू, होदि वि दया-भत्ति-चागाण॥64॥

अर्थ–शुभ भोजन धर्म का हेतु होता है। आत्मशान्ति और सुख का कारण होता है। वह दया, भक्ति, त्याग, तप, व्रत, और संयम का हेतु भी होता है।

Pure food is the cause of religion. It is the cause of inner-peace and happiness. That is also the cause of kindness, devotion, sacrifice, penance, fasting and self-restraint.

व्याख्यान–जैनदर्शन की एक-एक क्रिया वैज्ञानिक है। यह भोजन भी बहुत बड़ा विज्ञान है। जितना शुद्ध भोजन ग्रहण करेंगे संभव है परिणाम उतने शुद्ध होंगे, शरीर स्वस्थ रहेगा, वचन प्रभावक, सौम्य, शिष्ट-मिष्ट, हित-मित-प्रिय निकलेंगे और विचार भी शुभतर होंगे। निमित्तों का प्रभाव भी व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। अच्छे निमित्त का अच्छा और बुरे निमित्त का प्रभाव बुरा पड़ता है। किन्तु उपादान का प्रभाव उस ही रूप होता है जैसा उपादान होता है। जैसे–माना किसान ने खेत में गेहूँ बो दिया तो उससे फसल तो गेहूँ की ही होगी किन्तु गेहूँ कितना अच्छा होता है यह बात निर्भर करती है कि समय पर जुताई-सिंचाई आदि की हो, खाद-पानी समुचित मिला हो और यदि ये सब समुचित नहीं होगा तो गेहूँ का स्तर गिर जाएगा, किन्तु ऐसा नहीं कि वह ज्वार, जौ आदि बनेगा। अतः सिद्ध है जैसा उपादान होता है वैसा ही, उस अनुरूप ही उसमें कार्य होता है। निमित्त के द्वारा कार्य होता है किन्तु निमित्त में कार्य नहीं होता। कार्य सदैव नैमित्तिक में (जो निमित्त से प्रभावित हो उसमें) होता है।

भोजन और परिणाम का भी निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। भोजन जैसा होता है, व्यक्ति के परिणाम भी वैसे ही होते हैं। जैसे टँकी में दूध भरो तो दूध ही निकलेगा और पानी भरो तो पानी और कोई अविवेकी कीचड़ भरता है तो कीचड़

ही निकलेगा। जैसा भोजन अंदर जाता है वैसा ही निकलकर बाहर आता है। धान के बोरे में से पुष्प की सुगंध और पुष्प के बोरे में सड़े-गले पदार्थों की दुर्गंध नहीं आएगी। मानव शरीर को भी बोरा मान लें तो व्यक्ति जो कुछ भी इसमें डालेगा वही निकलकर आएगा। किसी व्यक्ति ने यदि अपने उदर में अभक्ष्य पदार्थ डाल दिया तो परिणाम भी अभक्ष्य रूप अन्याय, अनीति, अत्याचारादि के होंगे। यदि इसमें भक्ष्य पदार्थ डाल दिया जाए तो परिणाम नीति, न्याय, धर्म, संयम, परोपकार, वात्सल्य, मैत्री रूप होंगे; क्योंकि भोजन का प्रभाव मन, वचन, काय सब पर पड़ता है।

अतः ग्रंथकार ने कहा कि शुभ अर्थात् जिसमें किसी प्रकार की अशुभता या अशुद्धता शेष न हो वह शुद्ध भोजन धर्म का कारण है। भोजन व भजन का घनिष्ठ संबंध है। शुद्ध भोजन से भजनमय परिणाम स्वतः ही हो जाते हैं। शुद्ध भोजन करने वाला व्यक्ति ही आत्मशक्ति और सुख का अनुभव कर सकता है।

भोजन से निरोगता, निरामय जीवन रहता है। जापान में चिकित्सकों की एक टीम खानपान संबंधित सर्वे कर रही थी। वह टीम एक महिला के घर पहुँची। उनकी बात सुनकर महिला ने कहा 'क्या आप मेरी उम्र बता सकते हैं?' उन डॉक्टर्स ने कहा लगभग 25 वर्ष होगी। वह महिला मुस्कुरायी और बोली–डॉक्टर मेरे पास 22 साल का बेटा और 21 साल की बेटी है, मेरी आयु 45 वर्ष है। डॉ. यह सुन हैरान रह गए, बोले ये कैसे संभव है। तब उस महिला ने बताया कि मैंने जीवन में कभी बासी भोजन नहीं किया। मैं शुद्ध शाकाहार भोजन करती हूँ। बाजार की गंदी वस्तुएँ मैंने कभी नहीं खायी, कभी पैकेट वाली वस्तुएँ नहीं खाईं। अपने हाथ से बनाकर ही खाती हूँ इसलिए मैंने अपनी आयु से आपको भ्रम में डाल दिया।

तन को तो भोजन प्रभावित करता ही है साथ ही मन व वचन को भी करता है। सात्विक शुद्ध भोजन करने वालों की वृत्ति भी सात्विक ही होती है। क्या आज तक कोई माँसाहारी उपासक उच्चकोटि का साधु हुआ है, क्या ऐसा कोई व्यक्ति प्रभु भक्ति में प्रसिद्ध हुआ है? नहीं, क्योंकि जो अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करता हो ऐसे व्यक्ति के परिणाम धर्म या साधुता के नहीं हो सकते।

शुद्ध शाकाहार सात्विक भोजन करने वाले के परिणाम ही भजन के हो सकते हैं, वह ही आत्मा को जान सकता है। यदि व्यक्ति अपना खानपान सात्विक रखता है तो उसका खानदान शुद्ध रहता है, आरोग्य लाभ प्राप्त करता है और धर्म के पथ पर चलकर अपना मोक्षमार्ग तक प्रशस्त कर लेता है। आचरण की नींव आहार है। धर्म, संयम, तप, दया, त्याग, व्रत आदि की नींव भी शुद्धाहार ही है। क्षत्रियों ने भी जब स्वयं को जानने का पुरुषार्थ किया तब सब प्रकार का राजसिकादि भोजन त्यागकर सात्विक आहार ही ग्रहण किया।

आहार शुद्ध होगा तो मन में भी चंचलता कम होगी, धर्मध्यान में अधिक मन लगेगा। अतः शुद्ध आहार को ग्रंथकार ने संयम, व्रतादि का आधार बताया। यदि आधार (foundation) ही कमजोर हो तो भवन की दीवारें कितनी भी मजबूत बना लें, भवन कितना भी ऊँचा बना लें वह ढह जाएगा, नष्ट हो जाएगा, अतः नींव का दृढ़ होना जरूरी है। आहार मानव जीवन की नींव है। यदि नींव शुद्ध-सशक्त रहेगी तो मंदिर सम शुद्ध जीवन का निर्माण हो सकता है।

मानव की भोजनचर्या पर उसके सब गुण टिके हुए हैं। शुद्ध भोजन करने से ही मन में दया, करुणा, मैत्री, वात्सल्य आदि परिणाम उत्पन्न होते हैं, व्रत-संयमादि रूप शुद्ध भावों का प्रादुर्भाव होता है। भोजन को अच्छे परिणाम रूप वृक्षों का बीज माना जा सकता है। जैसा बीज होगा वैसा ही वृक्ष होगा। आम के बीज से आम का वृक्ष और बबूल के बीज से बबूल का वृक्ष ही उत्पन्न होगा। इसी प्रकार शुद्ध भोजन से शुद्ध परिणाम व अशुद्ध भोजन से अशुद्ध परिणाम उत्पन्न होंगे।

अतः सर्व गुणों का आधार होने से गुणवर्धन के लिए सदैव शुद्धाहार ही ग्राह्य है।

ग्रंथ का फल

अहिंसगाहारमिणं, पालदि विवेगेणदण-सुइं पढिय।
से हु लहदि आरोग्गं, कमसो भव-णिव्वाण-सोक्खं॥65॥

अर्थ–जो व्यक्ति इस 'अहिंसक-आहार' नामक ग्रन्थ को पढ़कर भोजन शुद्धि को विवेक से पालता है वह निश्चय ही आरोग्य को प्राप्त करता है एवं क्रमशः संसार व मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

After reading the book title 'Ahinsak Ahaar', the person who follows the purity of food with discretion, he definitely attains good health and gradually gets pleasure of world and salvation.

व्याख्यान–मनुष्य द्वारा ग्रहण किया गया भोजन व्यक्ति के स्वास्थ्य आदि के साथ उसके परिणाम, उसकी मनोवृत्ति को भी प्रभावित करता है और मानव समूह मन से परिचालित है। मन का प्रभुत्व व्यक्ति, राष्ट्र तथा विश्व पर है। अतः मनुष्य को आरोग्य व मनोवृत्ति प्रदान करने हेतु इस 'अहिंसक आहार' नामक ग्रंथ का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ को पढ़कर जो व्यक्ति अपने खानपान को शुद्ध बनाता है, भोजन में विवेकपूर्वक भक्ष्याभक्ष्य जानकर भक्ष्य को ही ग्रहण करता है, वह निश्चित ही आरोग्य को प्राप्त करता है। व्यक्ति के अंदर जितने रोग हैं उन सबकी औषधियाँ भी उसके अंदर ही हैं। अशुद्ध भोजन से रोग और शुद्ध भोजन से वे औषधियाँ प्रभावित (active) हो जाती हैं।

ग्रंथकार ने जितनी सूक्ष्मता से 'अहिंसक आहार' का विश्लेषण ग्रंथ में किया है यदि लोग उसका पालन कर लें तो न तो अलग से दवाईयों की आवश्यकता पड़ेगी और न ही राष्ट्र धन का व्यय बीमारियों या युद्ध पर होगा। खानपान में

समूचे विश्व को बदलने की सामर्थ्य है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना खानपान सुधार ले तो चारों ओर सुख-शांति की अनहद गूँज होगी।

एक समय गुरुवरश्री के सान्निध्य में एक बहुत बड़ा विधानादि कार्यक्रम महीनों पूर्व निर्धारित हो चुका था। जब गुरुवरश्री वहाँ पहुँचे तो संयोग की बात देश में कुछ स्थानों पर दंगों की आशंका से कार्यक्रम का होना मुश्किल सा दिख रहा था क्योंकि प्रशासन मानव सुरक्षा में रत था। वहाँ के डी.एम. गुरुवरश्री के पास आये, उनसे बातचीत हुई। डी.एम. बोले-''महाराजश्री! जैन समाज से मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह अत्यंत अहिंसक व शांतप्रिय समाज है जिसने सदैव हमारा सहयोग किया है। उन्होंने कहा महाराज श्री! जैन समाज देश में जहाँ-जहाँ भी है प्राय:कर हर जगह शांति से रहती है, कभी तोड़-फोड़ जैसे मामलों में सामने नहीं आई, क्या इसका कोई विशेष कारण है? गुरुवरश्री मुस्कुराते हुए बोले 'इसका कारण है उनकी शुद्ध-सात्विक भोजन शैली।' अहिंसक भोजन करने वालों के परिणाम भी अहिंसक ही होंगे।

अहिंसक आहार करने वाला अहिंसामय परिणामों से पुण्य का बंध करता है। अहिंसक आहार करने वाले में संयम, व्रत आदि की भावना प्रबल होती है जिससे पाप कर्मों की निर्जरा करता है, पुण्य का आस्रव, पाप कर्मों की निर्जरा उसे संसार के सुख तो प्रदान करती ही है, वह महाराज, अधिराज, मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर, चक्रवर्ती, बलभद्र, तीर्थंकर इत्यादि के पदों पर सुशोभित होता हुआ क्रमशः मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

ग्रंथ की प्रशस्ति

दु-पण-चउ-ति-वीरद्धे, भद्द-सुक्क-सुक्क-चित्ताइ दोजे।
बंभे पुण्णो होही, हिदत्थं पंचगुरुं णमामि॥66॥

अर्थ–सभी जीवों के हित के लिए 2543 वीर संवत् में भाद्रपद मास में शुक्लपक्ष, शुक्रवार, चित्रा नक्षत्र में द्वितीया तिथि में ब्रह्मयोग में यह ग्रन्थ **अहिंसगाहारो** पूर्ण हुआ। मैं (आचार्य वसुनंदी) पंचगुरु को नमस्कार करता हूँ।

This granth 'Ahinsagahaaro' was completed on Friday on Bhadra shukla 2, Chitra Nakshatra, brahma yog in veer nirvaan samvat 2543.

व्याख्यान–वीरनिर्वाण संवत् 2543 में भाद्रपद मास में शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन यह 'अहिंसक आहार' नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ। उस दिन शुक्रवार व शुभ चित्रा नक्षत्र था। ग्रंथ का अंतिम मंगलाचरण करते हुए ग्रंथकार पंचगुरुओं को नमस्कार करते हैं। पंचगुरु अर्थात् पंचपरमेष्ठी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु। पंचगुरु से आशय उनकी गुरुपरंपरा से भी है। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज, अध्यात्म योगी आचार्य श्री पायसागरजी महाराज, महातपस्वी आचार्य श्री जयकीर्तिजी महाराज, भारतगौरव आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज व सिद्धांत चक्रवर्ती राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज।

इस प्रकार ग्रंथकार पंच परमेष्ठी व अपनी गौरवशाली गुरुपरंपरा को नमस्कार कर पूज्य गुरुओं के प्रति श्रद्धा, भक्ति व कृतज्ञता के भाव को अभिव्यक्त करते हैं।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

टीका ग्रंथ			
1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य			
1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य			
1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)
5.	श्रावकधर्म-संहिता (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)		

प्रवचन साहित्य			
1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दुःखदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दुःख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष
41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना			
1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना			
1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान

21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)

3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   - भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
   - सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)

5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		